"यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।"

भवभूति।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

काशी।

कार्यविवरण—दूसरा भाग।

[सम्मेलन में उपस्थित लेखों और कविताओं का संग्रह।]
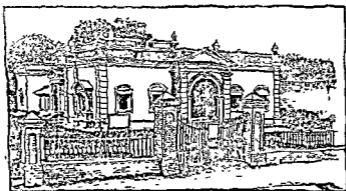
सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति द्वारा प्रकाशित।

१९१०

इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित।

सूचीपत्र।

——:०:——

निवेदन ।

सकलदेहभृताम्मतिरूपिणीम् निखिललोकसमुन्नतिसाधिनीम् ।
सुजनमानसहंसनिवासिनीम् अतितराम्प्रणमामि सरस्वतीम् ॥

कवीन्द्र ।

हिन्दी के इतिहास में यह पहिली बात है कि उसके प्रेमियों का एक सम्मेलन हो जिसमें दूर दूर से आए हुए हिन्दी के प्रेमी एक दूसरे से मिलने और परस्पर परिचित होने का आनन्द प्राप्त करें और साथ ही अपनी मातृभाषा की उन्नति के उपायों पर विचार करें। यह सम्मेलन हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी था। अतएव यह आवश्यक और उचित ही था कि हिन्दी के विद्वान् उसके साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक विषयों पर अपने सारगर्भित लेख उपस्थित करते। इस सम्मेलन के जन्मदाताओं ने अपना आदर्श युरोप की इण्टरनैशनल कांग्रेस आफ ओरियण्टलिस्ट्स् (International Congress of Orientalists=पुरातत्त्वज्ञों का सार्वदेशिक परिषद्) रक्खा था और उसी के अनुरूप वे इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को चलाना चाहते हैं, परन्तु अभी तो इसका पहिला ही अधिवेशन हुआ है, इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि उन उद्देश्यों और मनोरथों में कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी। भविष्य के गर्भ में क्या है इसे मानवी शक्ति से कौन जान सकता है, परन्तु इस स्थान पर इस उद्देश्य का निर्देश कर देना इस लिये आवश्यक है कि जिसमें इस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नियन्ता अपनी कार्य-प्रणाली में उसे कहीं भूल न जाँय। युरोपीय पुरातत्त्वज्ञों के सार्वदेशिक परिषद् में बड़े बड़े गम्भीर विषयों पर विचार किया जाता है और प्रत्येक विद्वान् की यह इच्छा रहती है कि वह अपने आविष्कारों और सिद्धान्तों को सर्वसाधारण के सम्मुख प्रकाशित करने के पहिले इस परिषद् के अधिवेशन में उपस्थित करे। इससे परिषद् और पुरातत्त्वज्ञ दोनों के कार्य को बहुत कुछ गौरव प्राप्त हो जाता है और यही कारण है कि इस परिषद् के निश्चित सिद्धान्तों पर बड़े सम्मान की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है तथा जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक देश में उनके अनुसार कार्य करने का उद्योग किया जाता है। हमारे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तो अभी बीज बोया गया है। ईश्वर करे आगे चलकर इस वृक्ष से वाञ्छित फल उत्पन्न हों।

सुधाकर द्विवेदी ने अपने लेख में अनेक बातें ऐसी लिखी हैं जो नई और विलक्षण हैं। हिन्दी के उत्पत्ति के विषय में उनके सिद्धान्त यद्यपि अन्य विद्वानों से विपरीत हैं तथापि हिन्दी के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि एक संस्कृत के विद्वान् का और विशेष कर काशी मण्डली के एक प्रकाशमान् नक्षत्र का, हिन्दी से इतना अगाध प्रेम हो कि वह उसके काव्य के विषय में कहे कि 'संस्कृत काव्य से हिन्दी-काव्य में अधिक आनन्द मिलता है" जब कि अन्य पण्डितगण उसे "भाखा, भाखा" कह कर घृणा की दृष्टि से देखने में ही अपना महत्त्व समझते हैं और उसके प्रचार से संस्कृत की हानि समझते हैं। द्विवेदीजी के विचारों पर, आशा है हिन्दी विद्वन्मण्डली में उचित विचार किया जायगा। द्विवेदीजी के लेख को मिश्रबन्धुओं के लेख के साथ मिला कर पढ़ने से निस्सन्देह बहुत कुछ सामग्री हिन्दी-साहित्य के विषय पर विचार करने को मिल जायगी। द्विवेदीजी ने हिन्दी-भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और मिश्रबन्धुओं ने उसके साहित्य के इतिहास का संक्षेप में उल्लेख किया है। कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि यह इतिहास अति ही संक्षेप में लिखा गया है जिससे उस विषय के बहुत कुछ जानने की इच्छा बाक़ी रह जाती है। इस सम्बन्ध में मैं बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह के "हिन्दी भाषा" शीर्षक लेख पर ध्यान दिलाए बिना नहीं रह सकता। हिन्दी के आधुनिक विकास का इन्होंने अच्छा चित्र खींचा है। मुझे आशा है कि इन तीनों लेखों पर पूरा पूरा विचार किया जायगा।

ब्रजभाषा पर पण्डित राधाचरण गोस्वामीजी के लेख में इसके माहात्म्य और भविष्यत् का बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया गया है। यदि उसके साथ ही गोस्वामीजी अपने विचारों को सविस्तर वर्णन करते और इस भाषा के गुणों और महत्त्व का विशेष रूप से उल्लेख करते तो निस्संदेह अधिक उपकार होता। गोस्वामीजी का विचार सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होने का था। पर अंत में उनके पुत्र के रुग्ण हो जाने के कारण वे अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके। कदाचित् यही कारण हो कि वे अपने लेख को सर्वाङ्ग पूर्ण भी न कर सके। आशा है कि गोस्वामीजी किसी समय ब्रजभाषा के विषय में अपने विचारों को विस्तृत रूप से लिख कर हिन्दीप्रेमियों का उपकार करेंगे।

दादूदयाल और सुन्दरदास के विषय में पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी का लेख अनेक नई बातों से भरा है जो अब तक हिन्दी-प्रेमियों को विदित नहीं थीं। त्रिपाठीजी ने इस संप्रदाय के ग्रंथों का विशेष रूप से अवलोकन किया है और इसलिये यह उचित ही था कि वे अपने ज्ञान से हिन्दी-भाषा का उपकार करते।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के उद्योग में बाबू शारदाचरण मित्र इस समय अग्रगण्य हो रहे हैं और कलकत्ते का एक-लिपि-विस्तार-परिषद् उनके उद्योग का फल है। यद्यपि कई बेर यह सन्देह लोगों ने किया है कि वास्तव में मित्र महाशय नागरी लिपि के राष्ट्रियत्व के साथ हिन्दी-भाषा को भी वह स्थान दिया चाहते हैं या नहीं, परन्तु इस लेख में इस सम्बन्ध में उनके स्पष्टवाक्यों को पढ़ कर अब किसी को किसी प्रकार के सन्देह करने की जगह बाक़ी न रह जायगी। इस लेख से मित्र महाशय के हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि पर असीम प्रेम और उनके राष्ट्रियत्व पद पाने के लिये उत्कंठित और उद्योगी देख कर किस हिन्दी-प्रेमी का हृदय गद्गद् न होगा। मित्र महाशय का कथन है कि हिन्दी-भाषा के व्याकरण में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम लोगों की यह इच्छा है कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा और नागरी राष्ट्र-लिपि के आसन को सुशोभित करे तो हमें अवश्य इस बात पर विचार करना होगा कि अन्य भाषा-भाषियों को किस किस बात पर कठिनता उपस्थित होती है और हम लोग कहाँ तक हिन्दी के शरीर को पुष्ट रख कर उसके

अपने उद्देश का ध्यान रख कर हमारे सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति ने हिन्दी के अनेक विद्वानों से अनेक विषयों पर लेख लिखने की प्रार्थना की। यह बड़े आनन्द की बात है कि इनमें से अनेक महानुभावों ने समिति की प्रार्थना को स्वीकार भी किया। परन्तु अवकाश की न्यूनता होने के कारण सब लेख पढ़े न जा सके और न उनमें वर्णित विषयों पर विचार ही हो सका। आशा है कि सम्मेलन के आगामी अधिवेशनों में इसका उपयुक्त प्रबन्ध किया जायगा और कम से कम एक दिन का समय साहित्य-सम्बन्धी विषयों पर विचार करने के लिये अलग नियत किया जायगा।

स्वागत-कारिणी समिति इस वर्ष इसका उपयुक्त प्रबन्ध न कर सकने के कारण अपने को दोषी समझती है और यदि पूर्णतया नहीं तो किञ्चित् अंश में ही उसके मार्जन का उसने यही उपाय देखा कि जो लेख आये हैं वे जहाँ तक शीघ्र हो सके छाप कर प्रकाशित कर दिए जाँय जिसमें हिन्दी के विद्वानों और प्रेमियों को उनके पढ़ने और मनन करने का अवसर प्राप्त हो। यदि सम्मेलन के कार्य-विवरण के साथ इसके छापने का प्रबन्ध किया जाता तो इनमें विशेष विलम्ब हो जाने की आशंका थी। इसलिये यह संग्रह कार्यविवरण का दूसरा भाग मान कर प्रकाशित किया जाता है। पहिले भाग में १०, ११ और १२ अक्तूबर को जो कार्य हुआ है और जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं उनका पूरा वर्णन रहेगा।

इस संग्रह में २२ लेखों का समावेश है जिनमें से पाँच पद्यात्मक और शेष गद्यात्मक हैं। इन सब लेखों और उनके लेखकों की सूची पर ध्यान देने से यह स्पष्ट विदित होगा कि जिन जिन विद्वानों ने जिन जिन विषयों पर लेख लिखने की कृपा की है, उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनसे बढ़ कर उन विषयों के ज्ञाता हिन्दी-संसार में दूसरे कठिनता से मिलेंगे। पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र रचित ... पढ़ कर हिन्दी का कौन ऐसा प्रेमी है जो सम्भव न होगा और हिन्दी के एक प्राचीन सेवक का पुनः कार्यक्षेत्र में स्वागत न करेगा। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविता को पढ़ कर किस हिन्दी प्रेमी का हृदय आनन्द से परिपूर्ण न होगा। पण्डित श्रीधर पाठक के लेख में खड़ी बोली की कविता की आवश्यकता और उपयोगिता के कारणों पर विचार करने के साथ ही उपाध्यायजी की सुन्दर मनोहर कविता को पढ़ कर हिन्दी प्रेमी-मात्र के उसकी भविष्य सफलता के स्वीकार करने में संदेह का स्थान बाक़ी न रह जायगा।

इसी प्रकार गद्य भाग में वर्तमान नागरी लिपि की उत्पत्ति के विषय में पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा से बढ़कर और कौन लिख सकता है। इस समय जब कि नागरी लिपि को राष्ट्रीय आसन पर बैठाने की चारों ओर चेष्टा हो रही है एक ऐसे लेख की नितान्त आवश्यकता थी। क्या ही अच्छा होता यदि अन्य प्रचलित लिपियों के विषय में भी कोई लेख लिखा जाता और उनका स्पष्ट सम्बन्ध नागरी लिपि से दिखाया जाता तथा प्रत्येक के इतिहास पर पूरा पूरा विचार किया जाता। निस्संदेह पण्डित केशवदेव-शास्त्री का लेख इस अभाव की बहुत कुछ पूर्ति करता है और अपने ढंग का एक अमूल्य प्रबन्ध है जिससे बहुत कुछ ऐतिहासिक ज्ञान होता है पर विवादग्रस्त विषय का यह वर्तमान रूप में निर्णायक नहीं हो सकता। आशा है, मेरी इच्छा की पूर्ति अगले सम्मेलन में हो जायगी। खड़ी बोली की कविता के विषय पर अनेक वर्षों से आन्दोलन हो रहा है और धीरे धीरे लोग इसकी उपयोगिता और आवश्यकता को स्वीकार करते जाते हैं। यह गौरव पण्डित श्रीधर पाठक आदि दो चार चुने हुए विद्वानों को ही प्राप्त है कि उन्होंने इस प्रकार की कविता को अनेक गुणों से अलंकृत किया है। इस अवस्था में यह उपयुक्त ही था कि पाठकजी इस विषय पर विचार कर अपनी सम्मति को प्रकट करते। आशा है पाठक जी के विचारों और सिद्धान्तों पर हिन्दी के कविगण ध्यान देंगे और हिन्दी-साहित्य के इस अभाव की पूर्ति का उद्योग करेंगे। महामहोपाध्याय पण्डित

सुधाकर द्विवेदी ने अपने लेख में अनेक बातें ऐसी लिखी हैं जो नई और विलक्षण हैं। हिन्दी के उत्पत्ति के विषय में उनके सिद्धान्त यद्यपि अन्य विद्वानों से विपरीत हैं तथापि हिन्दी के लिये यह बड़े सौभाग्य की बात है कि एक संस्कृत के विद्वान् का और विशेष कर काशी मण्डली के एक प्रकाशमान् नक्षत्र का, हिन्दी से इतना अगाध प्रेम हो कि वह उसके काव्य के विषय में कहे कि "संस्कृत काव्य से हिन्दी-काव्य में अधिक आनन्द मिलता है" जब कि अन्य पण्डितगण उसे "भाखा, भाखा" कह कर घृणा की दृष्टि से देखने में ही अपना महत्त्व समझते हैं और उसके प्रचार से संस्कृत की हानि समझते हैं। द्विवेदीजी के विचारों पर, आशा है हिन्दी विद्वन्मण्डली में उचित विचार किया जायगा। द्विवेदीजी के लेख को मिश्रबन्धुओं के लेख के साथ मिला कर पढ़ने से निस्सन्देह बहुत कुछ सामग्री हिन्दी-साहित्य के विषय पर विचार करने को मिल जायगी। द्विवेदीजी ने हिन्दी-भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और मिश्रबन्धुओं ने उसके साहित्य के इतिहास का संक्षेप में उल्लेख किया है। कदाचित् यह कहना अनुचित न होगा कि यह इतिहास अति ही संक्षेप में लिखा गया है जिससे उस विषय के बहुत कुछ जानने की इच्छा बाक़ी रह जाती है। इस सम्बन्ध में मैं बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह के "हिन्दी भाषा" शीर्षक लेख पर ध्यान दिलाए बिना नहीं रह सकता। हिन्दी के आधुनिक विकास का इन्होंने अच्छा चित्र खींचा है। मुझे आशा है कि इन तीनों लेखों पर पूरा पूरा विचार किया जायगा।

ब्रजभाषा पर पण्डित राधाचरण गोस्वामीजी के लेख में इसके माहात्म्य और भविष्यत् का बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया गया है। यदि उसके साथ ही गोस्वामीजी अपने विचारों को सविस्तर वर्णन करते और इस भाषा के गुणों और महत्त्व का विशेष रूप से उल्लेख करते तो निस्सन्देह अधिक उपकार होता। गोस्वामीजी का विचार सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होने का था। पर अंत में उनके पुत्र के रुग्ण हो जाने के कारण वे अपनी इच्छा पूर्ण न कर सके। कदाचित् यही कारण हो कि वे अपने लेख को सर्वाङ्ग पूर्ण भी न कर सके। आशा है कि गोस्वामीजी किसी समय ब्रजभाषा के विषय में अपने विचारों को विस्तृत रूप से लिख कर हिन्दीप्रेमियों का उपकार करेंगे।

दादूदयाल और सुन्दरदास के विषय में पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी का लेख अनेक नई बातों से भरा है जो अब तक हिन्दी-प्रेमियों को विदित नहीं थीं। त्रिपाठीजी ने इस संप्रदाय के ग्रंथों का विशेष रूप से अवलोकन किया है और इसलिये यह उचित ही था कि वे अपने ज्ञान से हिन्दी-भाषा का उपकार करते।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के उद्योग में बाबू शारदाचरण मित्र इस समय अग्रगण्य हो रहे हैं और कलकत्ते का एक-लिपि-विस्तार-परिषद् उनके उद्योग का फल है। यद्यपि कई बेर यह सन्देह लोगों ने किया है कि वास्तव में मित्र महाशय नागरी लिपि के राष्ट्रियत्व के साथ हिन्दी-भाषा को भी यह स्थान दिया चाहते हैं या नहीं, परन्तु इस लेख में इस सम्बन्ध में उनके स्पष्टवाक्यों को पढ़ कर अब किसी को किसी प्रकार के सन्देह करने की जगह बाक़ी न रह जायगी। इस लेख से मित्र महाशय के हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि पर असीम प्रेम और उनके राष्ट्रियत्व पद पाने के लिये उत्कंठित और उद्योगी देख कर किस हिन्दी-प्रेमी का हृदय गद्गद् न होगा। मित्र महाशय का कथन है कि हिन्दी-भाषा के व्याकरण में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम लोगों की यह इच्छा है कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा और नागरी राष्ट्र-लिपि के आसन को सुशोभित करे तो हमें अवश्य इस बात पर विचार करना होगा कि अन्य भाषा-भाषियों को किस किस बात पर कठिनता उपस्थित होती है और हम लोग कहाँ तक हिन्दी के शरीर को पुष्ट रख कर उसके

बाह्य रूपादि में ऐसा परिवर्तन कर सकते हैं कि जिसमें यह सब के लिये मनोहर और ग्राह्य हो जाय। इस संसार में कोई भी दुराग्रह करके सफलता नहीं पा सकता। यह संसार एक हाथ देने और दूसरे हाथ लेने का है। अतएव इस विषय में सब प्रकार का हठ छोड़ कर हमें पहिले यह जानने का उद्योग करना चाहिये कि अन्य भाषा-भाषी विद्वान् कौन कौन वास्तविक आपत्तियाँ उपस्थित करते हैं और हम कहाँ तक उनकी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हैं। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी हमें प्यारी है और हम याथातथ्य उसकी उन्नति चाहते हैं पर हमें साथ ही इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि संसार स्थिर नहीं है, वह आगे बढ़ रहा है, उसमें नित्य नए विकास हो रहे हैं और मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है जिसमें बहुत सी पुरानी बातें उलट पुलट या छूट जाती हैं और उनका स्थान नई और कदाचित् किसी समय में अचिन्त्य बातें ग्रहण कर लेती हैं। कदाचित् इन्हीं सब बातों को स्मरण करके सम्मेलन ने यह निश्चय किया है कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और नागरी को राष्ट्र-लिपि बनाने के

"कार्य में विशेष सफलता प्राप्त करने के लिये इस सम्मेलन की सम्मति में यह उचित जान पड़ता है कि बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू और हिन्दी साहित्य-सम्मेलनों के प्रतिनिधियों का एक संघ शीघ्र ही कहीं मिले और राष्ट्र-भाषा तथा राष्ट्र-लिपि के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करे।"

आशा है बाबू शारदाचरण मित्र इस कार्य को सांगोपांग उतारने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।

इन लेखों को छोड़ कर शेष ९ (१३ से २१ संख्या तक) लेखों का सम्बन्ध विशेष कर हिन्दी की उन्नति और प्रचार से है। मुंशी देवीप्रसाद के ऐतिहासिक लेख से हमें यह पूर्णतया विदित हो जाता है कि मुसलमानों के राज्य काल में हिन्दी की क्या अवस्था थी और अब हमारा क्या कर्तव्य है यह अन्य लेखों से सूचित होता है। इन सब लेखों के ध्यानपूर्वक पढ़ने से हमें विचार करने की बहुत कुछ सामग्री मिल जाती है और यदि हम इनका मनन कर अपने सिद्धान्तों को दृढ़ करें और उन पर अटल भाव से कुछ काल तक चलते रहें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमें अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो जायगी।

निदान ऊपर लिखी बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिलाने में मेरा उद्देश्य इस बात को स्पष्ट करने का है कि जो जो लेख सम्मेलन में उपस्थित किए गए थे वे उच्च श्रेणी के थे और उनके लेखकों ने अपना कर्तव्य पालन करने में कोई त्रुटि नहीं की। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के प्रेमीगण इन महानुभावों के अनुगृहीत होंगे और इनके परिश्रम से लाभ उठावेंगे। साथ ही मैं यह निवेदन पुनः किए बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नाम को चरितार्थ करने के लिये यह आवश्यक है कि जो जो लेख भविष्यत् सम्मेलनों में उपस्थित किए जाने वाले हों वे पहिले से छाप कर सम्मेलन में उपस्थित किए जाँय और उपस्थित महानुभावों को उन पर विचार करने का अवसर दिया जाय जिसमें साहित्य-सेवियों को अपने विचारों और सिद्धान्तों को परिमार्जित करने की सामग्री मिले और साथ ही हिन्दी का विशेष उपकार साधन हो सके। आशा है मेरी इस प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया जायगा। अलं किं बहुना।

जम्बू २५-११-१०. { श्यामसुन्दरदास।

प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

कार्य-विवरण—दूसरा भाग ।

—:०:—

निवेदन ।

[पंडित चन्द्रशेखरधर मिश्र रचित]

(मालिनीछन्दः संस्कृते)

अनुदिनमनुभूय स्वाञ्जनान् दीनदीनान् ।
प्रकृतिसरलभावे भाषितेऽपीष्टहीनान् ॥
सपदि परिषदा यो कर्तुमीष्टे कृतार्थान् ।
प्रभवतु नतिपात्रं कोऽपि देवो दयालुः ॥ १ ॥

(हिन्दी बरवा छन्द में आशय)

अनुदिन देख दशा को, मेरी दीन ।
प्रकृति सरल हिन्दी-वर्णन में हीन ॥२॥
रचि 'साहित्य-महा सम्मेलन' सार्थ ।
सम्प्रति करते हैं जो देव कृतार्थ ॥३॥
ऐसे देव देव शुचि करुणाधाम ।
तिनको सविनय साञ्जलि कोटि प्रणाम ॥४॥
फिर जो ईश्वररूप, महीसुर रूप ।
हैं प्रणाम उनको गुन के अनुरूप ॥५॥
ईश्वर के जो सत्य दया गुणधाम ।
बार बार है उनको कोटि प्रणाम ॥६॥

(संस्कृते—वसन्ततिलका छन्दः)

श्रीमान् सभापति महीपति माननीयो-
मैत्रो महान् मदनमोहन मालवीयः ।
यो दीन दुःखहरविस्तृतकीर्तिधामा
तस्मै लसन्तु सततं शतशः प्रणामाः ॥७॥

(हिन्दी—बरवा)

अनियत आगम जिनके, अनियत नाम ।
परोपकारक विद्या, बुद्धि ललाम ॥८॥
हिन्दी भाषा विद्वर, कविता-धाम ।
यथायोग्य साञ्जलि है, तिन्हें प्रणाम ॥९॥
सभी सुजन को भी है सुधन्यवाद ।
जिन्हें रचे उनको है आशीर्वाद ॥१०॥

(रोला छन्द हिन्दी)

छोड़ि सकल गृहकृत्य, दूर से जो आये हैं।
समय व्यय कर अधिक धर्म व्यय अधिकाये हैं॥
सभा मध्य जो कमल प्रधान के हैं अधिकारी।
धन्य धन्य वे गुणवरस सम्मेलनचारी ॥११॥
कुटिल भाग्य-पाश का अपने क्या कुछ कहूँ मैं।
कहूँ नहीं तो मैं भी कैसे मौन रहूँ मैं॥
यद्यपि हिन्दी भाषा सहज मेरी है प्यारी।
सकल वर्ष में यद्यपि नागरी महिमा भारी॥१२॥
यदपि नागरी की उन्नति में समय बिताया।
विद्यापर्ण दीपिकादिक पत्रादि चलाया॥
बिना मूल्य ही जिसका वितरण करता आया।
दुइ वर्ष धार्मिक विशेष प्रचार कराया॥१३॥
सम्मेलन के लिये विशेष रहा उत्कण्ठित।
भाषा-मर्मज्ञों के दर्शन हेतु अकुण्ठित॥
सपरिवार बहुधा काशी ही में रहता हूँ।
सम्मेलन का तदपि वियोगज दुख सहता हूँ॥१४॥
क्या दुर्गापूजा का यही सुफल मिलना था।
या दुष्कृत का कोइ विशेष कुफल मिलना था॥
जिसने सम्मेलन से मेरा मिलन छुड़ाया।
बहुत दिनों के सदभिलाष को दूर हटाया॥१५॥

(बरवा छन्दः संस्कृते)

हे दुर्गे दुर्गापूजन अस्तु फलमस्तु।
सफलमिदं सम्मेलनमविकलमस्तु ॥१६॥

(रोला छन्द हिन्दी)

दुर्गापूजा हेतु विवश निज सदन रहा हूँ।
सम्मेलन में गमनोत्कण्ठित तदपि महा हूँ॥
क्या दुर्गाजी नहीं इसी का फल देवेंगी?
सम्मेलन को कर कृतार्थ अविकल देवेंगी?॥१७॥

अस्तु तावत

परम योग्यजन जहाँ सभा में सब आये हैं।
विद्या बुद्धि, समृद्धि वृद्धि में अधिकाये हैं॥
शुद्धाचार विचार धर्म शुचि कर्म प्रशंसित।
लोकनीति शुभरीति आदि में सुयश विकासित॥१८॥
*बड़ी योग्यता जिनकी है गुणगण में ऐसी।
विविध पदक पद से न योग्यता प्रकटित जैसी॥
किसी किसी का गौरव शुभ पद से उठता है।
जिन पर संस्कृत-पद्य यही प्रतिपद घटता है॥१९॥

(संस्कृते वसन्ततिलका)

"पीठाधिपेन गुणगर्वितनः पदेन।
तुष्यन्तु नाम कतिचो कृतिनोऽनभिज्ञाः॥
विद्यामहे ननु वयं भवदुन्नरङ्गाः।
विद्यानिधेरपि विनेव पदेः प्रयान्तः ॥२०॥"

"पदानि सम्प्राप्य तदर्थिनो हि
विभूषयन्तीति जगत्प्रसिद्धिः।
विभूषितानि प्रथमं पदानि
किन्त्वर्थिनोऽप्यैव तथैव नाज्ञा ॥२१॥"

(रोला छन्द)

चुने हुए जो बुधवर प्रतिनिधि हो आये हैं।
निज कर्तव्य परायणता गुण अधिकाये हैं॥
ऐसे विज्ञवर्य से क्या कर्तव्य बतावैं।
सभी समझते हैं उसको फिर क्या समझावैं॥२२॥
पर अपना कुछ विनय निवेदन भी करना है।
अपने अलस स्वभाव अनुद्यम से टरना है॥
निज कर्तव्य विधान नित्य है कृत्य सभी का।
अवसर पर की चूक नहीं है कृत्य किसी का॥२३॥
अक्षर जिनके शुद्ध नागरी या हिन्दी हैं।
हिन्दी भाषा-भाषी शुचिगुण अविनिन्दी हैं॥
उनकी शिक्षारीति समीहित परिसंस्कृत हो।
उनके बालक विमलबुद्धि सुकृती विस्तृत हो॥२४॥

---

*अर्थात् महामहोपाध्याय, वकील, एम. ए. बी. ए. आदि अपने पद से जो सज्जन मानहानि ही मानते हैं और पद ही उन्हें पाकर शोभित होते हैं।

जिस समाज के बालक विद्या में बढ़ते हैं।
निज सुचरित से गुण में जो आगे चढ़ते हैं॥
उन्नति पथ पर वही जाति आगे जाती है।
उलटी जो, उलटी गिरती पीछा खाती है॥२५॥

इससे बालों को उन्नत कर ज्ञान बढ़ाओ।
सभी विषय हिन्दी में कर के उन्हें पढ़ाओ।
जितना सरल समीहित है हिन्दी में पढ़ना।
उसके नहीं शतांश भिन्न भाषा से बढ़ना॥२६॥

धर्मविषय के ग्रन्थ शुद्ध हिन्दी में भरिये।
उससे धार्मिक, सत्यनिष्ठ सब बालक करिये॥
शुचि इतिहास मनोज्ञ चरित भी आज समुन्नत।
हिन्दी में रचि करो, विशेष-समाज समुन्नत॥२७॥

योंही वैद्यक और डाक्टरी के सब आशय।
हिन्दी ही में प्रकट करो बहुविध मत सन्चय॥
ज्योतिष के सिद्धान्त शिल्प के शास्त्र सविस्तर।
उन्हें करो हिन्दी भाषा में भाव विपुल भर॥२८॥

योंही दर्शन के दर्शन हिन्दी में हो फिर।
लिखें विविध विज्ञान रसायन विद्या सुरुचिर॥
खेती विद्या के विशेष बहु ग्रन्थ बनावें।
जिसके फल से जन दरिद्र खाने को पावें॥२९॥

इस प्रकार हिन्दी भाषा में ग्रन्थ बना कर।
निज बालक गण को विशेष विद्वान् बढ़ा कर।
करै समाज समुन्नत फिर भी सज्जन ऐसा।
नृपति भोज के समय राज में शिक्षित जैसा॥३०॥

जो विद्या विस्तृति फल सुन्दर नृप ने चाहा।
यह "कवयामि,' 'वयामि' 'यामि' कह सुकविजुलाहा
पूर्ण रीति से प्रकट किया" सो फिर प्रकटित हो।
बलपूर्वक शिक्षा विधि भी अब फिर विकसित हो॥३१॥

योरोपीय देश में भी जो विधि प्रचलित है।
भारत में अब कहीं कहीं जो विधि प्रसरित है॥
नृपति बड़ौदा ने शिक्षण नव नियम बनाये।
वही शुद्ध कर जायँ हमारी ओर चलाये॥३२॥

सरकारी कचहरियों में हिन्दी प्रचार का।
हो विशेष उद्योग विपुल भाषा प्रसार का॥
यदपि आपने काम किया है इसमें भारी।
तदपि और कर्तव्य अधिक है तिसमें भारी॥३३॥

(नरेन्द्र छन्द)

सिद्धि समीहित इन कामों में सभी सुजन जो चाहैं,
करैं न शाखा-सभा-समीहित जिला जिला में काहैं।
जो उपदेशक नियत करैं फिर पुरस्कार दें पूरा,
ग्रन्थकार कवि गण को भी साहाय्य न देय अधूरा॥
हिन्दी के जो शुचि सेवक चल गये स्वर्ग में भी हैं,
जैसे भारतेन्दु जी, व्यास, 'प्रतापनारायण' जी हैं।
उनके स्मारक ठीक बनावें, दें हित सुत को शिक्षा,
इनके जो परिवार दीन हों, उनकी करैं सुरक्षा॥३५॥

(दोहा)

जो नागरी प्रचार के, ठीक करै सब काम।
विविध समीहित रीति से, नगर नगर प्रति ग्राम॥३६॥

(वसन्ततिलका)

कर्त्तव्य कर्म धरि मानुष रूप मानो।
श्री, सिद्धि, लाभ, गुण, मान, सरूप मानो॥
सम्मेलनोन्नति समीहित आ गये हैं।
जो आप लोग समझें, मम भाग ये हैं॥३७॥

(उपजातिः संस्कृते)

तथापि वक्तुं यदि साहसम्मे।
क्षन्तव्यमेतत्प्रसभं भवद्भिः॥
मनांसि यद्बन्धु सुहृज्जनाना–
मनिष्टशङ्कानि भवन्ति भूयः॥३८॥

(रोला छन्द)

यदपि नागरी प्रचारिणी, यह सभा समीहित।
अद्वितीय हो करती आती है जनता हित॥
सम्मेलन के सभ्य सभापति भी इसके नित।
यद्यपि करते आते हैं अतुलित जनके हित॥३९॥
तदपि ख्याल जब आता है हिन्दू-समाज का।
इसी भाँति स्थान रहा जब प्रागराज का॥
हिन्दी के हित हेतु काम जिसका भारी था।
अनुदिन जो अनुपम हिन्दी का हितकारी था॥४०॥
वर्ष वर्ष जिसके अधिवेशन होते थे।
दूर दूर के सभ्य जहाँ आते जाते थे॥

विद्या और मातृभाषा का महत्त्व ।

[पं० श्यामविहारी मिश्र और पं० शुकदेवविहारी मिश्र रचित ।]

प्रिय भारत में विद्या का जैसा
गुरु अभाव पाया जाता ।
यह किसी दूसरे सभ्य देस में
नहीं आज दिन दरसाता ॥
बस इसी प्रबल दारुन अभाव से
फूटे भारत भाग ।
यह इसके परम समुज्ज्वल जस में
लगे भयानक दाग ॥ १ ॥

सब दोषों की, सब भूलों की, सब
रोगों की हरने हारी ।
लौकिक अरु ईश्वर सम्बन्धी भी
ज्ञान उदै करने हारी ॥
है विद्या मातु पिता सी पालक
तिय सी अति सुखदानि ।
भ्राता सी सदा सहायक प्रेमी
मीत सरिस गुनखानि ॥ २ ॥

उत्तम सुत सम अति वृद्ध वैस में
विद्या पालन करती है ।
सत गुरु सी सिच्छा दे मनुष्य की
नीच बुद्धि नित हरती है ॥
एकाकी जन को भी समाज का
देती है आनन्द ।
कलियुग में भी सतयुग का देती
खोल सीन स्वच्छन्द ॥ ३ ॥

विद्याबल से नर बालमीकि की
अब तक बातें सुनते हैं ।
द्वैपायन, वेदव्यास, कृष्ण, की
सुन्दर सिच्छा गुनते हैं ॥
कर दिया कपिल ने देवहुतीं पर
ज्ञान ज्ञान परकाश ।
विद्या बल से अब तलक वियोगी
उससे लहैं सुपास ॥ ४ ॥

सामाजिक उन्नति आर्य्यगनों की
विद्या बल से जग जानै ।
वैदिक सुकाल का सुख अब तक जग
वेद पाठ से अनुमानै ॥
पुनि परदेशों में भी राजा सम
लहै मान विद्वान ।
विद्या सम है नहिं तीनि लोक में
कोई रतन महान ॥ ५ ॥

सत में केवल ग्यारह भ्राता
बरतामा भी करना जानैं ।
पुनि अयुत जनों में केवल दस नर
कालेज में पढ़ सुख मानैं ॥
है भारत विद्या की कुदसा यह
जब तक अति दुखरास ।
तब तक उन्नति की किसी भांति भी
क्या हो सक्तो आस ॥ ६ ॥

धनवान कहैं क्या कहीं नौकरी
करनी है मेरे सुत को ।
फिर व्यर्थ परिश्रम कर उसको क्या
करना है विद्यायुत हो ॥
उत निरधन जन अब धनाभाव से
सुत को विद्यादान ।
करने में हैं न समर्थ हाय हम
हों क्यों कर विद्वान ॥ ७ ॥

अबला करके विद्वान हमें क्या
कुछ हरपीच दिलानी है ।
बालों में उन्हें नचाने की हम
ने न प्रतिज्ञा ठानी है ॥
लिखवा कर उनसे प्रेमपत्र कर
के आचरन तबाह ।
हमको है नहीं अभीष्ट कोर्टशिप
की खुलवानी राह ॥ ८ ॥

इस भाँति भ्रमित मूरख माता गन
विद्या का अपवाद करें।
उसके मन मोहक चारु गुनों पर
नहीं कभी यह ध्यान धरें॥
जो पशु से नर होने में होता
आचरनों का नाश।
पशुवृत्ति छोड़ नर होने में मैं
तो भी गुनूँ सुपास॥ ९॥

सारे शास्त्रों ने कभी समुन्नति,
की नहिं अपनी मनमानी।
फिर भी उनके आचरनों की क्या
रही शुद्धि जग सुखदानी॥
यदि नहीं मैंर बातों से तो गुरु
धनाभाव से घोर।
है जाता टूट अवश्य एक दिन
परदा परम कठोर॥ १०॥

खोकर सारा वैभव बल धीरज
धारन कर पसुवृत्ति बुरी।
जो उन्नति मारग पर हम फेरें
जान बूझ कर तेज छुरी॥
तो लेकर आचरनों को क्या हम
चाटेंगे दिन रात?
अरु धनी रहेंगी आचरनों हीं
की कब तक कुशलात?॥ ११॥

फिर धनाभाव से रोकर आखिर
तरुनी गन बाहर लाना।
अरु नीचों के सम सदा सैकड़ों
दुखद ठोकरों को खाना॥
यह करना है अति क्षुद्र नीति का
अवलम्बन दुख आल।
या सुख से लाना बाहर देकर
विद्यादान विसाल॥ १२॥

गुजरात बम्बई में न आज भी
है कदापि परदा जारी।
पर वहाँ शिकायत दुराचरन की
उठी न कभी मान हारी॥
फिर दुराचरन की शंका करनी
है सब विधि निरमूल।
अब भी माता तरुनी शिक्षा कर
दूर करो निज भूल॥ १३॥

है विद्यादान जीविका ही का
नहीं सुसाधन सुखकारी।
पर इससे तज कर पसु पद पाता
नर पद छात्र मनोहारी॥
होता है जन्म द्वितीय मनो
विद्या पढ़ कर गुन आल।
विद्वानों हीं को द्विज पद सुन्दर
मिलता था ततकाल॥ १४॥

करके बालक उतपन्न मातु पितु
जो उसको न पढ़ाते हैं।
यह सब से गुरु करतव्य विशद
सन्तान ओर विसराते हैं॥
मानुष होकर भी प्रकटाया न
उन्होंने मनुज विशाल।
धरु नर अरु पशु के बीच हुई उन
के कुछ वस्तु कराल॥ १५॥

हैं गणना में अति स्वल्प आज विद्वान
यथा भारतवासी।
हैं प्रति सिच्छित नर के तथैव
करतव्य परम दृढ़ सुखरासी॥
करतव्य परायण हीन बहुत
विद्वानों में कुछ लोग।
उनका कादरपन तो न देश के
हित हो दारुन रोग॥ १६॥

पर दुर्दैव से भी न जहाँ
विद्वान दीठि पथ आते हैं।
अरु वहाँ किसी विधि कुछ भी नर
करतव्य सुखद बिसराते हैं॥
तो ऐसा प्रति नर करता है
मानो स्वदेस का घात।
फिर उस कुदेस के हो कैसे
सन्तानों की कुसलात॥ १७॥

है धनापव्यय के सरिस काल का
भी अपव्यय गुरु दुखदाई ।
पर है विद्वान भ्रात गन में भी
इसकी प्रबल अधिकताई ॥
जो लेते पेशा हाथ सदा
रहते उसके आधीन ।
पर अन्य बहुत बातों दिसि रहते
उदासीन रुचि हीन ॥१८॥

करके दिन का व्यापार पूर्ण
करतव्य इति श्री गुनते हैं ।
नहिं कभी जगत उपकार हेत
उपदेस किसी का सुनते हैं ॥
जो कोई बचे काल में जगहित
करने को व्याख्यान ।
है देता इसको करते हैं यह
उसका वैसि बखान ॥१९॥

पर उसकी महिमा गाकर यह
सन्तुष्ट परम हो जाते हैं ।
नहिं उसके उपदेशों को करके
श्रम कारज में लाते हैं ॥
हों पमे पास तो भी कहते हैं
हम में है क्या ज्ञान ।
किस भांति जगत का कर सकते हैं
हम उपकार महान ॥२०॥

जो करने को कुछ काम बतावे
कहते तो ऋजुता धारी ।
है अमुक व्यक्ति की इस कारज में
हमसे पटुता अति भारी ॥
पर नहीं विचारैं एक व्यक्ति क्या
कर सक्ता सब काम ?
क्या उसने माता के सुगर्भ में
सीखे गुन अस धाम ॥२१॥

करते करते ही काम सदा
करता को पटुता आती है ।
चलते चलते चींटी भी चलकर
बड़ी दूर चल जाती है ॥
जो मन समान है चलनेवाला
गरुड़ महा बलवान ।
यदि नहीं चले तो चले न वह
भी एक पैग परमान ॥२२॥

फिर किसी काम में सर्वोत्तम
जन ही के हित है ठैार नहीं ।
बरु सकल भांति के बालक पढ़ते
सब क्लासों में सभी कहीं ॥
जो हैं प्रवीण नहिं बालक हैं
वह भी न कभी बेकाम ।
हैं वह भी कुछ नहिं पढ़नेवालों
से सब भांति ललाम ॥२३॥

सो बचे काल को व्यर्थ गवां कर
अपव्यय करना नहीं भला ।
कुछ नहिं करना तज उचित यही
उन्नत कोई भी करै कला ॥
टट्टू टट्टू से लखकर होता
दाना दाना रास ।
ख़रबूज़े को लख रंग पकड़ता
ख़रबूज़ा सविकास ॥२४॥

तज कर आलस भाव जगत
हित में मन धारो ।
अपने को तुम जिस विभाग
में जोग्य विचारो ॥
लेकर वही विभाग
भ्रात हित में जुट जावो ।
उसमेंही सारे समाज
का ज्ञान बढ़ाओ ॥
होवो न पूर्ण पंडित यदपि
तदपि न कारज से मुरौ ।
कुछ भी नहिं करना निन्द्यगुन
किसी लोक हित में जुरौ ॥२५॥
हैं अनन्त बर विषम
भ्रात गन के सुख कारन ।

कासमीरी गुजैरी यों
बंगला सविसेस ॥
राजपूतानी पँजाबी
आदि भाषा चारु ।
समझने में पड़े नहिं
काठिन्य का तो भारु ॥ ५० ॥
पर तिलंगी श्रौर तामिल
हैं अगम बिकराल ।
नहीं इनका ज्ञान हिन्दी
देसके गुन आल ॥
श्रौर भाषा सकल हिन्दी
के श्रहैं सम रूप ।
हैं परस्पर भिन्न यद्यपि
सकल भाँति अनूप ॥ ५१ ॥
नागरी की वर्णमाला
है विशुद्ध महान ।
सरल सुन्दर सीखने में
सुगम अति सुखदान ॥
मित्र सारद चरन जज ने
सोच यह सह चाव ।
एक लिपि विस्तार परिषद
का किया सुथनाव ॥ ५२ ॥
देवनागर पत्र से कर
मुझे भूषित धीर ।
प्रान्त गन के मेल की रख
दी सुनीव गँभीर ॥
राष्ट्र भाषा हेत सारी
योग्यता की आल ।
लसै हिन्दी रूप गुन में
गुननीय बिसाल ॥ ५३ ॥
करैं इसका प्रांत गनना
में अधिक सतकार ।
इसैं समझैं श्रौर भी बहु
प्रान्त सुख दातार ॥
सो अनेक सुदेस भाषा
हैं यदपि इस काल ।

हैं धरे सब विविध विध के
सुगुन परम बिसाल ॥ ५४ ॥
पर इन सब में नागरी है
सब को हितकारि ।
स्वच्छ सरल सुन्दर ललित
आसु देत फल चारि ॥ ५५ ॥
अँगरेजो ने की यथा
निज भाषा सिरताज ।
उसी भाँति उन्नति करो
हिन्दी की मिल आज ॥ ५५ ॥
गद्य पद्य नाटक रचौ
जग उपकारक चारु ।
स्वाभाविक प्राकृतिक हैं
ग्रन्थ जगत शृंगारु ॥ ५६ ॥
बँगला अँगरेजी तथा
उर्दू में गुन आल ।
आदि मराठी फारसी
में जो ग्रन्थ विसाल ॥ ५७ ॥
उनके कर अनुवाद बर
भरैा नागरी भौन ।
इस विधि से दरसाइये
उन्नति मारग जौन ॥ ५८ ॥
विद्या अवनति देस
पतन की है महतारी ।
जाती भाषा से
सुदेस की दसा बिचारी ॥
है बस दोहा विषै
नागरी में परधाना ।
एक शृंगार द्वितीय
धरम सुन्दर सुखदाना ॥
अब धरम श्रौर शृंगार तज
अन्य विषै भी कुछ कहो ।
सर्वांग पूर्ण कर नागरी
बिसद सुजस जग में लहो ॥ ५९ ॥

धर्म्मवीर ।

(पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित)

षट्पद ।

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले फले।
ज्ञान का दीया निराली जोत से जिस के जले॥
आँच में जिसके पिघल कर काँच हीरे सा ढले।
जो बड़ा ही दिव्य है तलछट नहीं जिसके तले॥
हैं उसे कहते धरम जिससे टिकी है यह धरा।
तेज से जिसके चमकता है गगन तारों भरा॥ १॥

पालनेवाला धरम का है कहाता धर्म्मवीर।
सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर॥
है सुरलों से भरी संसार में उसकी कुटीर।
वह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर॥
है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची।
सीढ़ियाँ सुख की उसी के हाथ की ही हैं रची॥ २॥

एक देशी वह जगतपति को बनाता है नहीं।
बात गढ़ कर एक का उसको बताता है नहीं॥
रंग अपने ढंग का उस पर चढ़ाता है नहीं।
युक्तियों के जाल में उसको फँसाता है नहीं॥
भेद का उसके लगाता है वही सच्चा पता।
ठीक उसका भान देता है वही सबको बता॥ ३॥

तेज सूरज में उसी का देख पड़ता है उसे।
वह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे॥
वह पवन में और पानी में झलकता है उसे।
जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे॥
राजती सब ओर है उसके लिए उसकी विभा।
पत्थरों में भी उसे उसकी दिखाती है प्रभा॥ ४॥

पेड़ में उसको दिखाते हैं हरे पत्ते लगे।
वह समझता है सुयश के पत्र हैं उसके टँगे॥
फूल खिलते हैं अनूठे रंग में उसके रँगे।
फल उसे रस में उसी के देख पड़ते हैं पगे॥
एक रजकण भी नहीं है आँख से उसके गिरा।
राह का तिनका दिखाता है उसे भेदों भरा॥ ५॥

सोचता है वह जो मिलते हैं उसे पर्वत खड़े।
उसी की राह में सब ओर यह पत्थर गड़े॥
जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बड़े।
तो उसे मिलते वहाँ हैं ज्ञान के बीज पड़े॥
वह समझता है पयोनिधि प्रेम में उसके गला।
जंगलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला॥ ६॥

हैं उसी की खोज में नदियाँ चली जाती कहीं।
है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं।
याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं।
निर्झरों के बीच छीटें हैं उसी की उड़ रहीं।
वह समझता है उसी की धार सोतों में बही।
झलमलाता सा दिखाता झील में भी है वही॥ ७॥

भीर भौरों की उसी की भर रही हैं भाँवरें।
गान गुन उसका रसीले कंठ से पंछी करें॥
भनभना कर मक्खियाँ हर दम उसी का दम भरें।
तितलियाँ हो हो निछावर ध्यान उसका ही धरें॥
वह समझता है न है झनकार झींगुर की डगी।
है सभी कीड़े मकोड़ों को उसी की धुन लगी॥ ८॥

है अछूती जोत उसकी मंदिरों में जग रही।
मसजिदों गिरजाघरों में भी दरसता है वही॥
बौध मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही।
जैन मंदिर भी छुटा उसकी छटा से है नहीं॥
ठीक दिन में दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर।
देख पड़ती है उसी की आँख में उसको कसर॥ ९॥

संख उसके वास्ते देता जगत को है जगा।
बाँग भी सब को उसी की ओर देती है लगा॥
गान इन ईसाइयों का ताल पै लय में पगा।
इस सुरत को है उसी की ओर ले जाता भगा॥
जो बिना समझे किसी को भी बनाता है बुरा।
वह समझता है वही सच पर चलाता है छुरा॥ १०॥

हो तिलक तिरछा तिकोना गोल आड़ा या खड़ा।
गौन हो दस्तार हो या बाल हो लंबा बढ़ा॥
जो बनावट का बुरा धब्बा न हो इन पर पड़ा।
तो सभी हैं ठीक, देते हैं दिखा पारस गड़ा॥

जो इन्हें ले कर झगड़ता या उड़ाता है हँसी।
जानता है वह समझ है जाल में उसकी फँसी ॥११॥

गेरुआ कपड़ा पहनना, घूमना, दम साधना।
राख मलना, गरमियों में आग जलती तापना॥
जंगलों में बास करना, तन न अपना ढाँकना।
बाँधना कंठी, गले में सेल्हियों का डालना॥
वह इन्हें मन जीत लेने की जुगुत है जानता।
जो न उतरी मैल तो सूखा ढचर है मानता ॥ १२॥

पत्तजिवा, रुद्राछ, तुलसी की बनी माला रहे।
या कोई तसवीह हो या पोर उँगली की गहे॥
या बहुत सी कंकड़ी लेकर कोई गिनना चहे।
या प्रभू का नाम अपनी जीभ से योंहीं कहे॥
लौ लगाने को बुरा इन में नहीं है एक भी।
आँख में उसकी नहीं तो काठ मिट्टी हैं सभी ॥१३॥

ध्यान, पूजा पाठ, व्रत, उपवास देवाराधना।
घूमना सब तीरथों में आसनों को साधना॥
जोग करना, दीठ को निज नासिका पर बाँधना।
सैकड़ों संयम नियम में इन्द्रियों को नाधना॥
वह समझता है सभी हैं ज्ञान माला की लड़ी।
जो दिखावट की न भद्दी छींट हो इन पर पड़ी ॥१४॥

बौध त्रिपिटिक, बाइबिल, तौरेत, या होवे कुरान।
जिन्दवस्ता, जैन की ग्रन्थावली, या हो पुरान॥
वेद मत का हो बहुत कुछ है हुआ इनमें बखान।
है बहा बहु धार से इनमें उसी का दिव्य ज्ञान॥
ठीक इसका भेद गुरु लेकर वही है बूझता।
हैं बुरे वह आँख औगुण ही जिसे है सूझता ॥१५॥

बुद्ध, जिन, ईसा, मुहम्मद, और मूसा को भला।
कौन कह सकता है दुनिये को इन्होंने है छला॥
सोच लो ज़रदस्त भी है क्या कहीं उलटे चला।
ये लगा कर आग दुनिये को नहीं सकते जला॥
वह इसी से है समझता वेद के पथ पर चढ़े।
ये समय औ देस के अनुसार हैं आगे बढ़े ॥ १६॥

बौध, हिन्दू, जैन, ईसाई, मुसल्माँ, पारसी।
जो बुराई से बचे रक्खें न कुछ उसकी लसी॥
धरम की मरजाद पालें हो सुरत हरि में बसी।
तो भले हैं ये सभी दोनों जगह होंगे जसी॥
वह उसी को है बुरा कहता किसी को जो छले।
है धरम कोई न खोटा ठीक जो उस पर चले ॥१७॥

बौधमत, हिन्दूधरम, इसलाम, या ईसाइयत।
हैं जगत के बीच जितने जैन आदिक और मत॥
वह बताता है सभों की एक ही है असलियत।
है स्वमत में निज बिचारों के सबब हर एक रत॥
ठौर है वह एक ही यह राह कितनी है गई।
दूध इनका एक है केवल पियाले हैं कई ॥ १८॥

वह क्रिया से है भली जी की सफाई जानता।
पंडिताई से भलाई को बड़ी है मानता॥
वह सचाई को पखंडों में नहीं है सानता।
वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता॥
ज्ञान से जग बीच रह कर हाथ वह धोता नहीं।
आड़ में परलोक की वह लोक को खोता नहीं॥१९॥

तंग करना, जी दुखाना, छेड़ना भाता नहीं।
वह बनाता है, कभी सुलझे को उलझाता नहीं॥
देख कर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं।
एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं॥
लोक सेवा से सफल हो कर सदा बढ़ता है वह।
धूल बन कर पाँव की जन सीस पर चढ़ता है वह २०

धन, विभव, पद, मान, उसको और देते हैं झुका।
प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका॥
वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुँका।
बैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका॥
प्यार से है बाघ से बिकराल को लेता मना।
वह भयंकर ठौर को देता तपोवन है बना ॥ २१॥

हैं कहीं काले बसे गोरे दिखाते हैं कहीं।
लाल, पीले, सेत, भूरे, साँवले भी हैं यहीं॥
पीढ़ियाँ इनकी कभी नीची कभी ऊँची रहीं।
रँग बदलने से बदलती दीठ है उसकी नहीं॥
भेद वह अपने पराये का नहीं रखता कभी।
सब जगत है देस उसका जाति है मानव सभी २२

वह समझता है सभी रज बीज से ही हैं जना।
मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी बना॥
मान जाने पर न किसकी आँख से आँसू छना।
दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना॥

धर्मवीर ।

(पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित)

षट्पद ।

यह जगत जिसके सहारे से सदा फूले फले।
ज्ञान का दीया निरालो जोत से जिस के जले॥
आँच में जिसके पिघल कर काँच हीरे सा ढले।
जो बड़ा ही दिव्य है तलछट नहीं जिसके तले॥
हैं उसे कहते धरम जिससे टिकी है यह धरा।
तेज से जिसके चमकता है गगन तारों भरा॥ १॥

पालनेवाला धरम का है कहाता धर्मवीर।
सब लकीरों में उसी की है बड़ी सुन्दर लकीर॥
है सुरत्नों से भरी संसार में उसकी कुटीर।
यह अलग करके दिखाता है जगत को छीर नीर॥
है उसी से आज तक मरजाद की सीमा बची।
सीढ़ियाँ सुख की उसी के हाथ की ही हैं रची॥ २॥

एक देशी यह जगतपति को बनाता है नहीं।
बात गढ़ कर एक का उसको बताता है नहीं॥
रंग अपने ढंग का उस पर चढ़ाता है नहीं।
युक्तियों के जाल में उसको फँसाता है नहीं॥
भेद का उसके लगाता है वही सच्चा पता।
ठीक उसका भान देता है वही सबको बता॥ ३॥

तेज सूरज में उसी का देख पड़ता है उसे।
यह चमकता बादलों के बीच मिलता है उसे॥
यह पवन में और पानी में झलकता है उसे।
जगमगाता आग में भी वह निरखता है उसे॥
राजती सब ओर है उसके लिए उसकी विभा।
पत्थरों में भी उसे उसकी दिखाती है प्रभा॥ ४॥

पेड़ में उसको दिखाते हैं हरे पत्ते लगे।
यह समझता है सुयश के पत्र हैं उसके टँगे॥
फूल खिलते हैं अनूठे रंग में उसके रँगे।
फल उसे रस में उसी के देख पड़ते हैं पगे॥
एक रजकण भी नहीं है आँख से उसके गिरा।
राह का तिनका दिखाता है उसे भेदों भरा॥ ५॥

सोचता है यह जो मिलते हैं उसे पत्थर गड़े॥
हैं उसी की राह में सब ओर यह
जो दिखाते हैं उसे मैदान छोटे या बड़े।
तो उसे मिलते यहाँ हैं ज्ञान के बीए पड़े॥
यह समझता है पयोनिधि प्रेम से उसके गला।
जंगलों में भी उसे उसकी दिखाती है कला॥ ६॥

हैं उसी की खोज में नदियाँ चली जाती कहीं।
है तरावट भूलती उसकी कछारों को नहीं॥
याद में उसकी सरोवर लोटता सा है वहीं।
निर्झरों के बीच छींटें हैं उसी की उड़ रहीं॥
यह समझता है उसी की धार सोतों में बही।
झलमलाता सा दिखाता झील में भी है वही॥ ७॥

भीर भौरों की उसी की भर रही हैं भाँवरें।
गान गुन उसका रसीले कंठ से पंछी करें॥
भनभना कर मक्खियाँ हर दम उसी का दम भरें।
तितलियाँ हो हो निछावर ध्यान उसका ही धरें॥
वह समझता है न है झनकार झींगुर की डगी।
है सभी कीड़े मकोड़ों को उसी की धुन लगी॥ ८॥

है अछूती जोत उसकी मंदिरों में जग रही।
मसज़िदों गिरजाघरों में भी दरसता है वही॥
बौध मठ के बीच है दिखला रहा यह एक ही।
जैन मंदिर भी छुटा उसकी छटा से है नहीं॥
ठीक दिन में दीठ जिसकी है नहीं सकती ठहर।
देख पड़ती है उसी की आँख में उसको कसर॥ ९॥

संख उसके वास्ते देता जगत को है जगा।
बाँग भी सब को उसी की ओर देती है लगा॥
गान इन ईसाइयों का ताल धौ लय में पगा।
इस सुरत को है उसी की ओर ले जाता भगा॥
जो बिना समझे किसी को भी बनाता है बुरा।
यह समझता है वही सच पर चलाता है छुरा॥ १०॥

हो तिलक तिरछा तिकोना गोल आड़ा या खड़ा।
मौन हो दस्तार हो या बाल हो लाँबा बड़ा॥
जो बनावट का बुरा धब्बा न हो इन पर पड़ा।
तो सभी हैं ठीक, देते हैं दिखा पारस गड़ा॥

जो इन्हें ले कर भगड़ता या उड़ाता है हँसी।
जानता है वह समझ है जाल में उसकी फँसी ॥११॥

गेरुवा कपड़ा पहनना, घूमना, दम साधना।
राख मलना, गरमियों में आग जलती तापना॥
जंगलों में बास करना, तन न अपना ढाँकना।
बाँधना कंठी, गले में सेल्हियों का डालना॥
वह इन्हें मन जीत लेने की जुगुत है जानता।
जो न उतरी मैल तो सूखा ढचर है मानता ॥ १२॥

पतजिवा, रुद्राछ, तुलसी की बनी माला रहे।
या कोई तसबीह हो या पोर उँगली की गहे॥
या बहुत सी कंकड़ी लेकर कोई गिनना चहे।
या प्रभू का नाम अपनी जीभ से योहीं कहे॥
लौ लगाने को बुरा इन में नहीं है एक भी।
आँख में उसकी नहीं तो काठ मिट्टी हैं सभी ॥१३॥

ध्यान, पूजा पाठ, व्रत, उपवास देवाराधना।
घूमना सब तीरथों में आसनों को साधना॥
जोग करना, दीठ को निज नासिका पर बाँधना।
सैकड़ों संयम नियम में इन्द्रियों को नाधना॥
वह समझता है सभी हैं ज्ञान माला की लड़ी।
जो दिखावट की न भद्दी छीट हो इन पर पड़ी ॥१४॥

बौध त्रिपिटिक, बाइबिल, तौरेत, या होवे कुरान।
जिन्दवस्ता, जैन की ग्रन्थावली, या हो पुरान॥
वेद मत का हो बहुत कुछ है हुआ इनमें बखान।
है बहा बहु धार से इनमें उसी का दिव्य ज्ञान॥
ठीक इसका भेद गुण लेकर वही है बूझता।
है बुरी वह आँख औगुण ही जिसे है सूझता ॥१५॥

बुद्ध, जिन, ईसा, मुहम्मद, और मूसा को भला।
कौन कह सकता है दुनिये को इन्होंने है छला॥
सोच लो ज़रदस्त भी है क्या कहीं उलटे चला।
ये लगा कर आग दुनिये को नहीं सकते जला॥
पर इसी से हैं समझता वेद के पथ पर चढ़े।
ये समय औ देस के अनुसार हैं आगे बढ़े ॥ १६॥

बौध, हिन्दू, जैन, ईसाई, मुसल्माँ, पारसी।
जो बुराई से बचे रक्खें न कुछ उसकी लसी॥
धरम की मरजाद पालें हो सुरत हरि में बसी।
तो भले हैं ये सभी दोनों जगह होंगे जसी॥

वह उसी को है बुरा कहता किसी को जो छले।
है धरम कोई न खोटा ठीक जो उस पर चले ॥१७॥

बौधमत, हिन्दूधरम, इसलाम, या ईसाइयत।
हैं जगत के बीच जितने जैन आदिक और मत॥
वह बताता है सभों की एक ही है असलियत।
है स्वमत में निज विचारों के सबब हर एक रत॥
ठौर है वह एक ही यह राह कितनी है गई।
दूध इनका एक है केवल पियाले हैं कई ॥ १८॥

वह क्रिया से है भली जी की सफाई जानता।
पंडिताई से भलाई को बड़ी है मानता॥
वह सचाई को पखंडों में नहीं है सानता।
वह धरम के रास्ते को ठीक है पहचानता॥
ज्ञान से जग बीच रह कर हाथ वह धोता नहीं।
आड़ में परलोक की वह लोक को खोता नहीं॥१९॥

तंग करना, जी दुखाना, छेड़ना भाता नहीं।
वह बनाता है, कभी सुलझे को उलझाता नहीं॥
देख कर दुख दूसरों का चैन वह पाता नहीं।
एक छोटे कीट से भी तोड़ता नाता नहीं॥
लोक सेवा से सफल हो कर सदा बढ़ता है वह।
धूल बन कर पाँव की जन सीस पर चढ़ता है वह २०

धन, विभव, पद, मान, उसको और देते हैं झुका।
प्रेम बदले के लिये उसका नहीं रहता रुका॥
वह अजब जल है उसे जाता है जो जग में फुँका।
वैरियों से वह कभी बदला नहीं सकता चुका॥
प्यार से है बाघ से विकराल को लेता मना।
वह भयंकर ठौर को देता तपोवन है बना ॥ २१॥

हैं कहीं काले बसे गोरे दिखाते हैं कहीं।
लाल, पीले, सेत, भूरे, साँवले भी हैं यहीं॥
पीढ़ियाँ इनकी कभी नीची कभी ऊँची रहीं।
रँग बदलने से बदलती दीठ है उसकी नहीं॥
भेद वह अपने पराये का नहीं रखता कभी।
सब जगत है देस उसका जाति है मानव सभी २२

वह समझता है सभी रज बीज से ही हैं जना।
मांस का ही है कलेजा दूसरों का भी घना॥
मान जाने पर न किसकी आँख से आँसू छना।
दूसरे भी चाहते हैं मान का मुट्ठी चना॥

खौलना जिसका किसी से भी नहीं जाता सहा।
है रगों में दूसरों की भी वही लोहू बहा ॥ २३ ॥

वह तनक रोना कलपना बैर का सहता नहीं।
हाथ धो कर बैर के पीछे पड़ा रहता नहीं ॥
बात लगती वह किसी को एक भी कहता नहीं।
चोट पहुँचाना किसी को वह कभी चहता नहीं ॥
जानता है दीन दुखियों के दरद को भी वही।
बेकसों की आह उससे है नहीं जाती सही ॥ २४ ॥

वह चुड़ैलें चाह की उसको नहीं सकतीं सता।
प्यार वह निज वासनाओं से नहीं सकता जता ॥
मोह की जी में नहीं उसके उलहती है लता।
है कलेजे में न कीने का कहीं मिलता पता ॥
रोस की जी में कभी उठती नहीं उसके लपट।
छल नहीं करता किसी से वह नहीं करता कपट २५

गालियाँ भाती नहीं ताने नहीं जाते सहे।
आग लग जाती है कड़ी बात जो कोई कहे ॥
देख कर नीचा किसी की आँख कब ऊँची रहे।
ठोकरें खा कर भला किस को नहीं आँसू बहे ॥
वह समझता है न इतना घाव करती है छुरी।
टेस होती है बड़ी हो इस कलेजे की बुरी ॥ २६ ॥

है विभव किस काम का वह हो लहू जिसमें लगा।
आग उस धन में लगे जिसमें हुई कुछ भी दगा ॥
वह गरब गिर जाय जिसका है सताना ही सगा।
धूल में वह पद मिले जो है कलंकों से रँगा ॥
वह विवस हो कर सदा दुख से सुनाता है यही।
वह धरा धँस जाय जिस पर हैं कभी लोथें बही २७

वह भला है, यह बुरा है, वह समझता है सभी।
भूसियों में, छोड़ कर चावल नहीं फँसता कभी ॥
जब ठिकाने है पहुँचता मोद पाता है तभी।
बात थोथी है नहीं मुँह से निकलती एक भी ॥
है जहाँ पर चूक उसकी आँख पड़ती है वहीं।
जड़ पकड़ता है उलझता पत्तियों में वह नहीं ॥२८॥

चाटुओं का ऐंठना, बढ़ना, चहकना, बोलना।
रूठना, हँसना, मचलना, मुँह न अपना खोलना ॥
संग बन आना, कभी इन पत्तियों सा डाल
वह समझता है तराजू पर उसे है तोलना
है उसी ने ही पढ़ी जी की लिखावट को सदं
गुत्थियाँ उसकी सदा है ठीक सुलझाता वही ॥२

देखता अंधा नहीं, उजले न होते हैं रँ
दौड़ता लँगड़ा नहीं, सोये नहीं होते जगे
क्यों न वह फिर रास्ते पर ठीक चलने से डं
हैं बहुत से रोग जिसके एक ही दिल को लगे
देख कर बिगड़ा किसी को वह नहीं करता गिला
काम की कितनी दवायें हैं उसे देता पिला ॥३०

देख कर गिरते उठाता है, बिगड़ जाता नहीं
वह छुड़ाता है, फँसे को और उलझाता नहीं
राह भूले को दिखा देता है भरमाता नहीं
है बिगड़ते को बनाता आँख दिखलाता नहीं।
सर अँधेरे में भला किसका न टकराया किया
वह अँधेरा दूर करता है जलाता है दिया ॥ ३१ ॥

जीव जितने हैं जगत में, हैं उसे प्यारे बड़े।
दुख उसे होता है जो तिनका कहीं उनको गड़े।
एक चींटी भी कहीं जो पाँव के नीचे पड़े।
तो अचानक देह के होते हैं सब रोयें खड़े ॥
हैं छुटे उसकी दया से ये हरे पत्ते नहीं।
तोड़ते इनको उसे हैं पीर सी होती कहीं ॥ ३२ ॥

काँप उठे सब लोक पत्ते की तरह धरती हिले।
राज धन जाता रहे पद मान मिट्टी में मिले ॥
जीभ काटी जाय, फोड़ी जाँय आँखें, मुँह सिले।
सैकड़ों टुकड़े बदन हो, पर्त चमड़े की छिले ॥
छोड़ सकता उस समय भी वह नहीं अपना धरम।
जब रहें हर एक रोयें नोचते चिमटे गरम ॥३३॥

धर्म्म वीरों की चले, सब लोग हो जायें भले।
भाइयों से भाइयों का जी न भूले भी जले ॥
चन्द्रमा निकले धरम का पाप का बादल टले।
हे प्रभो संसार का हर एक घर फूले फले ॥
इस धरा पर प्यार की प्यारी सुधा सब दिन बहे।
शान्ति की सब ओर सुन्दर चाँदनी छिटकी रहे ३४

भाषा का महत्त्व और हिन्दी पर विचार ।

[पंडित माधव शुक्ल रचित ।]

मुख के शब्द निकाल सदा उपयुक्त कहूँगा ।
औ फिर अपनी कही बात पर सुदृढ़ रहूँगा ॥
होती है उपयुक्त बात यद्यपि अतिशय कटु ।
किन्तु कभी भी नहिं विचार करते इस का पटु ॥
विद्वज्जन की हंस सम सदा उचित होनी प्रकृति ।
इस से ही सब जगत में होती है तिनकी सुकृति ॥१॥

हो सकी क्या किसी देश की कभी समुन्नति ।
जब लौं होती रहै देश-भाषा की अवनति ॥
क्या जर्मन, इङ्गलैण्ड, रूस, जापान दिखाते ।
यदि निज भाषा भानु तुल्य कर नहिं चमकाते ॥
भाषा है वह शक्ति जग जेता जिस को ही प्रथम ।
छीन नष्ट कर डालने यही राजनीतिज्ञ काम ॥२॥

होता जैसा देश नाम सोई प्रकार से ।
होती भाषा और जाति देखो विचार से ॥
ज्यों इङ्गलिश-इङ्गलैण्ड, चीन चीनी, जापानी ।
भाषा हिन्दी, देश हिन्द, त्यों हिन्दुस्तानी ॥
यही नियम-विधि जगत में पालित होता अधिकतर ।
होती भाषा जाति दोउ देश नाम आधार पर ॥३॥

विधि रचना में होता पहिले देश अङ्कुरित ।
तदनन्तर जन-पत्र, जाति-शाखा, बहु निर्मित ॥
उच्चारित जन शब्द शीघ्र, कलिका फिर बनकर ।
करती भाषा रूप पुष्प प्रस्फुट अति सुन्दर ॥
जिसकी शक्ति सुगंध से ज्ञान हृदय होता प्रकट ।
पाकर जिसको सुजनजन धारण करते सुयश पट ॥४॥

भाषारूपी रंग देशजल पड़ते ही छन ।
हो जाता जलरूप रंगमय में परिवर्तन ॥
जिससे फिर बहु विषय वस्त्र रंगे जाते हैं ।
जिन्हें पहिन कर देश सुजन शोभा पाते हैं ॥
भाषा है सुख मूल जग पद रक्षण की शान है ।
अमर देश को करन हित अमृत बिन्दु समान है ॥५॥

देह प्राण का ज्यों पवित्र सम्बन्ध परस्पर ।
है जिससे भी अधिक देश-भाषा का सुन्दर ॥

बीते थोड़े दिवस प्राण भागत तज यह तन ।
किन्तु न भाषा तजत देश यह विधि एकहु छन ॥
हो करके बलहीन अरु विविध अनादर सहत है ।
किन्तु प्रेमवश लपट कर सदा देश ही रहत है ॥६॥

दीपक मानो देश, ज्योति जिसकी है भाषा ।
रहत जबहिं लौं बनी तबहिं लौं रहत प्रकाशा ॥
होते ही वह नष्ट दीपघनतम में पड़कर ।
हो जाता है चूर चूर सा खाकर ठोकर ॥
तिससे ज्योति बचाइये भाषारूपी कर जतन ।
नहिं, ढूँढे नहिं पाइहो देशदीप कहुँ एक कन ॥७॥

भाषा ही से हृदय भाव जाना जाता है ।
शून्य किन्तु प्रत्यक्ष हुआ सा दिखलाता है ॥
इसमें है यह शक्ति हृदय को हर लेती है ।
चंचल लोगों को चित्रित सा कर देती है ॥
नव रस आभूषण पहिन प्रकट होत मुख द्वार जब ।
लखि अतच्छ मनहरण छवि मुग्ध कौन नहिं होत तब ८

देश जनों का मुख्य यही कर्तव्य अधिकतर ।
सब मिल करते रहैं देश भाषा का आदर ॥
इसमें ही कल्याण देश का निश्चय जानो ।
बिन भाषा बलवती देश निःसारहि मानो ॥
होता है ज्यों एक नृप विविध जाति युत देशहित ।
भाषाओं में एक को राष्ट्र बनाना त्यों उचित ॥९॥

हा ! रहते हम हिन्द कहाते हिन्दुस्तानी ।
किन्तु, न हिन्दी उचित रीति भाषा सन्मानी ॥
इत उत डारत फिरत श्वान ज्यों मुख लालायित ।
तथा हमहुं आचरन पेट निज पालन के हित ॥
बिन भाषा निज देश की दुर्गति देखहु आज सब ।
मिथ्या गर्व न आपपन कोउ सहाय नहिं होत अब १०

बिन भाषा की जाति नहीं शोभा पाती है ।
और देश की मर्यादा भी घट जाती है ॥
इस पर भी कर सको न यदि हिन्दी का आदर ।
रहना चाहो बने सदा [illegible] कादर ॥

रो करते हो नष्ट क्यों दैव नियम को खण्ड कर।
मेटो हिन्दू हिन्द भी दोउ हरताल लगाय कर ॥ ११ ॥
हिन्दी ऐसी स्वच्छ, शुद्ध, सुस्पष्ट सरल तर।
जिसके सम नहिं है कोई भाषा भूतल पर ॥
पढ़ने में अति सरल, सुकोमल, सुललित, मृदुतम।
मुख्य अर्थप्रद, कबहुँ न होता है जिससे भ्रम।
विधि अतिशय निजकरकृपा दिया तुमहिं को यह रतन
किन्तु न राखत बनत हो। अहो बंधुगन! कर जतन १२
है अति सुन्दर देवनागरी इसका अक्षर।
जिन में हैं वेदादि ग्रंथ संलिखित निरन्तर ॥
संस्कृत भाषा सर्व मान्य इस जग में जो है।
पोषक अरु उत्पत्ति द्वार हिन्दी की सो है ॥
गणना में भाषान के यही गुणाकर एक है।
तिससे करना इसी को उचित राज्य अभिषेक है ॥ १३ ॥
केवल हिन्दू बीस कोटि हैं हिन्द देश में।
विविध भेद हैं जिनमें भाषा और वेष में ॥

किन्तु अधिक भाषा हैं ज्यों पंजाबी, गुर्जर।
बङ्ग मराठी आदि स्वल्पही जिनमें अन्तर।
बोल चाल अरु लिखन सब हिन्दी से बहु मिलि
तिस कारण से भी इसी को ही गुरुता विहित है।
तामिल तेलगू आदि द्रविड़ भाषा ऐसी हैं।
जो हिन्दी से नहिं विशेषता से मिलती हैं
तिनका भी कुछ संस्कृत से मिलने के कारण
हो सकता यह कष्ट सरल में ही विनिवारण।
पाये जाते तहाँ भी हिन्दी के जन रसिक हैं।
जन हिन्दी के पक्ष में यदि देखो तो अधिक हैं ॥ १४

बहु गुणागरी लिपि सुनागरी कहलाती है।
यह भी थोड़ा श्रम करने से आ जाती है ॥
हैं इस से ही भरे हमारे ग्रंथ पुरातन।
इसकी सुस्पष्टता सरलता भासित जन जन
लिपि को भी नहिं हायगो देने में राष्ट्रीय पद
किसी भाँति नागरीहित जनित देशजन कुछवि

——:०:——

सम्मेलन समित्यष्टक।

[पंडित मनोहरलाल मिश्र रचित।]

लावनी।

हिन्दी साहित सम्मेलन का,
काशीपुर में मेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ टेक ॥

चन्द्र ग्रहण अरु सूर्य ग्रहण,
वारुणी सोमवारी न्हाते।
कुम्भ आदि शुभ पर्व कहावत,
नित प्रति आते जाते ॥
कोउ वर्ष कोउ बार बरस में,
कोउ छत्तिस बरसें बीते।
दान धर्म असनान किये का,
फल होता ऋषि मुनि गाते ॥
जो जन इनको नहिं मानत हैं,
लहि अघ अपयश हेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ १ ॥

लख चौरासी योनि कठिन है,
आरज कुल सपूत मानें।
रामकृपा बिन मिलत नहीं है,
सुर दुर्लभ सबही जानें ॥
नर तन पर्वा मिलन कठिन है,
काशीपुर अस शुभथानें।
नवरात्री नवदुर्गा पूजन,
नवविधान युकी ठानें ॥
सभ्य शिरोमणि देश भरे के,
विद्वानों का खेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ २ ॥

ऐसे मनुज शरीर पर्व में,
जिन नाहीं कर्त्तव्य किया।
जगमग ज्योति प्रकाशन के हित,
पुरुष नहीं पुरुषार्थ किया।
मनसा वाचा और कर्मणा,
नहिं हिन्दी हित ध्यान दिया ॥
उलटी सीधी बात बना कर,
निष्कारण दुर्वाद किया ॥
सम्मेलन के बने विरोधी,
नाहक कौन झमेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ ३ ॥

पूर्वा अरु उत्तराषाढ में,
शक्ती शांति प्रदाता है।
श्रवण लगत सचेत हो जाओ
कर्तव कर्म बिधाता है ॥
अब लग जगरानी जगदम्बा,
प्रतिमा पूजन माता है।
प्रसन्न हो भारती भवानी,
प्रतिभा पूरण दाता है ॥
उन्मीलन कर नेत्र खोलिये,
सन्मुख भयो उजेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ ४ ॥

भई प्रसन्न भवानी प्रतिमा,
दर्शन प्राचीदिशि कीजै।
अरु वक्ताओं की वाणी की,
अमृतधारा पी लीजै ॥
मोहनमदन सदन गुन केरे,
बचन मनोहर सुन लीजै।
रामावतार सुधाकर जी की,
मधुर सुधा का रस पीजै ॥

श्यामबिहारी साहित ज्ञाता,
श्रीधर संत अकेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है ॥ ५ ॥

सोचो भैय्या जुर मिल सब,
किस विधि हिन्दी हित साधन हो।
प्रथम उसी की पूर्तिकरन में,
सब का चित्त श्रराधन हो॥
एक बात जो ध्यान में आई,
सो सब को बतलाते हैं।
होमियोपैथिक विद्य चिकित्सक,
प्रायः आदर पाते हैं॥
उस विद्या का निज भाषा में,
ग्रंथ नहीं अलबेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है॥ ६॥
जौन कमी हो निज भँडार में,
उसको पूरण प्रथम करो।
कोप नागरी परिपूरण का,
सबसे पहिले ध्यान धरो॥
युक्तदेश के राजद्वार में,
हिन्दी लिपि विस्तार करो।
पुस्तक निर्धारणी सभा में,
निज प्रतिनिधी प्रवेश करो॥
इतिहास रची व्याकरण दुरंगी,
के दुर्भाव सुटेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है॥७॥
वैज्ञानिक इतिहासिक ग्रंथर,
उपन्यास शिक्षा धारे।
हिन्दी के प्राचीन रत्न जो,
अनुमुद्रित शुभगुन वारे॥
वर्तमान जो सभा उपस्थित,
काम बाँट दो तुम प्यारे।
सम्पादक समाज का रोपण,
कर दीजै विधिवत प्यारे॥
"भारततेन्दु" का पदक नियत कर,
हिन्दी "रसिक" सुमेला है।
उठ बैठो हिन्दी के हितैषी,
आई अमृत वेला है॥८॥

——:०:——

वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति।

[पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा लिखित।]

मनुष्य अपनी रचना में सदा परिवर्तनशील होता है इसी से मनुष्य की निर्माण की हुई समस्त वस्तुओं में समय के साथ सदा परिवर्तन होता ही रहता है। दुनिया भर की समस्त लिपियों में छापे के यंत्र की शोध के पूर्व समय के साथ बहुत कुछ अंतर पाया जाता है और यही दशा हमारी नागरी लिपि की भी हुई है। मध्य एशिया, जापान आदि से मिले हुए थोड़े से नागरी लिपि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं हमारे यहाँ से मिले हुए असंख्य प्राचीन शिला लेख, ताम्रपत्र और सिक्कों की नागरी लिपि में वर्तमान नागरी लिपि से बड़ा अंतर है जो समय के साथ क्रमशः क्रमशः होता गया है। जिसको प्राचीन नागरी लिपि का बोध न हो ऐसे विद्वान् के सामने यदि अशोक के लेख का फ़ोटो रख दिया जाय तो वह उसकी लिपि को कभी नागरी न कहेगा, इतना ही नहीं किन्तु वह इस बात को सहसा स्वीकार भी न करेगा कि उस विलक्षण लिपि में परिवर्तन होते होते हमारी वर्तमान नागरी लिपि बनी है।

वर्तमान नागरी लिपि का मूल अर्थात् प्राचीन रूप मौर्यवंश के प्रतापी राजा अशोक के शिलालेखों की लिपि में मिलता है जो (लेख) विक्रम संवत् से क़रीब २०० वर्ष पूर्व के हैं और काठियावाड़ से उड़ीसे तक और नेपाल की तराई से माइसोर तक अनेक स्थानों में मिले हैं। अशोक के समय यह लिपि बहुधा सारे हिन्दुस्तान में वैसी ही प्रचलित थी जैसी कि इस समय नागरी लिपि है। अशोक के पूर्व नागरी का क्या रूप था और उसमें कैसे कैसे परिवर्तन होने के पश्चात् वह उस स्थिति को पहुँची यह जानने के लिये अब तक ठीक साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं[1] अतएव अभी तो हमको अशोक के समय की लिपि को ही अपनी नागरी लिपि का उत्पत्ति-स्थान मानना चाहिए।

अशोक के समय की नागरी लिपि भारतवासियों ने ही निर्माण की या उन्होंने दूसरों से ग्रहण की इस विषय में भिन्न भिन्न विद्वानों के मत भिन्न भिन्न हैं। इस छोटे से लेख में उक्त विवाद-ग्रस्त विषय को स्थान देना मैं उचित नहीं समझता किन्तु जिनको उक्त विषय में विशेष जानने की इच्छा हो उनको मेरी बनाई हुई *'प्राचीन लिपिमाला'* में "पाली[2] लिपि आर्य लोगों ने ही निर्माण की है" इस विषय का लेख तथा 'इण्डियन् ऐंटिक्वेरी' में छपा हुआ आर० शामा शास्त्री, बी० ए० का देवनागरी लिपि की उत्पत्ति विषयक लेख पढ़ने का मैं आग्रह करता हूँ।

इस लेख का उद्देश केवल यही बतलाने का है कि अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् नागरी लिपि वर्तमान स्थिति को पहुँची है।

---

१ अशोक के समय से पूर्व का अब तक एक ही छोटा सा लेख मिला है जो नेपाल की तराई के पिप्रावा नामक स्थान में शाक्य जाति के लोगों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रक्खे हुए एक छोटे से पत्थर के पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा है। उसमें नागरी लिपि के केवल १४ अक्षरों के प्राचीन रूप मिलते हैं। उनमें और अशोक के लेखों की लिपि में विशेष अंतर नहीं है। भेद इतना ही है कि उनमें दीर्घ स्वर चिह्नों का अभाव है।

२ पाली—प्राचीन नागरी। यूरोपियन् विद्वानों ने अशोक के लेखों की लिपि का नाम 'पाली' लिपि रक्खा है, परन्तु उसके लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता।

अशोक के समय की लिपि का नाम 'ललित-विस्तार' में 'ब्राह्मी' लिपि मिलता है, और 'नित्या-षोडशिकार्णव' के भाष्य 'सेतुबंध' में भास्करानन्द उसका नाम 'नागर' (नागरी) लिपि होना मानता है क्योंकि वह लिखता है कि "नागर लिपि में 'ए' का रूप त्रिकोण है।[1]" जैसा कि अशोक के लेखों में मिलता है।

'नागरी' यह 'देवनागरी' का संक्षिप्त रूप है और इस लिपि का नाम 'देवनागरी' कहलाने का कारण उक्त शामा शास्त्री के मतानुसार यह पाया जाता है कि देवताओं की प्रतिमाओं के बनने के पूर्व उनकी उपासना सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी जो कई प्रकार के त्रिकोणादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे और वे यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन देवनगरों के मध्य लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालान्तर में अक्षर माने जाने लगे इसीसे उनका नाम 'देवनागरी' हुआ।

यह कहना अनुचित न होगा कि अशोक के लेखों की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से अधिक सरल थी और गुजराती लिपि की तरह उसके अक्षरों के सिर नहीं बनते थे, परन्तु पीछे के लेखकों के हाथ से उसके अनेक रूपान्तर हुए जिनके मुख्य तीन कारण अनुमान किए जा सकते हैं।

(१) अक्षरों के सिर बनाना।

(२) अक्षरों को सुन्दर बनाने का यत्न करना।

(३) त्वरा से लिखना तथा क़लम को उठाए बिना अक्षर को पूरा लिखना।

अशोक के समय की लिपि में किस प्रकार के परिवर्तन होने के पश्चात् वह वर्तमान नागरी लिपि की स्थिति को पहुँची है यह बतलानेवाला एक नक़्शा[1] इस लेख के साथ दिया गया है जि[illegible] प्रथम वर्तमान नागरी लिपि का प्रत्येक अक्षर लि[illegible] कर उसके आगे = चिह्न रक्खा है, जिसके पी[illegible] बहुधा प्रत्येक अक्षर का अशोक के समय का रू[illegible] तथा उसके समस्त रूपान्तर, जो समय समय पर हुए, दिए गए हैं। इन रूपान्तरों का विवरण नीचे लिखा जाता है—

अ--इसका पहिला रूप गिरनार पर्वत (काठिया-वाड़ में) के पास के एक चट्टान पर खुदे हुए उपर्युक्त राजा अशोक के लेख से लिया गया है। (बहुधा प्रत्येक अक्षर का पहिला रूप अशोक के लेख से ही लिया गया है अतएव आगे प[illegible] रूप का विवरण नहीं लिखा जायगा।) दू[illegible] रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों[2] में (जो ई[illegible] सन् की दूसरी शताब्दी के आस पास के हैं[illegible] उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के ताम्रपत्र [illegible] (जो कलचुरि संवत् २१४ = वि० सं० ५२० =

---

१ कोणत्रयवदुद्भवो लेखो यस्य तत्। नागरलिप्या सम्प्रदा- त्रिकोणाकारतयैव लेखनात्॥

१ यह नक़्शा मैंने प्रथम वि० सं० १९५१ (ई० स० १८९४) में तैयार कर 'प्राचीन लिपिमाला' नामक पुस्तक में छपवाया था (लिपि पत्र ५१ वे में)। कुछ समय पीछे इसको सुधारकर एक बड़े नक़्शे के रूप में तैयार कर 'नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस' को भेंट जो अब तक उक्त सभा के पुस्तकालय में रक्खा हुआ इसी की हाथ से तय्यार की हुई नक़ल बनारस के [illegible] प्रेस में छपी और 'सरस्वती' की दूसरी जिल्द में इसकी [illegible] से तैयार की हुई कापी बड़ी उत्तमता से छपी। जिसके पी[illegible] यह एक बार फिर 'सरस्वती' में छपा और 'लिपिबोध' नाम[illegible] पुस्तक के कर्ता ने भी अपनी पुस्तक में इसकी अविकल नक़[illegible] छापी परन्तु इन पिछले दोनों प्रकाशकों ने इसके कर्ता का नाम लिखने का श्रम नहीं किया। जो चित्र इस लेख के साथ दिया गया है वह सरस्वती में छपे प्लेट से लिया गया है।

२ कुशनवंशी (तुरुष्क—तुर्क) राजाओं के प्राचीन नागरी लिपि के लेख विशेष कर मथुरा तथा उसके आस पास के प्रदेश से मिले हैं।

ई० स० ४६३ का है), तथा मेवाड़ के गुहिल-वंशी राजा अपराजित के लेख में (जो वि० सं० ७१८=ई० स० ६६१ का है) मिलता है। इसमें सिर बनाने का यत्न स्पष्ट पाया जाता है। प्रारंभ में अक्षरों के सिर बहुत छोटे बनते थे परन्तु पीछे से बहुधा सारे अक्षर पर बनने लगे। प्रारंभ में यह यत्न भी अक्षर के सुन्दर बनाने के उद्देश से किया गया हो ऐसा अनुमान होता है। तीसरा रूप दूसरे रूप से मिलता हुआ है, अंतर केवल इतना ही है कि दूसरे रूप में नीचे के बाईं ओर के हिस्से में सुंदरता की दृष्टि से जो घुमाव डाला गया है उसका सम्बन्ध मूल अक्षर से तोड़ दिया है। चौथे और पाँचवें रूप में 'अ' की दाहिनी तरफ़ की खड़ी लकीर के सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है जिससे अक्षर की आकृति में विशेष अन्तर हो गया है। ये रूप ई० स० की नवीं शताब्दी के आस पास से लगाकर तेरहवीं शताब्दी तक के अनेक लेखों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। कई जैन लेखक तो अब तक हरेक खड़ी लकीर के अंत को सुन्दरता के विचार से हलंत के चिह्न का सा रूप दे देते हैं।

इ—'अ' का यह रूप अब बहुधा दक्षिण में लिखा जाता है और ऊपर लिखे हुए 'अ' के तीसरे रूप को उसकी वास्तविक स्थिति में रहने देने अर्थात् उसमें सुन्दरता लाने का यत्न न करने से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा हस्तलिखित पुस्तकों में इसके चौथे और पाँचवें रूप मिलते हैं (देखो 'प्राचीन लिपिमाला' लिपिपत्र ५ वाँ, १२ वाँ, १३ वाँ, १६ वाँ, १७ वाँ, और १८ वाँ)।

ई—का दूसरा रूप गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में (जो ई० स० की चौथी शताब्दी का है) तथा स्कंदगुप्त के समय के कहाऊँ के लेख में (जो गुप्त संवत् १४१=वि० संवत् ५१७='ई० स० ४६० का है) मिलता है, जिसमें 'इ' की बिन्दियों पर सिर बनाने का यत्न किया गया है। चौथा रूप हैहय (कलचुरि) वंशी राजा जाजल्लदेव के चेदी संवत् ८६६ (वि० सं० ११७१=ई० स० १११४) के लेख में (प्राचीन लिपिमाला; लिपिपत्र १९ वाँ) तथा कई हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में पाया जाता है। पाँचवाँ रूप १३ वीं शताब्दी के आस पास के शिलालेखों तथा पुस्तकों में मिलता है और वर्तमान 'इ' से बहुत कुछ मिलता हुआ है।

उ—के दूसरे रूप में सिर बनाया व नीचे के आड़ी लकीर के अंतिम भाग को सुन्दरता के विचार से कुछ नीचे को झुकाया है। कुशनवंशी राजाओं के लेखों में यह रूप मिलता है। उक्त झुकाव को बढ़ा देने से चौथे रूप की सृष्टि हुई है जो अनेक लेखों में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ५ वाँ, १२ वाँ और १३ वाँ)

ए—के दूसरे रूप में त्रिकोण को उलटा दिया है जिस से ऊपर की तरफ़ सिर सा दीखता है। यह रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में तथा कई अन्य लेखादि में मिलता है। (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ३ रा, १२ वाँ और १३ वाँ) चौथे रूप में शुद्ध त्रिकोण की शक्ल पलट कर वर्तमान 'ए' का प्रादुर्भाव दीख पड़ता है। यह रूप मंदसौर (मालवे में) से मिले हुए राजा यशोधर्म के लेख में (जो मालव संवत् ५८९=ई० स० ५३२ का है), मारवाड़ के पड़िहार राजा कक्कुक के समय के वि० सं० ९१८ (ई० स० ८६१) के लेख में तथा कई दूसरे लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ५ वाँ और १६ वाँ) पाँचवाँ रूप जो वर्तमान 'ए' से बहुतही मिलता हुआ है। राठौड़ राजा गोविन्द-राज (तीसरे) के शक संवत ७३० (वि० सं० ८६५=ई० सं० ८०७) के, परमार राजा वाक्पति राज (मुंज) के वि० सं० १०३१ (ई० स० ९७४) के, और कलचुरी राजा कर्णदेव के कलचुरी सं० ७९३ (वि० सं० १० ९९=ई० स० १०४२) के

ताम्रपत्रों में तथा कई अन्य शिलालेखों व पुस्तकों में मिलता है।

इस लेख के साथ के नक़शे में दर्ज किए हुए बहुधा प्रत्येक अक्षर के भिन्न भिन्न रूप अनेक शिला लेखों, ताम्रपत्रों तथा पुस्तकों में मिलते हैं। यदि उन सब के नाम, समय आदि का उल्लेख किया जाय तो एक छोटी सी पुस्तक बन जाय इसलिये आगे बहुधा उनका संक्षेप से उल्लेख किया जायगा और 'प्राचीन लिपिमाला' के लिपि पत्र का नंबर दे दिया जायगा, जिसको देखने से उसके समय आदि का वृत्तान्त मालूम हो जायगा।

क—के दूसरे रूप में सिर बनाने का यत्न पाया जाता है एवं बीच की आड़ी लकीर को झुका दिया है। (प्र० लि० ३ रा, ५ वाँ और ९ वाँ) तीसरे रूप में बीच की लकीर का झुकाव बढ़ा दिया है। यह रूप उपर्युक्त कलचुरी राजा कर्णदेव के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० १२ वाँ, १६ वाँ, १७ वाँ १८ वाँ, १९ वाँ,)

ख—का दूसरा रूप कुशनवंशी राजाओं के लेखों में तथा गिरनार पर्वत के पास के उपर्युक्त चट्टान पर खुदे हुए क्षत्रपवंश के राजा रुद्रदामा के लेख में, जो ई. स. की दूसरी शताब्दी का है (प्रा० लि० २ रा) मिलता है। तीसरे रूप में सिर बनाने के कारण अक्षर के दो खंड हो गए हैं, जिन में से पहिले खंड अर्थात् खड़ी लकीर के नीचे के हिस्से को सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है। इस प्रकार उक्त अक्षर के 'र' और 'व' ये दो रूप बन गए (चौथे रूप में स्पष्ट है) जिनको मिला कर लिखने से ही 'ख' बनता है (प्र० लि० १२, १३, १६)।

ग—'ख' की नाईं 'ग' के रूपान्तरों का मुख्य कारण सिर बनाना है। दूसरे रूप में ऊपर के कोण के स्थान में वक्रता पाई जाती है। यह रूप मथुरा के क्षत्रप राजा सोडास, और क्षत्रप राजा नहपान के जमाई दाक उषवदात के लेखों में तथा कई दूसरे लेखों में भी मिलता है। इसी रूप के ऊपर सिर बनाने तथा पहिली खड़ी लकीर को ज़रा बाईं तरफ मोड़ देने से तीसरे रूप की उत्पत्ति हुई है जो वर्तमान 'ग' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० ९, १२, १३, १६, आदि)।

घ—के दूसरे रूप के सिर बनाया गया है और दाहिनी ओर की दोनों ऊर्ध्व रेखाओं की ऊँचाई बढ़ाई गई है। यह रूप उपर्युक्त मालवा के राजा यशोधर्म के मंदसोर के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ५)। इसी का सिर पूरा बनाने तथा त्वरा के कारण अक्षर को कुछ टेढ़ा लिखने से तीसरा रूप बना है जो वर्तमान 'घ' से मिलता हुआ है। चौथा रूप भी उसी से मिलता हुआ ही है।

ङ—यह अक्षर अशोक के किसी लेख में नहीं मिलता। यह पहिले पहिल कुशनवंशियों के लेखों में संयुक्ताक्षरों में पाया जाता है। इसका पहिला रूप उपर्युक्त समुद्र गुप्त के लेख के एक संयुक्ताक्षर से लिया गया है। (प्रा० लि० ३) पीछे से इसके नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ती गई और इसकी आकृति 'ड' से मिलने लगी जिससे इसको उससे भिन्न बनाने के लिये इस के सिर के अंत में गाँठ लगाई जाने लगी (देखो रूप चौथा) जो कहीं चतुरस्र, कहीं गोल और कहीं त्रिकोण सी मिलती है। (प्रा० लि० ९, १३, २१, २३, २४) इस गाँठ का प्रादुर्भाव ई० स० की आठवीं शताब्दी के आस पास होना पाया जाता है। पीछे से यह बिंदी के रूप में अक्षर के मध्य भाग में लगाई जाने लगी।

च—के दूसरे हिस्से में सिर के अतिरिक्त बाईं ओर के नीचे के हिस्से पर नोक सी बनी है। तीसरे रूप में वर्तमान 'च' की आकृति कुछ दीख पड़ती है।

जो चौथे रूप में पूरी बनगई है। (प्रा० लि०२,४, ८,९,१६,१७,१९,२०)।

बहुधा दूसरे या तीसरे रूप से प्रत्येक अक्षर का सिर बना है अतएव अब सिर का उल्लेख जहाँ कहीं विशेष आवश्यकता होगी वहीं किया जायगा।

छ—के दूसरे रूप में खड़ी लकीर वृत्त को पार कर बाहिर निकल गई है। (प्रा० लि० १६) तीसरा रूप कन्नौज के गहरवार (राठौड़) वंशी प्रसिद्ध राजा जयचंद के वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के, और मालवा के परमारवंशी महाकुमार उदयवर्मा के वि० सं० १२५६ (ई० स० १२००) के ताम्रपत्र में मिलता है

ज—के दूसरे रूप में नीचे के हिस्से को कुछ आगे बढ़ा कर सुन्दर बनाने के लिये कुछ नीचे झुकाया है। (प्रा० लि० ५,९); उसी हिस्से को बाईं ओर घुमाने से तीसरा रूप बना है। (प्रा० लि० ११, १२) चौथा रूप वर्तमान 'ज' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १३) और पाँचवाँ रूप तो इस समय तक कहीं कहीं लिखा जाता है।

झ—'झ' अक्षर प्राचीन लेखादि में बहुत ही कम मिलता है। इसका दूसरा रूप ब्राह्मण राजा शिवगण के कंसवाँ (कोटा से कुछ दूर) के वि० सं० ७९५ (ई० स० ७३८) के लेख में और तीसरा राठौड़ राजा गोविंदराज (तीसरे) के शक सं० ७३० (वि० सं० ८६४= ई० स० ८०७) के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप 'झ' (झ) से मिलता हुआ है। 'झ' का यह रूप कितनेक छपी हुई जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपुताने में बहुधा यही रूप लिखा जाता है।

झ—'झ' का यह रूप विशेष कर दक्षिण में प्रचलित है इसके तीन रूप ऊपर के 'म' के पहिले दो रूपों के सदृश हैं। तीसरे रूप के नीचे के हिस्से में गाँठ लगाने से चौथा रूप बना है जो प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं कहीं मिल जाता है।

वर्तमान नागरी लिपि में जो 'झ' अक्षर लिखा जाता है उसकी उत्पत्ति कैसे हुई यह पाया नहीं जाता, क्योंकि प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं उसका प्रयोग पाया नहीं जाता।

ञ—यह वर्ण प्राकृत लेखों में मिलता है और संस्कृत-लेखों में बहुधा संयुक्ताक्षरों में ही पाया जाता है। इसका दूसरा रूप उपर्युक्त मेवाड़ के गुहिल राजा अपराजित के समय के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के लेख में (प्रा० लि० ११) और तीसरा कुमार गुप्त के समय के मंदसौर के लेख में (प्रा० लि० ४) मिलता है, जो वि० सं० ५२९ (ई० स० ४७२) का है। तीसरे रूप की दाहिनी ओर की खड़ी लकीर को ऊपर की तरफ़ बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान 'ञ' से मिलता हुआ ही है।

ट—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है और सिर बनाने के कारण ऊपर के हिस्से में कुछ परिवर्तन मालूम होता है। (प्रा० लि० ३,४,७,८) तीसरा व चौथा रूप वर्तमान 'ट' से मिलता हुआ ही है (प्रा० लि० १२)।

ठ—का दूसरा रूप केवल सिर बनाए जाने के कारण बना है बाक़ी इसमें और पहिले रूप में कोई भेद नहीं है। (प्रा० लि० ७) तीसरे रूप में सिर तथा नीचे के वृत्ताकार हिस्से के बीच में छोटी सी खड़ी लकीर रहने के कारण ठीक वर्तमान 'ठ' बनगया है (प्रा० लि० १३, १७, १९)।

ड—'ड' का यह रूप जैन पुस्तकों में मिलता है और राजपुताने में अब तक 'ड' बहुधा ऐसा ही (ड़) लिखा जाता है इसके दूसरे रूप में नीचे का हिस्सा कुछ दाहिनी ओर को बढ़ाया गया है, जिसका कारण त्वरा से लिखना अनुमान किया जाता है। इससे मिलता हुआ रूप उड़ीसे की हाथी गुम्फा (कटक से कुछ दूर) में खुदे हुए जैन राजा खारवेल के लेख में पाया जाता है,

जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के क़रीब का है। दूसरे रूप को सुन्दर बनाने या त्वरा से लिखने के कारण तीसरा व चौथा रूप बना हो। (प्रा० लि० ८)। पाँचवाँ रूप वर्तमान 'म' (ट) से बहुत कुछ मिलता हुआ है। (प्रा० लि० ११)

ठ—इसके पहिले चार रूप तो ऊपर के 'म' के समान ही हैं पाँचवें रूप में मध्य का घुमाव बढ़ा देने के कारण उसकी आकृति वर्तमान 'ट' के सदृश बन गई है। (प्रा० लि० १८,१९)

ढ—वर्तमान नागरी लिपि की वर्णमाला में केवल एक "ढ" अक्षर ही अपनी प्राचीन स्थिति में बना रहा है। केवल उसपर सिर बढ़ाया गया है।

ग़—का दूसरा तथा तीसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में मिलता है। चौथे से छठे तक के रूप अनेक लेखादि में पाए जाते हैं (प्रा० लि० ३, ५, ९, १०, ११, १२, १३, १६, १७, १८)। छठे रूप में सिर बढ़ा देने से वर्तमान "ग़" बना है।

ण—"ग़" का यह रूप दक्षिण में प्रचलित है। इसके भेद ऊपर के "ग़" के अनुसार ही हैं। उसके चौथे रूप के सिर जोड़ देने से यह रूप (ण) बना है।

त—का दूसरा रूप वर्तमान "त" से मिलता हुआ है (प्रा० लि० ११)।

थ—का दूसरा रूप उपर्युक्त समुद्रगुप्त के लेख में मिलता है (प्रा० लि० ३)। तीसरे से पाँचवें तक के रूप अनेक लेखों में पाए जाते हैं। (प्रा० लि० ४, ५, ९, १२, १३, १६, १८, १९, २०)

द—का दूसरा रूप अशोक के जोगड़ (मद्रास हाते के गंजाम ज़िले में) के लेख में तथा पभोसा (=प्रभास, इलाहाबाद से ३२ मील के अंतर पर यमुना तट पर) के लेखों में (जो ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के हैं) मि[...] है। तीसरा कुशनवंशियों के लेखों में [...] चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि[...] ३, ९, १३) पाँचवाँ रूप वर्तमान "द" [...] मिलता हुआ है।

ध—का दूसरा रूप कनौज के पड़िहार राजा भोज-देव के ग्वालियर के लेख में (जो वि० सं० ९३३=ई० स० ८७६ का है) तथा देवलगढ़ (पीलीभीत से २० मील पर) की प्रशस्ति (जो वि० सं० १०४९=ई० स० ९९२ की [...]) पाया जाता है। तीसरा रूप कनौज के गहरव[ार] (राठौड़) राजा जयचंद्र के वि० सं० १२३[...] (ई० स० ११७५) के ताम्रपत्र में मिलता है। चौथा रूप वर्तमान "ध" से बहुत कुछ मिलता हुआ है। (प्रा० लि० २०)

न—का दूसरा रूप उपर्युक्त क्षत्रप राजा रुद्रदामा के लेख में (प्रा० लि० २) और तीसरा राजा-नक लक्ष्मणचन्द्र के समय के वैद्यनाथ के लेख में (शक सं० ७२६=वि० सं० ८६१=ई[०] ८०४ का है) मिलता है। चौथा तीसरे क[ा] रूपान्तर है।

प—का दूसरा रूप पहिले रूप से मिलता हुआ [है।] तीसरा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा[०] लि० ३, ११, १२, १७, १८)।

फ—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा रूप समुद्रगुप्त के लेख में पाया जाता है। चौथा रूप तीसरे को त्वरा से लिख[ने के] कारण उत्पन्न हुआ हो ऐसा प्रतीत होता [है] और अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों [में] मिलता है। पाँचवाँ चौथे से मिलता हुआ [है] और उसी से छठा रूप बना है।

ब—का दूसरा रूप उपर्युक्त राजा यशोधर्म के लेख में (प्रा० लि० ५) तथा कई अन्य लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ११, १३) तीसरा रूप

"प" से मिलता हुआ है। (प्रा० लि० १८) कहीं कहीं "व" के समान भी पाया जाता है। इसके उक्त अक्षरों "प" और "व" से भिन्न बनाने के लिये इसके बीच में एक बिंदी लगाने लगे जिससे चौथा रूप बना। पाँचवाँ रूप चौथे से मिलता हुआ है और गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के वि० सं० १०८६ (ई० स० १०२९) के ताम्रपत्र में मिलता है।

भ—का दूसरा रूप कुशनवंशियों के लेखों में और तीसरा गुप्तवंश के राजा स्कंदगुप्त के समय के इन्दौर से मिले हुए ताम्रपत्र में, जो गुप्त संवत् १४६ (वि० सं० ५२२=ई० स० ४६५) का है, मिलता है। चौथा रूप तीसरे से मिलता हुआ ही है।

म—के पहिले तीन रूप एक दूसरे से मिलते हुए ही हैं और चौथा रूप वर्तमान "म" के सदृश सा ही है।

य—के पहिले दो रूप अशोक के लेखों में मिलते हैं। दूसरे को क़लम को उठाये बिना लिखने से तीसरा रूप बना है और चौथा उसी का भेद है जो वर्तमान "य" के सदृश है।

र—का दूसरा रूप पहिले रूप की खड़ी लकीर के अंत को सुन्दरता के विचार से दाहिनी ओर कुछ नीचे की तरफ़ झुकाने से बना है। यह रूप बौद्ध श्रमण महानामन् के गुप्त सं० २६९ (वि० सं० ६४५=ई० स० ५८८) के लेख में पाया जाता है। तीसरा रूप वर्तमान "र" से मिलता हुआ है।

ल—का दूसरा रूप हूणवंशी राजा तोरमाण के लेख में, जो ई० स० ५०० के क़रीब का है, मिलता है। तीसरा रूप कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ९, ११, १२) तीसरे को सुन्दर बनाने का यत्न करने से चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है और पाँचवाँ रूप वर्तमान 'ल' से मिलता हुआ है।

व—के पहिले रूप को बिना क़लम को उठाये लिखने से दूसरा रूप बना है (प्रा० लि० ४) और उस के नीचे के हिस्से में सुंदरता लाने का यत्न करने से तीसरे रूप की सृष्टि हुई है। (प्रा० लि० ११, १२, १३, १६)

श—का दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है। तीसरा व चौथा ये दोनों दूसरे के ही रूपान्तर हैं। (प्रा० लि० ३) पाँचवाँ रूप कई लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० १३, १५) छठा रूप पाँचवें का ही रूपान्तर है।

ष—यह अक्षर अशोक के लेखों में नहीं मिलता। इस का पहिला रूप घोसुंडी (मेवाड़ में) के शिलालेख से उद्धृत किया गया है, जो (लेख) ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी का है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और तीसरा कई लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० १६, १७, १८, १९)

स—का दूसरा रूप पहिले के सदृश ही है। तीसरा समुद्र गुप्त के लेखों में मिलता है। (प्रा० लि० ३) और चौथा कई लेखों में पाया जाता है। (प्रा० लि० ५, ९, १२, १३)

ह—का दूसरा रूप पहिले के समान ही है। तीसरा उच्छकल्प के महाराज शर्वनाथ के उपर्युक्त वि० सं० ५२० (ई० स० ४६३) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है। और चौथा अनेक लेखों में पाया जाता है (प्रा० लि० ४, ५, ९, १२, १३)।

ळ—वेदों के अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में इस अक्षर का प्रयोग नहीं मिलता, परन्तु संस्कृत शिलालेखों में इस का प्रयोग 'ल' या 'ड' के स्थान में मिल जाता है। दक्षिण के शिलालेखों में यह विशेष रूप से मिलता है। गुजरात से लगाकर कन्याकुमारी तक यह अक्षर अब तक बोला और लिखा जाता है। राज-

पुनाने में भी यह बोला तो जाता है किन्तु इस के स्थान में 'ल' लिखा जाता है (जो सर्वथा अशुद्ध है)।

इसका पहिला रूप उपर्युक्त रुद्रदामा के लेख से उद्धृत किया गया है। (प्रा० लि० २) दूसरा रूप दक्षिण के सोलंकियों के ई० स० की नवीं शताब्दी से लगाकर ११ वीं शताब्दी तक के लेखों में पाया जाता है। तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ ही है।

क्ष—यह वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो 'क्' और 'ष' के मिलने से बना है। ई० स० की दसवीं शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों और पुस्तकों में इसके दोनों वर्ण अन्य संयुक्ताक्षरों के समान मिलाकर लिखे जाते थे परन्तु पीछे के लेखकों ने सुंदरता की धुन में इस का रूप ऐसा विलक्षण बना दिया कि उक्त वर्णों का कहीं लेशमात्र भी बचने न पाया और एक विलक्षण ही रूप बन गया, जिससे कई लेखकों ने इस को वर्णमाला में स्

दिया, जैसे कि 'ञ' को स्थान दिया जाता

इस का पहिला रूप क्षत्रपराजा सोडास मथुरा के लेख से उद्धृत किया गया

दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ है

तीसरा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों में मि

जाता है। अन्य दो रूप तीसरे के ही भेद

ज्ञ—यह भी वर्ण नहीं किन्तु संयुक्त वर्ण है जो

और 'ञ' के मिलने से बना है। ऊपर 'क्ष'

विषय में जो लिखा गया है वह इसके लिये

चरितार्थ होता है। इसका पहिला

रुद्रदामा के लेख में मिलता है। (प्रा० लि०

दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है

अंतिम दो रूप हस्तलिखित पुस्तकों

मिलते हैं।

व्यंजनों के साथ जुड़नेवाले स्वरचिह्नों की उत्पत्ति कैसे हुई यह इस लेख के साथ नक़शे में स्पष्ट बतलाया गया है।

खड़ी बोली की कविता ।

(पंडित श्रीधर पाठक लिखित ।)

निरूपण—हिन्दी भाषा का यह रूप जिसमें आज कल शिष्ट गद्य लिखा जाता है, जब पद्य में व्यवहृत होता है "खड़ी बोली" के नाम से पुकारा जाता है, गद्य के सम्बन्ध में इस पद का प्रयोग साधारणतः नहीं होता। यह नाम चाहे नया हो, परन्तु हिन्दी का यह रूप नया नहीं है, किन्तु उतना ही पुराना है जितने कि उसके दूसरे रूप व्रज भाषा, बैसवाड़ी, बुंदेलखंडी आदि हैं। व्रज मंडल से उत्तर, पंजाब की दक्षिण-पूर्व सीमा से मिला हुआ प्रदेश इस बोली का आदि भूमि और सदैव का अधिकार स्थल है जहाँ कि यह अपने प्रकृत रूप में विहार करती है।

इस बोली में आदरणीय साहित्य प्रचुर नहीं है। हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर, मेरठ, मुरादाबाद, बुलन्दशहर, हाथरस, आगरा आदि स्थानों में "भगत" और "स्वांग" नामक परम रोचक और अवलोकनीय अभिनय इस बोली के गद्य पद्य में स्मरणातीत समय से होते चले आये हैं। इस लेख को आरंभ करने के पहिले मैं समझे हुए था कि ये काव्य हाथ की लिखी पोथियों में अथवा पात्रों के कंठों ही में विद्यमान हैं, ग्रन्थाकार मुद्रित नहीं हुए, किन्तु विशेष अनुसन्धान से ज्ञात हुआ कि कई एक प्रकाशित हो गये हैं। परन्तु जो मेरे देखने में आये हैं उनमें बहुत संशोधन अपेक्षित है। कुछ एक के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

ग्रन्थ	रचयिता
१–श्रवणचरित्र	चिरंजीलाल नथाराम (हाथरस)
२–सांगीतचित्रकूटचरित	—"—"—
३–सांगीतसैनभैया	ला० गोविन्दराय—"—
४–सांगीतपूरनमल	मातादीन चौबे (मैरेया)
५–सुदामाचरित्र दुखार	मातादीन चौबे (मैरेया)
६–सांगीतहरिश्चन्द्र	मातादीन चौबे (मैरेया)

इन सब में व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का मिश्रण है, जहाँ तहाँ शुद्ध खड़ी बोली के भी पद्य पाये जाते हैं। पहिले तीन में दूसरे तीन की अपेक्षा व्रज भाषा का सम्पर्क अधिक है और यह एक हाथरस के निवासी की रचे हुए हैं, अतः अभिनय अवश्य हाथरस या उसके निकट के नगरों में अधिक होता रहा होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि हरिद्वार, मेरठ, मुरादाबाद आदि उत्तराय स्थानों में जो अभिनय होते हैं उनके पद्य में व्रजभाषा का योग होता है या नहीं, और यदि होता है तो किस परिमाण में होता है—मेरा अनुमान है कि इन स्थानों के व्रजभूमि से बहु दूर होने के कारण यहाँ के पद्यों में व्रजभाषा का मेल बहुत थोड़ा होता होगा।

इस प्रकार के साधारण लोकप्रिय काव्यों की रचना प्रायः अर्द्धशिक्षित व्यक्तियों द्वारा होती है जो प्रायः पदयोजना में भाषा की विशुद्धता के विशेष पक्षपाती नहीं होते–यह खड़ी बोली की पद्य रचना सम्बन्धिनी प्राचीन लोकप्रथा है, अतः यदि इस बोली की कविता प्राचीन और नवीन संज्ञक दो शैलियों में विभक्त की जाय तो इस ढंग की रचनाओं को प्राचीन शैली में रखना पड़ेगा, चाहे यह वर्तमान समय में ही की गई हों—

उक्त पुस्तकों में से मिश्रित और शुद्ध दोनों प्रकार की बोली के पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(मिश्रित भाषा)

लावनी।

उद्यानरूपी खुश हो धन माल लुटाये।
गौदान दिये कोटिन द्विजराज जिमाये॥
महराज दान नित ऐसौ भारी होत।
निरमुख कोई न जात भिखारी लेते दो दो पोत॥
एक साल भयौ अति उत्सव खुशी समायन।
घुटुअन चल सरवन डोलन लागे पायन॥
महराज मातपितु करते प्यार महान।
लाड़ लड़ावैं गोद खिलावैं करैं निछावर प्रान॥

(श्रवणचरित्र)

दोहा ।

सुन इतनी जल लायकर, तनक न करी अबार ।
बिहँसि बिहँसि रघुबीर पद, केवट लिये पखार ॥

दुबोला ।

पग धोय पान कीनो केवट
प्रिय सहित सकल परिवारा है ।
आगे के पुरखा स्वर्ग गये
शिव उमा से बचन उचारा है ॥
(सांगीत चित्रकूट)

दोहा ।

उदय भानु भयो भामिनी, अब मैं जाउं ज़रूर ।
सिर पर मंजिल चढ़ रही, मुझे पहुँचना दूर ॥

कड़ा ।

मैं असगुन सगुन विचार रही
लड़ मुक्त मांग खिड़ जाती है ।
दक्षिण दृग फड़क गिरत नूपुर
और धड़क रही मम छाती है ॥
(सांगीत भैनभैया)

(शुद्ध बोली पद्य)

सवैया ।

हरिश्चन्द्र के सत्य से ध्यानी सुनो,
मंजु आसन सुरेन्द्र का हिलने लगा ।
जाना मन में कि राज्य हमारा गया,
सोच वश होके हाथों को मलने लगा ॥
हुआ सत्य के भानू का तेज अभी,
पापरूपी अँधेरा खिसलने लगा ।
सभी प्रजा आनन्द से रहने लगी,
नया सृष्टि का रंग ढंग बदलने लगा ॥
(हरिश्चन्द्र सत्य मंजरी)

चौबोला ।

तन चाहे बिक जाय पिता की कलम न लागन दीजै ।
हम तुम सखा बिकैं हाट में कंचन द्विज को दीजै ॥
धीरज धर्म मित्र और नारी दुख में परखा कीजै ।
बज्र हो गया हिय ने राम नाम रस पीजै ॥
(हैन)

चौबोला ।

करो नाथ निर्मूल अशुभगुण कहता दास मनाई ।
रघु चरित पूरन मल जन का तुम को आदि मनाई ।
वक्र तुंड एक रदन बदन लख मदन जाय शरमाई ।
करुणा अयन शयन कीजै मम हृदय कमल में आई ।
(सांगीत पूरनमल)

दोहा ।

सुनो दास दासी सकल, चित दे मेरी बात ।
कहाँ हमारे तात हैं, कहाँ हमारी मात ॥

चौबोला ।

कहाँ हमारी मात आय चरणों पै जाय नवाऊं ।
दीजै शीघ्र बताय दरस करके कृतार्थ हो जाऊं ।
है अधीर बस तन मन व्याकुल बार बार बलिजाऊं ।
रूप सुधारस निरख सुभग नैनों की प्यास बुझाऊं ।
(सै

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि शुद्ध खड़ी बोली के पद्य जो ऊपर दिये गये हैं वह रचयिता की शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर विशेष चेष्टा का फल नहीं है, किन्तु अनायास ही इस रूप में इसमें बन गये होंगे, ऐसा समझना असंगत प्रतीत नहीं होता—

प्राचीन शैली के पुराने पद्यों के उदाहरण ।

(मिश्रित बोली)

माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर ।
करका मनका छाड़ि के, मन का मनका फेर ॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखै कोय ।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न कोय ॥
(कबीर

बड़े बड़ाई कभी न करते, छोटे मुख से कहें बचन ।
अपने मन्में सभी बड़े, यों भीली बिनौले लगे कहन ॥
(भीली बिनौले का झगड़ा)

बाग़ के फाटक खोलदे तुम माली की बेटी ।
और करन दे (हे) बाग़ के माहीं ॥ ३
(हीर रांभा सांगीत

कठिन कठिन माला, था जवाहिर जड़ा था ।
बगल बचन बाला, चाँदनी में खड़ा था ॥ ४
(नौटं

एक अचम्भा देखो चल,
सूखी लकड़ी लागे फल।
जो कोई उस फल को खाय,
पेड़ छोड़ वह अनत न जाय ॥ ५
(पहेली)

(शुद्ध बोली)

इश्क चमन महबूब का, वहाँ न जावै कोय।
जावै सो जीवै नहीं, जियै सो बहरा होय ॥ १
(नागरी दास)

सोने की तेरी कलम है, हीरे जड़ी दवात।
गोरे गोरे तेरे हाथ हैं, काले मंछर डाल ॥ २
अब उदयभान् और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलाये हुए थे फिर खिले ॥
घर बसा जिस रात उनका तब मदनवान् उस घड़ी।
कह गई दूलह दुल्हन से ऐसी सौ बातें कड़ी ॥ ३

इनमें से ३ संख्यक पद्य में शुद्ध बोली व्यवहार करने की ओर रचयिता का प्रयत्न स्पष्ट प्रतीत होता है।

उन स्थानों में जहाँ कि यह बोली विशुद्ध रूप में रमण करती है लोकगीत, (जैसे हीरा राँभा) स्थानिक गीत, और स्त्रियों के गीत प्राचीन शैली के पद्य में पाये जाते हैं—मैं आज कल ऐसे स्थान में हूँ कि उदाहरण नहीं दे सकता—इन गीतों में कभी कभी मारवाड़ी, शूरसेनी, पंजाबी, पूर्वी, बुँदेलखंडी शब्दों का मेल देखने में आता है-यह पड़ोस का प्रभाव है-आगरे (नगर) के गीतों में ब्रजभाषा और मारवाड़ी और देहली या मेरठ के पद्य में पंजाबी शब्दों का आजाना सहज है-उदाहरण।

(आगरे का गीत)

ठाड़े रहियो परदेसी सामने (रे),
चोट सम्हारौ म्हारे नैनों की।
तुझे मोरचा लगा ढाल का,
मुझे चोट पट घूँघट की ॥

(मेरठ का गीत)

सुन सुन रे पीतम ,खुदा हाल,
मैं भी चल्दूंगी तेरे नाल।
तेरा हाल सो मेरा हवाल,
मुझे दुनिया में बदनाम किया ॥

नवीन शैली।

बाबू हरिश्चन्द्र के समय में और उनके बाद शिक्षित कवियों द्वारा जो पद्य रचे गये हैं उन्हें नवीन शैली के अन्तर्गत समझना चाहिए--इस शैली की रचना भी भाषा व्यवहार भेद से विशुद्ध और मिश्रित दो प्रकार की देखने में आती है।

विशुद्ध दो विभेदों में विभाज्य है—एक वह जिसमें हिन्दी भाषा का स्वाभाविक शील या प्रकृत-रूप पूर्ण रक्षित पाया जाता है-दूसरा वह जिसमें भाषा का यह गुण उपेक्षित सा देखने में आता है—उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं—सहृदय पाठक जिन्हें कि आधुनिक पद्य पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है स्वयं समझ जायँगे-इनमें प्रथम प्रकार की रचना दूसरे की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होती है।

विशुद्ध भाषा की कविता ही उच्च श्रेणी की कविता कहलाने की संभावना और शिष्ट समाज में आदर पाने की योग्यता रख सकती है।

मिश्रित या खिचड़ी भाषा के पद्य में यह योग्यता नहीं आ सकती अतः ऐसी भाषा का प्रयोग उत्कृष्ट काव्य में कदापि न करना चाहिए—बल्कि इसकी प्रथा को एक साथ त्याग ही देना अच्छा है—खड़ी बोली ने अब ऐसा प्रशस्त रूप प्राप्त कर लिया है कि उसके पद्य में ब्रज भाषा आदि हिन्दी के इतर रूपों की वाक्यपद्धति या वाक्पद्धति का किञ्चित् अनुपयुक्त व्यवहार भी उसके प्रकृत गौरव की हानि का हेतु हो सकता है।

इस विषय को अधिक पल्लवित न करके, मैं इस सम्मेलन का ध्यान खड़ी बोली के उन साधारण काव्यों और लोकगीतों (Popular Ballads) की ओर विशेष रूप से आकर्षित करता हूँ जिनकी चर्चा मैं इस लेख के आरंभ में कर चुका हूँ—नागरी प्रचारिणी सभाओं से भी मेरा सविनय अनुरोध है कि वे इस बिखरे हुए और उपेक्षित साहित्य में से उत्तम उत्तम

रचना चुन कर उनके आवश्यकीय संशोधनपूर्वक प्रकाश करने में प्रवृत्त हों—मुझे खेद है कि मैं इस लेख के लिये उक्त प्रकार के साहित्य के सब या बहुत ग्रंथों के नाम धाम आदि एकत्र नहीं कर सका हूँ; परन्तु उनका अस्तित्व असंदिग्ध है और समुचित अनुसंधान से वे अवश्य प्राप्त हो सकेंगे।

ये लोककाव्य सर्वसाधारण की रुचनेवाली भाषा में हैं अथ च हमारी जातीय, सामाजिक और धार्मिक स्थिति के दर्पण स्वरूप हैं अतः इनसे हमारी सामाजिक और धार्मिक उन्नति के सम्बन्ध में अनल्प सहायता मिलने के अतिरिक्त खड़ीबोली के आधुनिक कवियों को भाषा शैली सम्बन्ध में लाभदायक शिक्षा प्राप्त होने की भी बहुत कुछ संभावना है। यह विषय उपेक्षणीय कदापि नहीं है। गत अगस्त १५ वीं के पायोनियर पत्र में Some songs of the people शीर्षक लेख में देखिए एक विदेशी यहाँ के लोक-गीतों के संबंध में क्या लिखता है—उसके कथन का कुछ अंश नीचे उद्धृत है।

And indeed there is a degree of simplicity, directness, *zest* and reality in these poems of the "uneducated" which gives them true literary value and widely separates them from the laboured *rechauff'es* of more learned persons. The divorce from the mass of the people which is the penalty that in India the higher castes have had to suffer for successfully maintaining the superior position they lost at an early period in Greece and Rome, re-acts on their art and literature

विषय।

ऊपर चर्चा किये हुए लोककाव्य स्मरणीय अथवा अनुकरणीय पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा स्मरणीय घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं, उनके अभिनय या गान से लोगों के हृदय पर बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में सामाजिक [illegible] संशोधन की बड़ी आवश्यकता है, [illegible] को उद्देश्य मान कर कविता विशेषतः लिखी जानी चाहिये—ये दोनों विषय इतने प्रशस्त हैं कि इनमें पद्य रचना की अमित समाई है।*

देश काल के अवच्छेद से धर्म के गौण सिद्धान्त प्रायः विक्रिया प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक प्रथा भी बहुधा काल के जटिल जाल से विमुक्त नहीं रहती—धर्म की स्थिति और समाज की दशा से प्रत्येक युग में कविता अपना योग कर लेती है और उस युग की अवधि तक संग रखती है। यों दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध अखंड और सनातन है—परन्तु हमको यह न भूलना चाहिए कि यद्यपि कविता एक अतुल शक्तिशालिनी वस्तु है, परन्तु साधारण जन-समुदाय की सांसारिक और व्यावहारिक अवस्था की उन्नति उसकी अपेक्षा गद्य साहित्य से विशेषतर साध्य है, और यह भी स्पष्ट है कि केवल गद्य अथवा केवल पद्य से किसी देश के साहित्य की पूर्ति नहीं हो सकती—अतः हमारा उद्योग दोनों की पूर्ति की ओर यथोचित परिमाण में होना चाहिए—सभ्य संसार के सारे विषय हमारे साहित्य में आजाने की ओर हमारी सतत चेष्टा रहनी चाहिए—साथ ही शिक्षा के विस्तार द्वारा साहित्य-सेवियों की संख्या की दिन दिन वृद्धि होनी चाहिए।

यदि एक सूची उपयुक्त विषयों की सर्वसम्मति से छाप दी जाय तो उससे लेखकों को बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

लेखशैली।

यह भी ध्यान योग्य वस्तु है, और गद्य पद्य दोनों में समान गौरव रखती है—इसका स्वरूप मुख्यतः लेखक की रुचि और शक्ति के अनुरूप होता है।

प्रत्येक भाषा चिर व्यवहृत होती हुई एक प्रकृष्ट दशा प्राप्त कर लेती है जिसे उसका शील या [illegible] कह सकते हैं। उस प्रकृष्ट दशा में लेखक

* [illegible] कविता भी [illegible] इन्हीं [illegible] है इन्हीं के अन्तर्गत समझनी चाहिए।

शक्ति निवास करती है। जिस प्रकार से शब्दों या वाक्यों का व्यवहार उसकी इस दशा में होता है उसे साधारण बोली में "मुहाविरा" कहते हैं—मुहाविरे और चिरप्रचलित शब्द प्रत्येक भाषा की आत्मा स्वरूप होते हैं—जो गद्य या पद्य इनके उपयुक्त प्रयोग से सुशोभित होता है यह ऐसा है जैसा कि चतुर चितेरे द्वारा चित्रित कोई शुद्ध प्रकृति दृश्य, या निपुण सुनार और जड़िये का बनाया हुआ बढ़िया आभूषण अथवा अनुभवशाली माली का सजाया हुआ कमनीय कुसुमस्तवक। जिस ग्रन्थ में प्रचलित वाक्पद्धति के विरुद्ध शब्द व्यवहार होता है और मुहाविरे की दरिद्रता रहती है उसमें सरसता अवश्य न्यून होती है, और विषय और भाव उत्कृष्ट होने पर भी रोचकता नहीं आती॥

ऊपर जो कहा गया है यह भाषा के चिर व्यवहार से प्राप्त किये हुए स्वरूप का निरूपण है—भाषा के विकास या उन्नति में उस रूप को रक्षित रखना परम आवश्यक है, उसको बिगाड़ना अत्यन्त विगर्हित आचरण है—यह सत्य है कि भाषा का विकास और उन्नति नवीन भावों और विषयों के संनिवेश से ही होती है जिनके कारण नवीन शब्दों का व्यवहार आवश्यक होता है, परन्तु यह नूतन वाक्प्रस्तार यदि सावधानता और चातुर्य के साथ किया जाय तो भाषा के प्रकृति रूप में विकार बिना पहुँचाये ही सुन्दर रीति से हो सकता है—राजा शिवप्रसाद का गद्य, और बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण और राजा लक्ष्मणसिंह के गद्य और पद्य इसी नियम के पालन के कारण सरस हैं और बहुत सा आधुनिक गद्य और पद्य इसी गुण के अभाव से नीरस है॥

यह बात असंदिग्ध है कि संस्कृत शब्दों की सहायता बिना हमारी भाषा के गद्य या पद्य की उन्नति साध्य नहीं, बंगला की इतनी उन्नति संस्कृत के ही सहारे से हुई है, परन्तु उसके अप्रचलित शब्द और लंबे समासों का प्रयोग जहाँ तक संभव हो त्यागना चाहिए—उनका व्यवहार केवल उस अवस्था में करना उचित है जब कि उनके बिना किसी प्रकार काम न चल सकता हो अथवा उनके उपयोग से लेख की शोभा या गौरव वृद्धि होती हो।

छन्द, पदयोजनाक्रम।

छन्द।

खड़ी बोली में प्रायः सभी छन्द जो ब्रज भाषा या संस्कृत में व्यवहृत होते हैं रचे जा सकते हैं, परन्तु विशेष सफलता से उसमें कतिपय छन्द विशेष ही लिखे जा सकते हैं। ऐसे ही छन्दों का प्रयोग उसमें होना चाहिए तथा च यथासंभव नवीन उपयोगी छन्द भी लाने चाहिएं। बँगला, मराठी, द्रविड़, फारसी, अंग्रेजी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं के कोई छन्द यदि हिन्दी में सरसता के साथ आसकें तो उनका ग्रहण भी अनुचित न समझना चाहिए। शून्यवृत्त और संस्कृत श्लोकों की भाँति अन्त्यानुप्रासरहित पद्य रचना की ओर भी ध्यान देना उचित प्रतीत होता है। स्वर्गीय पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने मैं समझता हूँ, ऐसे बहुत से पद्य बनाकर प्रकाशित किये थे। इस प्रकार के पद्य, जहाँ तक मेरा अनुभव है, छोटे छंदों में अच्छे नहीं लगते, लम्बी पंक्तियों में अधिक रुचिर बनते हैं।

पद योजना क्रम

कवि को अपना भाव सर्वतोभावेन रोचक रीति से प्रकाश करने के अर्थ उपयुक्त पद ढूँढने पड़ते हैं। जिस कवि में कवित्व-शक्ति प्रबल और विद्या-वैभव विपुल होता है, उसे वांछित पद प्रायः बिना प्रयास के भी मिल जाते हैं, पर ऐसा कम होता है।

मुहाविरे के बाद पद-योजना का पद है। उपयुक्त पदों का व्यवहार लेखक की चतुराई की कसौटी है इसके लिये कोई नियम नहीं बनाए जा सकते। कवि का भाव पाठक के हृदय पर यथार्थ अंकित करने-वाले और श्रवणों को सुख देने वाले पदों का प्रयोग कविता की आत्मा है। सब अच्छे लेखकों में ऐसे पद व्यवहार करने की शक्ति सहज ही होती है और यही शक्ति कल्पना शक्ति की सहचरिणी होकर

कवित्व शक्ति का पद प्राप्त करती है। वर्तमान समय में बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना सुन्दर पद योजना का सर्वोत्कृष्ट आदर्श है।

इस स्थान पर मुझ को एक विशेष बात की चर्चा करनी है। वह यह है—

हिन्दी में निम्न प्रकार के शब्द और शब्द खंड प्रायः हलंतवत् बोले जाते हैं—

१—उन अकारान्त शब्दों को छोड़ कर कि जिनका अन्तिम व्यञ्जन किसी दूसरे व्यञ्जन से युक्त हो (जैसे कृत्य, भग्न, धर्म, यत्न आदि) सब आकारन्त शब्द (जिनमें तत्सम तद्भव भी सम्मिलित समझने चाहिए) जैसे—बदन, मदन, जतन, करवट, झटपट, घर आदि।

२—शब्दों के वह अकारान्त खंड कि जिन पर बोलने में आघात (Accent) पड़ता है, जैसे मन मानया, गलबाहीं, जलचर, पटवारी।

३—सब अकारांत धातु, जैसे—कर (ना), चल (ना) धातवंग वा इस विधि में गृहीत नहीं है।

यह बात ब्रजभाषा में नहीं है।

अब विचारणीय है कि खड़ी बोली की इस विशेषता से उसकी पद्य रचना में कुछ सुविधा हो सकती है या नहीं—भाषा के शील संरक्षण की दृष्टि से पद्य लिखने में, अवश्यकतानुसार, बोलने की रीति अवलंबन करने से कोई आपत्ति तो नहीं उपस्थित होती।

उर्दू पद्य में और उसी ढंग के शुद्ध हिन्दी पद्य में भी यह प्रथा प्रचुरता से देखने में आती है।

शुद्ध खड़ी बोली के पद्य के जो उदाहरण इस पत्र के प्रारंभ भाग में दिये गये हैं उनमें से भी कई एक में यह परिपाटी प्रदर्शित है। कुछ उदाहरण उर्दू ढंग के आधुनिक पद्यों के दिये जाते हैं।

कविता

अरी हाँ यह बहुत अच्छा जतन है।
पर इससे पूछले क्या इसका मन है॥
कमल के पत्र पर तु द से लिखूँगी।
तू सोचे जा न कर चिन्ता कुछ इसकी।

(पं० प्रतापनारायण मिश्र का संगीत शाकुन्तल)

परन्तु संस्कृत के वृत्तों में जो हिन्दी पद्य रचना आज कल होती है उसमें इस रीति का व्यवहार बहुधा नहीं देखने में आता।

यह मुझे नहीं विदित है कि बंगला, मराठी, गुजराती आदि इतर भाषाओं में ऐसा होता है या नहीं परन्तु नैपाली में यह प्रचुरता से है—उदाहरण

यो सब् शास्त्र विशेष् बड़ो,
छ रघुनाथ को रूप् जनाई दिन्या।
जो छन् सबद् पुराण हरुद्,
सब मा यी मुख्य जानी लिन्या॥
गर्च्छन् कीर्तन सुन्दरछन्,
पनि भन्या यो पढ छन् फल् मनी।
तिन्को पुण्य बखान,
गर्नन सबै सकती न मैले पनी॥

(कवि भानुभक्त कृत नैपाली रामायण बालकांड)

इस प्रकार शब्द व्यवहार वाली कुछ हिन्दी पद्य की पंक्तियाँ भी उदाहरण स्वरूप नीचे दी जाती हैं।

उखड़ गये जिन्से मृणाल जाल हैं।
तड़प रहीं मीन उड़े मराल हैं॥ १॥
सरसिज जल छाये गंध पाटल की प्यारी।
सुखद सलिल सेवनहार सुन्दर उज्यारी॥ २॥
पर इतने पर भी तो नहिं मन हुआ शान्त उनका।
बस अब क्या करना था जब जतन कोई नहिं चला॥ ३॥

इस सब जगड्याल के प्रदर्शन से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमारी भाषा के पद्य में इस प्रकार से शब्द व्यवहार करना चाहिए किन्तु बुध जनों के विचार के लिये यह मेरा केवल एक प्रस्ताव मात्र है।

सारांश।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह खड़ी बोली के प्राचीन साहित्य के संग्रह और प्रकाशित करने की उपयोगिता, छोवशैली में भाषा के प्रकृतशील के निर्वाह की आवश्यकता, भविष्य पद्य में देशी विदेशी यावन्मात्र उपयुक्त छंदों की प्रयोज्यता, शुद्ध पद योजना की प्रशस्यता, सामाजिक

और धार्मिक उन्नति को उद्देश्य मान पद्य रचना की विधेयता आदि दो एक बातों के स्पष्टीकरण की चेष्टा मात्र है । हम को चाहिए कि पृथिवी के प्रत्येक सभ्य देश के साहित्य रत्नों से अपनी भाषा को विभूषित करने का प्रयत्न करें बरञ्च, बौद्ध, ईसाई, इसलामिया धर्म ग्रंथों में भी जो उपदेश रत्न मिलें उन्हें भी न छोड़ें । जो बातें अच्छी हैं किसी भाषा में हों और किसी धर्म से सम्बन्ध रखती हों, मनुष्य मात्र को हितकर हैं और प्रत्येक भाषा में स्थान पाने की योग्यता रखती हैं ।

खड़ी बोली की कविता का महत्त्व ।

२०,२५ बरस पहिले खड़ी बोली की कविता के नाम से उस समय के कवि भी चिढ़ते थे। कई एक तो उसके परम शत्रु हो गये थे । उनमें से दो एक अभी जीवित हैं । परन्तु सन् १८८७ ई० में जो इस विषय पर विवाद चला था उसमें इस भाषा की कविता के एक पक्षपाती ने भविष्यद्वाणी की थी कि यह किसी दिन अति उच्च आसन प्राप्त करेगी । उस वाणी के फलीभूत होने के प्रत्यक्ष लक्षण अब लक्षित हो रहे हैं। खड़ी बोली में कविता का प्रवाह सा बह चला है, उसकी सार्वभौम उपयोगिता अब सब मानते हैं, अब च नागरीलिपि और हिन्दी भाषा के यावत् भारतवर्ष में प्रचार पाने के साथ साथ हमारी खड़ी बोली का पद्य भारतवासी मात्र के स्वत्व और अभिमान का अधिकारी बनने की आशा रखता है । यह अल्प आनन्द का विषय नहीं है ।

हिंदी-साहित्य।

[महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी लिखित।]

जनक राज तनया सहित, रतन सिंहासन भ्राज।
राजत कोशलराज लखि, सुफल करहु सब काज॥

भाषा।

सब से पहिले पंडितों के मन में यह शंका पैदा होती है कि ईश्वर ने धरती को बना कर सब से पहिले इसके किसी एकही देश में पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वनस्पति, मनुष्य......को बनाया या उसकी पीठ के चारों ओर इस पर सब चीजों के बीजों को डाल दिया जिनसे इसके चारों ओर सब चीज़ें पैदा हुईं।

बहुतों का मत है कि पहिले सब चीज़ एक ही जगह पर पैदा हुईं फिर उनके संतान जैसे जैसे बढ़ते गए तैसे तैसे फैलते गए।

चलने फिरनेवाली योनियों में याने जंगमों में इस बात का होना याने एक जगह से दूसरी जगह में जाना बहुत संभव है और न चलने वाले वनस्पतिओं में याने स्थावरों में भी जंगमों के जरिए से उनके बीजों का एक जगह से दूसरी जगह में जाना संभव ही है।

आकाश में रहने वाले सूर्य, चन्द्र,......के कम ज़्यादा प्रभाव धरती के जुदे जुदे देशों में पड़ने से उन उन देशों के रहनेवालों के रूप रँग में भेद हो जाना यह बात सबके मन में बैठ जाती है पर जंगमों की भाषाओं में भी भेद हो जाना यह बात मन में नहीं बैठती।

यदि आदमियों का संग न हो तो बंगाल का तोता और पंजाब का तोता दोनों एकही सुर से टें टें करते हैं। इसी तरह सब देशों के गाय, बैल, हाथी, घोड़े......की भाषाओं में भेद नहीं जान पड़ता। सम्भव है कि कुछ विशेष इन्द्रिय के द्वारा वे सब आपस की भाषाओं में भेद समझते हों।

इसमें संशय नहीं कि मुँह के भीतर के हिस्से तालू, जीभ, दाँत, कंठ......की बनावट में कुछ न कुछ भेद होने से अक्षरों के उच्चारण में कुछ न कुछ फ़र्क़ पड़ जाता है। इसलिये संभव है कि बाप का उच्चारण ठीक हो पर बेटे का उच्चारण तुतला कर बोलने से बिगड़ गया हो।

इस तरह अक्षरों के उच्चारण में भेद हो जाने से पुस्तक, पुस्त, पोथ, पोथा, पोथी......शब्दों का बनना सम्भव है पर पुस्तक के स्थान में बुक हो जाना असंभव है।

ईश्वर ने आदमियों को विशेष बुद्धि दी है जिससे वे अपने फ़ायदे के लिये तरह तरह के उपायों को निकाला करते हैं, जिन उपायों से उन्हें फ़ायदा होता है उनको छिपाए रहते हैं और अपने को अधिक पराक्रमी बनाने के लिये बहुत लोगों को अपने मत में लाते हैं। अपने मन की बात दूसरे मतवाले न जानें इसलिये भाषा को बदल देते हैं। यही कारण है कि विदेशी लोगों की भाषाएँ भिन्न भिन्न हो गई हैं। बहुत जगह बात छिपाने के लिये अक्षर और उनके उच्चारण भी बदल दिए गए हैं।

एकही देश में जुदे जुदे विषयों में एकही शब्द भिन्न भिन्न अर्थ में भी बोले जाने लगे। जैसे सांख्य शास्त्र में से आद्याशक्ति, व्याकरण में संधि के बिना वाक्य, ज्योतिष में एक वर्ग संख्या का गुणक और काव्यों में स्वभाव को लेते हैं।

देश।

अक्षरों की सूरत चाहे जैसी हो पर जहाँ तक अक्षरों की गिनती और उच्चारण में भेद नहीं है वहाँ तक मैं एक देश कह सकता हूँ।

जैसे—गुरमुखी, बँगला, बिहारी, मद्रासी, तैलंगी, मैथिली.........अक्षरों की गिनती और

उच्चारण देवनागरी ही अक्षरों के ऐसे हैं इस लिये ये सब देश हिंदुस्तान के भीतर हैं।

पुराने पत्थर के खंभों और तामे के पत्रों पर के अक्षरों के देखने से मालूम होता है कि सबसे पुराने अक्षर ब्रह्माक्षर या ब्रह्मी लिपि हैं।

मेरी समझ में बनारस के किसी पंडित ने आदमियों का खोपड़ियों के जोड़ों के निशानों पर से इस लिपि को बनाया (मेरे गणित के इतिहास का पहिला भाग देखो)।

सब लोग मनु से पैदा हुए हैं इसी लिये संस्कृत में आदमी को मनुष्य, मनुज, मानुष और मानव कहते हैं। मनु की राजधानी अयोध्या प्रसिद्ध है यहाँ के धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र के समय से काशी देवनगरी तीनों लोक से न्यारी समझी जाती है, यहाँ के रहने वालों को लोग देवता समझते थे। अब तक कहावत है कि "काशी के कंकर सब शंकर समान हैं"। यहां ही के पढ़े हुए सान्दीपनि ऋषि से बलराम और कृष्ण ने पढ़ा था, दशमस्कन्ध भागवत—अध्याय ४४, श्लोक ३१ में लिखा है।

"अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः।
काश्यां सान्दीपनिं नाम ह्यवन्ति पुरवासिनम्"॥

याने गुरुकुल में वास करने की इच्छा से बलराम और कृष्ण काशी के पढ़े और अवन्ती (उज्जैन) के रहनेवाले सान्दीपनि (ऋषि) के यहाँ गए।

(बहुतों का मत है कि पाणिनि के व्याकरण के 'मुखनासिका वचनोऽनुस्वारः, ...सूत्र से मालूम होता है कि पाणिनि के समय अक्षर लिखने की रीति नहीं थी. "यवनाल्लिप्याम्" "यवनानां लिपिः यवनानी" ये सब पाणिनि के व्याकरण में पीछे से मिलाए गए हैं। जो कुछ हो पर पाणिनि शिक्षा के "त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः" "मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा"......वाक्यों से साफ है कि उस समय अक्षरों की सूरत थी, ऐसा न होता तो पाणिनि अक्षरों के लिये 'वर्ण' का प्रयोग न करते)।

मनु ने भी लिखा है कि—

"सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते"॥

सरस्वती और शालग्रामी (जो कि गण्डकी के पास है) के बीच में जो देश है वह देवताओं का बनाया है। उसी को आर्यावर्त कहते हैं इससे भी जो विचार करो तो आर्यावर्त्त के केन्द्र अर्थात् बीच में प्रधान देवनगरी काशी ही ठहरती है।

काशी को देवनगर समझ कर गौतमबुद्ध ने भी इसी जगह पर उपदेश किया था। इन सब कारणों से जान पड़ता है कि इसी देवपुरी काशी में संस्कृत या प्राकृत के अक्षर बनाए गए इसी से लोग इन्हें देवनागर या देवनागरी कहने लगे।

काव्य।

जो देश की भाषा हो उसी में कुछ विशेष अर्थ दिखलाने को, जिससे उस देश के सुननेवालों को एक रस मिलजाने से खुशी हो, काव्य कहते हैं।

कर्पूर मंजरी में लिखा है—

"अत्थ विसेसः कव्वो भासा जो भोदि सो भोदु" याने भाषा चाहे जो हो उसमें अर्थ विशेष को काव्य कहते हैं।

शब्द के विशेष अर्थ से सुनने वाले के कान से एक विशेष रस भीतर जाता है जिससे मन को बहुत आनंद होता है। इसी से सुन्दर वचन को लोग कर्णामृत या श्रवणामृत कहते हैं और इसी से महापात्र विश्वनाथ ने और लक्षणों का खण्डन कर अपने साहित्यदर्पण में "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" इसी लक्षण को ठीक ठहराया।

मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य का लक्षण—
"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"

(शब्द और अर्थ दोनों में कोई दोष न हो, उनमें कुछ न कुछ गुण रहे और कोई अलङ्कार समझ पड़े या न समझ पड़े उसी को काव्य कहते हैं)।

महापात्र विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इसका खण्डन कर पहिले जो "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" लक्षण लिखा गया है उसी को प्रधान माना है।

काव्य का उदाहरण लीजिए।

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे।
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥
(उत्तरमेघ श्लो० ४४)

यक्ष अपनी स्त्री से मेघ द्वारा सँदेशा कहता है कि मैं पत्थर पर गेरू के प्रेम से रूसी तेरी मूर्त्ति लिखकर जैसे ही चाहता हूँ कि तेरे पैर पर पड़ूँ वैसे ही वार वार आँसुओं की झड़ी से मेरी आँख ढँक जाती है सो हे प्रिये! कठोर दैव से मूर्त्ति में भी हमारा तुम्हारा मिलना नहीं सहा जाता।

इसमें सुननेवाले को जो रस मिलता है वह अलौकिक रस है।

इसी तरह तुलसीदास के बालकाण्ड में श्री सीताराम के ब्याह समय—

"कुअँरु कुअँरि कल भाँवर देहीं।
नयन लाभ सब सादर लेहीं॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी।
जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥
राम सीय सुन्दर परिछाहीं।
जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा।
देखत राम बिआह अनूपा॥
दरस-लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

कुँअर (राम) और कुँअरि (सीता) दोनों सुन्दर भाँवरी देते हैं अर्थात् भाँवर फिरते हैं, सब लोग आदर के साथ आँखों के लाभ को लेते हैं। मनोहर जोड़ी बरनी नहीं जाती, जो कुछ उपमा कहूँ सब थोड़ी है। मंडप के मणि-खंभों में राम और सीता की सुन्दर परिछाहीं जगमगाती हैं (उनकी ऐसी शोभा जान पड़ती है) मानो काम और रति (उसकी स्त्री) अनेक रूप बना कर अनुपम राम के ब्याह के देख रहे हैं। ब्याह देखने की लालसा और (हमें कोई न देख ले यह) संकोच दोनों थोड़ा नहीं बहुत है इसलिये प्रगटते और छिप जाते हैं।

यहाँ भाँवरी फिरने की बेरा मणिखंभों के सामने आ जाने पर परछाहीं का पड़ना और वहाँ से हट जाने पर परछाहीं का लोप हो जाना यह स्वाभाविक बात है उसे कवि ने उक्ति विशेष से वर्णन किया जिसे सुन कर एक अलौकिक रस पैदा होता है—इसलिये यह काव्य है।

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि साधारण लोग जिस चाल से जिस बात को कहा करते हैं उसी बात में कुछ विशेष अर्थ गद्य या पद्य में कहने ही को काव्य कहते हैं। जैसे—

"राजा दोपहर हो गया उठो, चलो, नहाओ"।

यह साधारण बात हुई। इसी को—

"हे नाथ, दोपहर की गर्मी से ज़मीन गर्म हो गई, आप के स्नान में शरीर के गिरे हुए पानी के पीना चाहती है" यह काव्य हुआ। इसी भाव का

"अकथयदथ बन्दि सुन्दरी द्राक् सविधमुपेत्य नलाय मध्यमह्नः। जय नृप दिनयौवनोष्मतप्ता तव तनुजलानि पिपासति क्षितिस्ते॥"

यह नैषध में श्रीहर्ष का श्लोक है।

इसी तरह।

"जो आप जरूर पार जाना चाहते हो तो मुझे पैर धोने को कहो" यह सीधी बात हुई, इसे "हे प्रभु जो अवश्य पार जाना चाहते हो तो मुझे अपने चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिए।" ऐसा गद्य में या

जौं प्रभू पार अवसि गा चहहू।
मोहिं पद-पदुम पखारन कहहू॥

ऐसा पद्य में कहें तो काव्य है॥

जिस तरह साधारण लोग बोला करते हैं उससे कुछ बढ़ कर कहने में गीत और छन्दों का भी काम पड़ता है क्यों कि किसी अच्छी बात को किसी राग रागिनी में कहें तो सुनने वाले को बड़

मनोहर रस मिलने से ग्रैार भी ग्रानन्द बढ़ेगा। इस लिये जो गद्य (वार्त्तिक) काव्य है उससे अधिक पद्य (गीत या श्लोक) काव्य की प्रशंसा होती है।

पद्य काव्य में दोष इतना ही है कि जिस क्रम से हम लोग बात चीत करने में शब्दों को बोलते हैं, छंदों के ठीक करने के लिये वैसा शब्दों के क्रमों को न रखने से सुनने वालों, को शीघ्र अर्थ नहीं समझ पड़ता इससे काव्य-रस की धारा में विच्छेद पड़ता है जिससे पूरा आनन्द नहीं मिलता।

"रस की बात को काव्य कहते हैं" यह सभी भाषा के पंडितों का मत है।

पीछे से पंडितों ने काव्य में शृङ्गार, शान्त, करुण इत्यादि अनेक रसभेद कर्णकटुता, अश्लीलता, ग्राम्यत्व (गवाँरपन), कठिनता इत्यादि अनेक दोष, मधुर, ओज ग्रैार प्रसाद गुण, उचित शब्दों का प्रयोग, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र, कमलबंध इत्यादि अनेक अलङ्कार ग्रैार अर्थों में उपमा, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, दीपक, तुल्ययोगिता, विरोधाभास, वक्रोक्ति इत्यादि अनेक अलङ्कार दिखाए हैं।

ये नाम संस्कृत-भाषा में हैं, हिन्दी के कवि भी इन्हीं नामों से प्रयोग करते हैं। काव्यों में नायक ग्रैार नायिकाग्रों के अनेक भेद भी दिखाये गए हैं। ये सब बातें सभी भाषा के काव्यों में रहती हैं, केवल नामों में भेद पाए जाते हैं।

हिन्दी ग्रैार संस्कृत काव्यों में जितने भेद हैं उन सब पर ध्यान दे कर जो काव्य बनाया जाय तो शायद एकाध दोहा या श्लोक काव्य लक्षण से निर्दोष ठहरे। संस्कृत का काव्य इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है कि जो कोई कवि महादेव के अर्थ में 'भवानीपति' कह दे तो संस्कृत-काव्य जानने वाला तुरन्त समझ जायगा कि यह कवि नहीं है। संस्कृत काव्य की रीति से 'भव (महादेव) की स्त्री भवानी हुई फिर उसका पति कहने से कोई जार समझा जायगा।

काव्य में भी दृश्य याने जो लीला इत्यादि दिखाई जाय ग्रैार श्रव्य जो सुनाया जाय ये दो भेद किए गए हैं। इन दो भेदों में भी बहुत ग्रवान्तर भेद हैं—जैसे दृश्य काव्य में नाटक, अभिनय, प्रहसन, भाण... . श्रव्य काव्य में गद्य ग्रैार पद्य ये दो बड़े भेद हैं फिर गद्य काव्य में आख्यायिका, कथा, खण्ड कथा, कथानिका, परिकथा ये पाँच भेद हैं।

जिस काव्य में गद्य ग्रैार पद्य दोनों रहते हैं उसे संस्कृत में चंपू कहते हैं।

अग्नि पुराण के ३३६—३४७ अध्यायों में काव्य, नाटक ग्रैार अलङ्कार के अनेक भेद दिखलाए गए हैं जिन सभों का वर्णन करना मानो एक पुराण का पाठ करना है।

साहित्य ।

काव्य के नाटक, अलङ्कार......जितने ग्रंग हैं सभों के वर्णन के सहित होने से साहित्य कहा जाता है। संस्कृत में इस शब्द की व्युत्पत्ति "व्याकरणन्यायमीमांसाकलादेः सहितस्य भावः साहित्यम् " यह है। इसलिये हिन्दी काव्य के सब ग्रंग जिस हिन्दी ग्रन्थ में हों उसे हिन्दी-साहित्य कहेंगे। हिन्दी-साहित्य के ऊपर जो लोग अधिक विचार के साथ अनुराग करे उन्हें 'हिन्दी-साहित्य सेवी' कहना चाहिए। मेरी समझ में आज कल अंगरेज़ी 'लिटरेचर (Literature) के अर्थ में 'साहित्य' का प्रचार करना संस्कृत 'साहित्य' शब्दार्थ से बहुत ही भेद डालना है। वाल्मीकि रामायण को काव्य कहते हैं इसलिये तुलसीदास की रामायण भी काव्य कहा जा सकता है पर बहुत लोग भूल से इसे हिन्दी-साहित्य कहते हैं।

काव्य की भाषा ।

जिस भाषा में जिस तरह से शब्दों के साथ विभक्ति, क्रिया, लिङ्ग ग्रैार वचन का व्यवहार होता है उस भाषा के काव्य में भी उसी प्रकार से उस भाषा के शब्दों के साथ उनका व्यवहार होता है।

पद्य काव्य में छन्दों में ठीकठीक स्थानों में ह्रस्व-दीर्घ अक्षर बैठाने के लिये कहीं कहीं ह्रस्व की जगह दीर्घ और कहीं दीर्घ की जगह ह्रस्व कर दिया जाता है, और साधारण बोली में जिस क्रम से शब्द बोले जाते हैं वे क्रम भी बदल दिए जाते हैं पर शब्दों के रूप नहीं बदले जाते। इसके लिये दो उदाहरण लीजिए।

संस्कृत कालेज के पुस्तकालय में भास्वती की एक भाषा टीका है यह संवत् १८४५ में बनी है उसकी भाषा—

"मुरारि जो हैं वासुदेव तेहि के जे हाहिं चरण कमल तेन्ह नमस्कार कै शिष्य निमित्त भास्वती संस्कृत शतानन्द कीन्हि। कौन काल शकु ऊन करण एक सहस्र एकैस ग्रन्थादि वर्ष भुक्त जानबे। शालाब्द संज्ञा होइ। सो देख कै वनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह"।

(मेरी गणक तरङ्गिणी का पृ० ३३ देखो)

संवत् १६६९ में तुलसीदास की पंचनामे की बोल चाल की भाषा।

(असल पंचनामे में वाक्य मिला कर लिखे हैं, पदच्छेद नहीं है पर काशीनागरीप्रचारिणी की ओर से जो इण्डियन प्रेस में रामायण छपा है उसमें पदच्छेद किया हुआ है उसी की नक़ल मैं भी यहाँ लिखता हूँ।)

*संवत् १६६९ समए कुआर सुदि तेरसी वार शुभ दीने लिपीतं पत्र अनंद राम तथा कन्हई के अंस विभाग पुर्वक आगें जे आग्य दुनहु जने माँगा जे आग्य भै से प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसीलु अंश टोडर मल के माह जे विभाग पदु होतरा..........

अंश अनंद राम	अंश कन्हई
मौजे भदेनी यह अंश पाँच	... ...
तेहि यह अंश दुइ आनन्द राम	... ...
तथा लहर तारा सगरेउ तथा	... ...
छितुपुरा अंश टोडर मलुक तथा	... ...
नयपुरा अंश टोडर मलुक	... ...
हील हुज्जती नास्ती	लीपीतं कन्हई जे
लिषीतं अनन्द राम जे ऊपर	उपर लिषा से सही।
लिखा से सही।	... ...
साखी......	... ...
... ...	... ...
... ...	... ...
... ...	... ...
... ...	

साखी साखी काशी दास वासुदेव सुत
दस्तखत—मधुप।

मलिक महम्मद की काव्य-भाषा।

पुनि रानी हँसि कूसल पूछा।
कित गवँने करि पीँजर छूछा॥
रानी तुम जुग जुग सुख पाटू।
छाज न पंखिहि पीँजर ठाटू॥
जो भा पंख कहाँ थिर रहना।
चाहइ उड़ा पंख जो डहना॥
पीँजर महँ जो परेवा घेरा।
आइ मँजारि कीन्ह तहँ फेरा॥
दिवसक आइ हाथ पै मेला।
तेहि डर बनोबास कहँ खेला॥
तहाँ जाइ ब्याधा नर साधा।
छूट न पाउ मीच कर बाँधा॥
वेइ धरि बेँचा बाम्हन हाथा।
जंबूदीप गयउँ तेहि साथा॥

*उस समय सानुनासिक अक्षर म के ऊपर अर्धचन्द्र देने की चाल नहीं मालूम होती है। माँगा, मँह में अर्धचंद्र नहीं है। अयोध्या के राजा के रत्नकुसुमाकर में भी में पर अर्धचंद्र नहीं है।

ह्रस्व दीर्घ पर भी बहुत कम ध्यान था। तेरसि के स्थान में तेरसी लिखा है। शायद उस समय त्रयोदशी का अपभ्रंश तेरसी ही प्रचलित रहा हो। एक ही शब्द लिखित को लिपितं, लिपीतं और लीपीतं तीन तरह से लिखा है। ख की जगह षो लिखा है। जान पड़ता है लिखनेवालों का इन बातों पर कुछ ध्यान न था।

तहाँ चित्र चितउर गढ़ चित्र सेन कर राज।
टीका दीन्ह पुत्र कहँ आप लीन्ह सब साज ॥
(पद्मावत दे। १८३)

इस में मँह, कीन्ह, तेहि...वैसे ही आए हैं जैसे कि उस समय की बोल चाल में हैं।

कुसल, पाट्ट, ठाट्ट,...में छंद ठीक करने के लिये एक एक अक्षर दीर्घ किए गए हैं।

कीन्ह के ऐसे दीन्ह और लीन्ह भी आए हैं।

कबीर साहब की काव्य-भाषा।

ऐसी गति संसार की ज्यों गाडर की ठाट।
एक परा जो गाड महँ सबहि जात तेहि बाट ॥
केरा तबहि न चैतिया जब ढिग लागी बेरि।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हा घेरि ॥

यहाँ भी महँ, तेहि, लीन्हा, वैसे ही हैं जैसे कि बोल चाल की भाषा में हैं।

तुलसीदास की काव्य-भाषा।

तेहि मह पितु आयसु बहुरि संमति जननी तोर।
(अयोध्या कां० दे० ४१)

जो पंचनामे में तेहि मह है वही यहाँ पर भी है।

तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी।
दुहु सकोच सकुचति बर बरनी ॥
(अयोध्या कां० दे० ११६)

पंचनामे का दुहु यहाँ भी आया है।
"लिये दुनउ जन पीठि चढ़ाई"
(कि० कां० दे० ५)

पंचनामे का दुनउ जन यहाँ भी है।

बहुत पोथियों में दुधउ जन पाठ है।

संभव है कि उस समय पंचनामे के साखी और साखी के ऐसा दुनउ और दुधउ दोनें शब्द प्रचलित रहे हों।

इन सब उदाहरणों से साफ़ है कि हिंदी भाषा के काव्य और बोल चाल की भाषा शब्दों के रूप एक ही हैं।

उस समय तेहि=तिसका। जेहि=जिसका रामहि=राम का या राम को।

राम कहँ, राम केर=राम का।

तेहिमह=तिसमें, जासु=यस्य=जिसका, तासु=तस्य=तिसका। राम कहा=रामने कहा। सुग्रीव गा या गयऊ=सुग्रीव गया।

कीन्ह=किया। लीन्ह=लिया। दीन्ह=दिया, ... जाब=जाना। कोहाब=कोहना। खाब=खाना.........

भा, भयउ=भया, हुआ।......
तासन=तासों=तिससे, उससे

ऐसे शब्दों के रूप प्रचलित थे। "ने" का कहीं नाम नहीं है, पंचनामे में देखो दुनउ जने मागा। जैसे संस्कृत में अकर्मक और सकर्मक दोनें क्रियाओं में कर्त्ता का प्रथमान्त रूप रहता है उसी तरह उस समय की हिंदी भाषा में भी था। सूरदासजी के सूरसागर में भी प्रायः 'ने' का प्रयोग नहीं है।

आज से ५०० वर्ष पहिले की हिंदी भाषा का कुछ नमूना कबीरदास की साखी, मलिक महम्मद की पदुमावत और मुरारि की भास्वती टीका से मिलता है। और ३०० वर्ष पहिले का नमूना तुलसीदास के पंचनामे और उनके ग्रंथों से मिलता है।

इन लोगों के ग्रंथों की भाषा बनारस और अवध के भीतर की है। इन के ग्रंथों के देखने से और मुरारि की भाषा और तुलसीदास के पंचनामे की बोल चाल की भाषा से साफ़ है कि उस समय लोग जैसा बोलने में शब्दों का व्यवहार करते थे वैसा ही काव्य में भी व्यवहार करते थे।

संस्कृत में तो कुछ कहना ही नहीं है उस में तो बोल चाल और काव्य की भाषा आज तक एक ही है।

आज कल जिस हिंदी भाषा में अनेक गद्यकाव्य बनते जाते हैं लोग उस भाषा में पद्यकाव्य नहीं बनाते, पद्यकाव्य के लिये पुरानी ही भाषा रक्खी जाती है इसलिये दोनें में शब्दों के रूपों में भेद पाये जाते हैं।

लल्लूजीलाल कवि की भाषा।

आगरे के रहने वाले लल्लूजी लाल कवि ने कलकत्ता फोर्टविलियम कालेज के विद्यार्थियों के लिये, लार्डमिण्टो छठवें गवर्नर जेनरल के समय (सं० १८०७= १८१३) डाकृर जान गिलक्रिस्ट और विलियम हंटर साहब की आज्ञा से आगरे की बोली में प्रेमसागर को बनाया। तब से उन की बोलचाल की भाषा इधर उधर फैलने लगी। उसी से ने, था, थे,......का प्रचार होने लगा पर वहाँ से अठारह कोस पर ब्रज के रहने वालों की भाषा में ने आने पर भी बहुत भेद था।

लल्लूजी ने जो ब्रजभाषा में संस्कृत हितोपदेश का उल्था किया है उसका भी एक उदाहरण लीजिये।

इतेक में व्याधी ने रूख तरे चाँवर के कनिका डारि तापर जाल पसार्यो, तहाँ चित्रग्रीव कपोत कुटुंब समेत उड़त उत आय कढ़्यो। तिन में तें एक पंछी देखि बोल्यो, इन चाँवरनि कौं हौं चुँग्या चाहतु हौं। चित्रग्रीव कही, अरे या बन में चाँवर कहाँ तें आये यह बातु कौतुक है, या तें ये मोकौं नीके नाहीं लागतु। सुनौ, जौ तुम इन चाँवरनि कौ लोभ करिहौ, तौ ऐसें होयगो, जैसें कंकन के लोभ सौं एक पथिक दलदल में फँसि बूढ़े बाघ कौ अहार भयो, यह सुनि पंछियन कही..............

जैसे आज कल के से की जगह उस समय ब्रज में सों का प्रचार था वैसे ही आज कल के में की जगह मों का प्रचार था पर लल्लूजी ने में ही का व्यवहार किया है। संभव है कि में भी प्रचलित हो गया हो या लल्लूजी ने भूल से आगरे की बोली के में लिख दिया हो।

जैसे शब्दों में हरि=हरकर, सुनि=सुनकर, देखि=देखकर,.........आते हैं इसी तरह लल्लूजी ने ब्रज की बोलचाल भाषा में भी लिखा है। "चित्रग्रीव कही" पंछियन कही" इन में ने को बता है वह ... कविता के ढंग के भी हैं।

राजा शिवप्रसादजी अपने नए गुटके ... वें पृ० में नोट लिखते हैं—

"ब्रज छोटा ही सा मंडल है पर भाषा ... ऐसी मीठी प्यारी कि सारे संसार में वैसी ... कोई निकलेगी। ईरान से एक शाइर ... में यही साबित करने को आया कि ब्रज ... के सामने बेचारी ब्रजभाषा की क्या ... लेकिन अभी ब्रज के भीतर भी पैर नहीं रक्खा ... कि क्या देखता है एक पनिहारी कूएँ से ... गगरी सिर पर धरे घर को जा रही है और ... लड़की जो पीछे पड़ी जाती है पुकार रही है।

"मायरी, माय मग साँकरी पायनु मैं ... गड़तु है" शाइर साहब के होश जाते रहे ... जहाँ पनिहारियों की लड़कियाँ ऐसी शीरीनी ... साथ बोलती हैं वहाँ के शाइरों का क्या ठिकाना ... है। गरज़ मुँह छुपा कर ठंडे ठंडे अपने ... राह ली।

मुझे बड़ा अचरज है कि राजा साहब ने ... कहानी को कैसे सच समझ लिया क्योंकि ... शाइर साहब तो लड़की की बोली भी न ... सके होंगे फिर उसकी शीरीनी कैसे ... शायद लड़की ने कुछ ऐसे सुर से गाकर ... हो जिस सुर से शाइर साहब मोह गए हों। यह ब्रजभाषा समझते रहे हों तो शायद ... सुनने के लिए ब्रज में आए हों।

यहाँ मायरी माय और साँकरी ... ठेकानुप्रास होने से कवि लोग इसे ... सकते हैं।

जब तक भाषा का अच्छी तरह ... होगा तब तक उस भाषा के काव्य का ... कभी नहीं जान पड़ेगा। इसी पर कहावत है—

"मैंस के आगे बेन बाजै भैंस बैठ कर पगुरै ... या "बानर आदी का स्वाद क्या जानै"

अपने देश ही की भाषा मीठी और ... मालूम होती है।

पदच्छेद ।

पहिले संस्कृत और हिन्दी में पदच्छेद के साथ लिखने की चाल न थी। जितनी लिखी प्राचीन पोथियाँ मिली हैं किसी में शब्द अलगा कर नहीं लिखे हैं।

पढ़ाने के समय पंडित का यह पहिला काम था कि श्लोक या सूत्र के पढ़ देने के बाद विद्यार्थी को पदच्छेद बतावे फिर अन्वय और शब्दों की व्युत्पत्ति करके भावार्थ समझा दे । जुदी जुदी तरह से पदच्छेद करने से एक ही वाक्य के कई अर्थ हो जाते हैं। जैसे तुलसीदास के "येहि सन हठि करिहउँ पहिचानी । साधु से होइ न कारज हानी" इस चौपाई में कारजहानी, कार जहानी, का रजहानी ऐसे पदच्छेद करने से तीन अर्थ होते हैं।

मीमांसा के आचार्य कुमारिलभट्ट के विषय में परंपरा से यह कहानी चली आती है कि उनके पढ़ने के समय एक जगह पाठ आया—

"तत्रतुनोक्तं अत्रापिनोक्तं इति द्विरुक्तम्"

उन के गुरु तत्र तु न उक्तं अत्र अपि न उक्तं ऐसा पदच्छेद कर अर्थ करते थे जिससे आगे का वाक्य "इति द्विरुक्तं" (इस लिये दो बेर कहा गया) असंगत होता था। गुरुजी हैरान होकर मध्याह्न की संध्या करने चले गए।

इस बीच चुपचाप कुमारिल आकर पोथी खोल कर "अत्र तुना उक्तं तत्र अपिना उक्तम्" ऐसा पदच्छेद बनाकर पोथी बाँध धीरे से चले गए, दो पहर बाद गुरुजी ने उस वाक्य के अर्थ सोचने के लिए जो पोथी खोली तो देखा कि पदच्छेद किया हुआ है जिससे तुरंत वाक्य का अर्थ लग गया। पता लगाने पर मालूम हो गया कि कुमारिलभट्ट ने पदच्छेद कर दिया था। इस पर गुरु कुमारिल भट्ट पर बहुत प्रसन्न हुए।

पदच्छेद के साथ लिखने की चाल अँगरेज़ों की निकाली है। ये लोग जब हिन्दी भाषा पढ़ने लगे तो समझने में कठिनाई पड़ी। उसे हटाने के लिए ये लोग हिन्दी की पोथियाँ पदच्छेद के साथ छपवाने लगे। जैसे अँगरेज़ी में to (टु) in (इन) ये अलग लिखे जाते हैं उसी तरह हिन्दी में भी को, का, में,...अलग लिखे जाने लगे। इसी से आज कल विभक्ति को शब्दों से अलग लिखना या मिलाकर लिखना यह झगड़ा खड़ा हो गया है। लल्लूजी ने अपनी लालचंद्रिका को पुरानी चाल से छपवाया था याने उस में पदच्छेद नहीं है, वैसे हो डा० ग्रियर्सन साहब ने भी फिर से छपवा दिया है।

अँगरेज़ी ही समय से संस्कृत की पोथियाँ भी पदच्छेद के साथ छापी जाती हैं। वे लोग अपने समझने के लिए 'रामेऽगतः' ऐसा पदच्छेद करते हैं जिस में 'रामोऽगतः' का संशय न हो पर व्याकरण के अनुसार संधि होने से, रामोगतः' ऐसा मिलाकर लिखना चाहिए।

अब छपवानेवाला अपने अर्थ के अनुसार पदच्छेद कर काव्य के ग्रंथों को छपवाता है जिससे पढ़नेवाले को उस अर्थ के समझने के लिये पदच्छेद करने की जरूरत नहीं पड़ती।

तुलसीदास के पंचनामे में तेहि मह लिखा है जो कि आज कल की हिन्दी में तिसमें या उसमें हैं।

मुझे जान पड़ता है कि संस्कृत का तस्य मध्ये ही तेहि मह है। ऐसी दशा में मह या में एक शब्द है यह अलग रहे तो उत्तम। इसी तरह के, को, केरा...ये भी शब्द जान पड़ते हैं इसलिये अलग रहने में अच्छा है।

लल्लूजी के साथ साथ अँगरेज़ों की चलाई हिन्दी ही जब आज कल की हिन्दी है तब उन लोगों की चाल बदलने से मैं कुछ फल नहीं समझता, संस्कृत की चाल चलानी हो तो शब्दों के साथ उन्हें मिला कर रामे के ऐसा राममें लिखिए।

भाषा में नए शब्दों की जरूरत ।

जिस देश में जो जो पदार्थ पाए जाते हैं उन के लिए वहाँ के रहनेवाले पहिले ही से शब्द बनाए रहते हैं। आपस में इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं।

जब उन के देश में नये राज या व्यापार...से नई नई चीज़ें आने लगती हैं तब उन्हें नए शब्दों की ज़रूरत पड़ती है। जो नई चीज़ अपने देश में पहुँच जाती हैं उस के रूप, रंग, गुण और धर्म से नाम रख लिये जाते हैं या जिस देश से जो पदार्थ आप उस देश में वे जिस शब्द से कहे जाते हैं उन्हीं शब्दों से दूसरे देशवाले भी उन्हें कहने लगते हैं, इस में इतना भेद अवश्य हो जाता है कि विदेशी शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण न होने से उनके बहुत अंशों में भेद पड़ जाता है, जैसे इंगलिश का अँगरेज़, फ्रेंच का फरंग फिर फिरंगी,...... ।

रूप से गोरखनाथियों को कनफटा और टेलिग्राफ को तार, रंग से युरोपियन को गोरा, गुण से म्याच को दियासलाई और धर्म से म्यागनेट की सुई को कुतुबनुमा कहते हैं। कभी कभी उस देश के नाम से भी वहाँ की चीज़ कही जाती है जैसे चीन से आने के कारण चीनी, मिश्र से आने के कारण मिश्री और सूरत से आने के कारण सूरती कही जाती है।

फिरंगी यह शब्द हिंदुस्तान में ३०७ वर्ष से प्रचलित है। रंगनाथ ने सन् १६०३ ई० में सूर्यसिद्धान्त पर एक टीका बनाई है उसमें स्वयंवह यंत्र के ऊपर लिखा है कि "इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तर्निवासिजनैः फिरंग्याख्यैः सम्यगभ्यस्ता" समुद्र के पार रहनेवाले फिरंगी नाम के लोगों ने इस स्वयंवहविद्या का अच्छी तरह से अभ्यास किया है।

इस तरह विदेशी चीज़ों के नाम के लिये अपने देश की भाषा में नए नए शब्द बनाए जाते हैं।

जिस देश में जिस चीज़ के लिये जो शब्द प्रचलित हैं उन्हीं शब्दों से जो हम लोग भी उन चीज़ों को कहें तो कुछ दोष नहीं बल्कि सुभीता है क्योंकि ऐसी दशा में नए शब्दों के गढ़ने के लिये कमेटी बैठाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पर जिन चीज़ों के लिये अपनी भाषा में शब्द बने बनाए हैं उनके लिये विदेशी शब्द का व्यवहार करना उचित नहीं। पुस्तक या पोथी के रहते हिंदी "... बुक का व्यवहार करना मेरी समझ में ठीक ... नए शब्दों की ज़रूरत हो तो सहज संस्कृ... को रुधिर, पानी की जगह जीवन, भुवन या ... रखने से कुछ फल नहीं।

बहुत लोग अपनी लियाकत दिखाने के ... अपनी भाषा के शब्द रहते भी विदेशी भा... शब्दों का व्यवहार करते हैं।

विक्रमादित्य के नव रत्नों में एक रत्न वराहमि... ने ग्रीक भाषा में अपना पाण्डित्य दिखाने के लि... अपने बृहज्जातक में बृह को तावुरि, सिंह को ले... मिथुन को जितुम,...लिखा है।

अकबर बादशाह के प्रधान पंडित ने अरबी ... लियाकत दिखाने के लिये नीलकंठी तंत्र में ... को हद्द और नवमांश को मुसल्लह लिखा है।

जो विदेशी शब्द अपनी देशभाषा में अच्छी ... तरह से प्रचलित हो गए हैं उनके प्रयोग करने ... कुछ दोष नहीं। जैसे हिंदी भाषा के दरिद्र के ... ग़रीब का प्रयोग करना अनुचित नहीं पर ग़रीब ... जगह ग़रीब लिखना ठीक नहीं (रामकहानी की ... भूमिका देखो)।

हिन्दी-भाषा का मूल।

पण्डित लोग प्राकृत भाषा को सरस्वती की ... बाल भाषा कहते हैं। उन लोगों का कहना है कि ... जैसे बच्चे टूटे फूटे अक्षरों से शब्दों का उच्चा... करते हैं उसी तरह जब सरस्वती बच्चा थी ... जैसे बोलती थी वही प्राकृत भाषा है, फिर सरस्... ने बड़ी होने पर उन शब्दों में संस्कार दे कर ... उच्चारण किया उसे संस्कृत कहते हैं।

जो हो पर यह बात तो साफ है कि रामक... के समय ही से मनुष्य की भाषा से संस्कृत भा... भिन्न है।

शिंशिपा पेड़ पर बैठ कर हनुमान ने विचा... किया है कि जानकी से किस भाषा में बात ... करूँ।

"अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।

(वाल्मी० सु० कां० स० ३० श्लो० १७-१९)

इस से साफ है कि उस समय भी साधारण मनुष्यों की भाषा से संस्कृत भाषा भिन्न थी। रावण संस्कृत जानता था इसी लिये हनुमान ने कहा कि संस्कृत में बात-चीत करने से मुझे रावण समझ कर सीता डर जायगी।

इस से मुझे निश्चय है कि बनारस से अवध तक जो आदि में मनुष्य-भाषा थी वही बिगड़ते बिगड़ते हम लोगों की आज कल की भाषा है।

इस में संशय नहीं कि राजसभा में और आर्य लोगों में संस्कृत भाषा में व्यवहार होता था। पर उस समय भी अनेक भाषाएँ थीं।

पतञ्जलि ने पाणिनि अष्टाध्यायी के महाभाष्य में लिखा है।

"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति विकार एवैनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्यमध्यमेषु गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते।"

कंबोज में चलने को शवति कहते हैं आर्य लोग विकार याने मुर्दे को शव कहते हैं। सुराष्ट्र में चलने को हम्मति और पूर्व मध्यम में रंहति कहते हैं, इसी को आर्य लोग गति कहते हैं। (मेरे गणित के इतिहास का पहला भाग देखो) पतञ्जलि अवध के गोंडा जिले में पैदा हुए हैं इसी लिये लोग इन्हें गोणिकापुत्र भी कहते हैं।

बहुत लोग पाणिनि का जन्म ईसा से ८०० वर्ष पहिले मानते हैं (रजनीकान्त बाबू का बनाया बंगला भाषा का पाणिनि नाम ग्रंथ देखो) हिन्दी भाषा में पुंलिंग में मेरा, तेरा, आया, गया,......और स्त्री लिंग में मेरी, तेरी, आई, गई,......उनका कपड़ा, उनके कपड़े, उनकी पोथी......प्रयोग होते हैं। संस्कृत में पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में मम, तव, आजगाम, जगाम या ययौ, तेषां वस्त्रं, तेषां वस्त्राणि, तेषां पुस्तकं......प्रयोग होते हैं।

हिन्दी के काव्य में दोहा, सोरठा, बरवा, चौपाई छप्पय, घनाक्षरी, सवैया.......छंद बहुत करके पाए जाते हैं पर प्राचीन संस्कृत के काव्यों में ये कहीं नहीं पाए जाते। संस्कृत के जितने छंद ग्रंथ हैं सब प्राकृत पिंगल के आधार पर लिखे गए हैं।

हिन्दी में बहुत पुराने समय से तरह तरह के गीत प्रसिद्ध हैं। पुराने समय के संस्कृत गीत कहीं नहीं पाए जाते। इन सब बातों से निश्चय होता है कि हिन्दी भाषा संस्कृत भाषा से भिन्न है।

संभव है कि एक देश में रहने से आपस में दोनों संस्कृत और हिन्दी ने शब्दों का लेन देन व्यवहार किया हो।

इस में संशय नहीं कि पीछे से यशवंतभूषण, व्यंगार्थकैामुदी, रसराज, कविप्रिया.........काव्य साहित्य के हिन्दी-ग्रंथ संस्कृत के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, कुवलयानन्द ......की चाल पर बने।

जैसे संस्कृत में पिक, नेम, तामरस इत्यादि म्लेच्छ शब्द मिल गए उसी तरह इस हिंदी में भी, ग़रीब, अमीर, कुल, मुनासिब इत्यादि अरबी फारसी के शब्द मिल गए। बात पुरानी पड़ जाने से आज कल किसी संस्कृत की डिक्शनरी में पिक, (कोयल) तामरस (कमल) को म्लेच्छ शब्द नहीं लिखा है, पर जैमिनि न्यायमाला की टीका में माधवाचार्य ने यह बात साफ साफ लिखी है।

आजकल की हिन्दी।

लल्लूजी लाल कवि, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र की बोल चाल की भाषा में संस्कृत शब्दों के मेल से आजकल की हिंदी बन रही है। संस्कृत शब्द रूप और अर्थ बदल कर ऐसे मिल रहे हैं जिस का कुछ ठिकाना नहीं।

अब उन के देश में नये राज या व्यापार...से नई नई चीज़ें आने लगती हैं तब उन्हें नए शब्दों की ज़रूरत पड़ती है। जो नई चीज़ अपने देश में पहुँच जाती हैं उस के रूप, रंग, गुण और धर्म से नाम रख लिये जाते हैं या जिस देश से जो पदार्थ आए उस देश में वे जिस शब्द से कहे जाते हैं उन्हीं शब्दों से दूसरे देशवाले भी उन्हें कहने लगते हैं, इस में इतना भेद अवश्य हो जाता है कि विदेशी शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण न होने से उनके बहुत अंशों में भेद पड़ जाता है, जैसे इंगलिश का अँगरेज़, फ्रेंच का फरंग फिर फिरंगी,...... ।

रूप से गोरखनाथियों को कनफटा और टेलिग्राफ को तार, रंग से युरोपियन को गोरा, गुण से म्याच को दियासलाई और धर्म से म्यागनेट की सुई को कुतुबनुमा कहते हैं। कभी कभी उस देश के नाम से भी वहाँ की चीज़ कही जाती है जैसे चीन से आने के कारण चीनी, मिश्र से आने के कारण मिश्री और सूरत से आने के कारण सूरती कही जाती है।

फिरंगी यह शब्द हिंदुस्तान में ३०७ वर्ष से प्रचलित है। रंगनाथ ने सन् १६०३ ई० में सूर्य-सिद्धान्त पर एक टीका बनाई है उसमें स्वयंवह यंत्र के ऊपर लिखा है कि "इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तर्निवासिजनैः फिरंग्याख्यैः सम्यगभ्यस्ता" समुद्र के पार रहनेवाले फिरंगी नाम के लोगों ने इस स्वयंवहविद्या का अच्छी तरह से अभ्यास किया है।

इस तरह विदेशी चीज़ों के नाम के लिये अपने देश की भाषा में नए नए शब्द बनाए जाते हैं।

जिस देश में जिस चीज़ के लिये जो शब्द प्रचलित हैं उन्हीं शब्दों से जो हम लोग भी उन चीज़ों को कहें तो कुछ दोष नहीं बल्कि सुभीता है क्योंकि ऐसी दशा में नए शब्दों के गढ़ने के लिये कमेटी बैठाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पर जिन चीज़ों के लिये अपनी भाषा में शब्द बने बनाए हैं उनके लिये विदेशी शब्द का व्यवहार करना उचित नहीं। पुस्तक या पोथी के रहते हिंदी में कि[illegible] बुक का व्यवहार करना मेरी समझ में ठीक [illegible] नए शब्दों की ज़रूरत हो तो सहज संस्कृ[illegible] को रखिए, पानी की जगह जीवन, भुवन [illegible] रखने से कुछ फल नहीं।

बहुत लोग अपनी लियाकत दिखाने [illegible] अपनी भाषा के शब्द रहते भी विदेशी भ[illegible] शब्दों का व्यवहार करते हैं।

विक्रमादित्य के नव रत्नों में एक रत्न वराह[illegible] ने ग्रीक भाषा में अपना पाण्डित्य दिखाने के [illegible] अपने बृहज्जातक में वृष को तावुरि, सिंह को [illegible] मिथुन को जितुम,...लिखा है।

अकबर बादशाह के प्रधान पंडित ने अप[illegible] लियाकत दिखाने के लिये नीलकंठी तंत्र में [illegible] को हद्द और नवमांश को मुसल्लह लिखा है।

जो विदेशी शब्द अपनी देशभाषा में [illegible] तरह से प्रचलित हो गए हैं उनके प्रयोग क[illegible] कुछ दोष नहीं। जैसे हिंदी भाषा के दरिद्र के [illegible] ग़रीब का प्रयोग करना अनुचित नहीं पर गरी[illegible] जगह ग़रीब लिखना ठीक नहीं (रामकहानी [illegible] भूमिका देखो)।

हिन्दी-भाषा का मूल।

पण्डित लोग प्राकृत भाषा को सरस्वती [illegible] बाल भाषा कहते हैं। उन लोगों का कहना है [illegible] जैसे बच्चे टूटे फूटे अक्षरों से शब्दों का उच्[illegible] करते हैं उसी तरह जब सरस्वती बच्ची थी [illegible] जैसे बोलती थी वही प्राकृत भाषा है, फिर सरस्[illegible] ने बड़ी होने पर उन शब्दों में संस्कार दे कर [illegible] उच्चारण किया उसे संस्कृत कहते हैं।

जो हो पर यह बात तो साफ है कि रामच[illegible] के समय ही से मनुष्य की भाषा से संस्कृत भ[illegible] भिन्न है।

शिंशिपा पेड़ पर बैठ कर हनुमान ने विच[illegible] किया है कि जानकी से किस भाषा में बात-च[illegible] करूँ।

"अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।

(वाल्मी० सु० कां० स० ३० श्लो० १७-१९)

इस से साफ है कि उस समय भी साधारण मनुष्यों की भाषा से संस्कृत भाषा भिन्न थी । रावण संस्कृत जानता था इसी लिये हनुमान ने कहा कि संस्कृत में बात-चीत करने से मुझे रावण समझ कर सीता डर जायगी ।

इस से मुझे निश्चय है कि बनारस से अवध तक जो आदि में मनुष्य-भाषा थी वही बिगड़ते बिगड़ते हम लोगों की आज कल की भाषा है ।

इस में संशय नहीं कि राजसभा में और आर्य लोगों में संस्कृत भाषा में व्यवहार होता था । पर उस समय भी अनेक भाषाएँ थीं ।

पतञ्जलि ने पाणिनि अष्टाध्यायी के महाभाष्य में लिखा है ।

"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति विकार एवैनमार्या भाषन्ते शव इति । हम्मतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्यमध्यमेषु गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते ।"

कंबोज में चलने को शवति कहते हैं आर्य लोग विकार याने मुर्दे को शव कहते हैं । सुराष्ट्र में चलने को हम्मति और पूर्व मध्यम में रंहति कहते हैं, इसी को आर्य लोग गति कहते हैं । (मेरे गणित के इतिहास का पहला भाग देखो) पतञ्जलि अवध के गोंडा ज़िले में पैदा हुए हैं इसी लिये लोग इन्हें गोणिकापुत्र भी कहते हैं ।

बहुत लोग पाणिनि का जन्म ईसा से ८०० वर्ष पहिले मानते हैं (रजनीकान्त बाबू का बनाया बंगला भाषा का पाणिनि नाम ग्रंथ देखो) हिन्दी भाषा में पुंलिंग में मेरा, तेरा, आया, गया,......और स्त्री लिंग में मेरी, तेरी, आई, गई,......उनका कपड़ा, उनके कपडे, उनकी पोथी......प्रयोग होते हैं । संस्कृत में पुंलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में मम, तव, आजगाम, जगाम या ययौ, तेषां वस्त्रं, तेषां वस्त्राणि, तेषां पुस्तकं......प्रयोग होते हैं ।

हिन्दी के काव्य में दोहा, सोरठा, बरवा, चौपाई छप्पय, घनाक्षरी, सवैया.......छंद बहुत करके पाए जाते हैं पर प्राचीन संस्कृत के काव्यों में ये कहीं नहीं पाए जाते । संस्कृत के जितने छंद ग्रंथ हैं सब प्राकृत पिंगल के आधार पर लिखे गए हैं ।

हिन्दी में बहुत पुराने समय से तरह तरह के गीत प्रसिद्ध हैं । पुराने समय के संस्कृत गीत कहीं नहीं पाए जाते । इन सब बातों से निश्चय होता है कि हिन्दी भाषा संस्कृत भाषा से भिन्न है ।

संभव है कि एक देश में रहने से आपस में दोनों संस्कृत और हिन्दी ने शब्दों का लेन देन व्यवहार किया हो ।

इस में संशय नहीं कि पीछे से यशवंतभूषण, व्यंगार्थकौमुदी, रसराज, कविप्रिया.........काव्य साहित्य के हिन्दी-ग्रंथ संस्कृत के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, कुवलयानन्द ......की चाल पर बने ।

जैसे संस्कृत में पिक, नेम, तामरस इत्यादि म्लेच्छ शब्द मिल गए उसी तरह इस हिंदी में भी, गरीब, अमीर, कुल, मुनासिब इत्यादि अरबी फारसी के शब्द मिल गए । बात पुरानी पड़ जाने से आज कल किसी संस्कृत की डिकशनरी में पिक, (कोयल) तामरस (कमल) को म्लेच्छ शब्द नहीं लिखा है, पर जैमिनि न्यायमाला की टीका में माधवाचार्य ने यह बात साफ साफ लिखी है ।

आजकल की हिन्दी ।

लल्लूजी लाल कवि, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र की बोल चाल की भाषा में संस्कृत शब्दों के मेल से आजकल की हिंदी बन रही है । संस्कृत शब्द रूप और अर्थ बदल कर ऐसे मिल रहे हैं जिस का कुछ ठिकाना नहीं ।

संभव है कि जैसे हिंदू और मुसलमान 'माइयों' के बीच में एक नया पोशाक बनता जाता है उसी तरह कुछ दिनों के बाद साधारण हिंदीभाषा और संस्कृत भाषा के बीच में एक नई भाषा पैदा हो जाय।

अँगरेज़ी चाल पर अँगरेज़ी पढ़े हुए लोग गद्य काव्य में कहानी किस्से लिख रहे हैं, इनके काव्य में स्वभावोक्ति रहती है पर अधिक संस्कृत शब्दों के भर देने से प्रसाद गुण दूर हुआ जाता है और उसके साथ साथ पद्य काव्य कम हुआ जाता है।

प्राचीन काव्यों के पढ़ने का भी प्रचार बिलकुल बंद हो गया है, स्कूलों में जो हिन्दी-पुस्तकें पढ़ाने के लिये नियत हैं उनका पढ़ना या पढ़ाना एक खेल सा हो रहा है, लोग यही समझते हैं कि गुरु के मुँह से ख़ाली अँगरेज़ी पढ़नी चाहिए पर यह भूल है। सभी विद्या के लिये गुरु की ज़रूरत है।

लोग शक्ति से काव्य तो कर लेते हैं पर इसमें कौन अलंकार, कौन नायिका, कौन रस......है यह कुछ नहीं समझते।

संस्कृत के पंडित हिंदी की ओर कुछ नहीं ध्यान देते, मैंने कई बार उद्योग किया कि बनारस संस्कृत कालेज में एक हिंदी का अच्छा पंडित रहे जो नवीन प्राचीन दोनों ग्रंथों को अच्छी तरह से पढ़ावे और उसमें भी आचार्य परीक्षा हुआ करे। पर इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता।

संभव है कि कुछ दिनों के बाद, केवल किस्से कहानी के ग्रंथ पढ़ने पढ़ाने में रह जायँ, और पुराने हिंदी के पंडित खोजने से भी न मिलें। बिहारी की सतसई, व्यंग्यार्थकौमुदी इत्यादि ग्रंथ पुस्तकालयों ही में पड़े सड़ें।

इति इच्छा है कि एम. ए. की परीक्षा में मुरारी- के नाटकोंका [illegible] का [illegible] की [illegible] और बाबू [illegible] के लिए बाबू [illegible] का [illegible] किया जाय।

बी. ए. की परीक्षा में

यशवंतभूषण, व्यंगार्थकौमुदी, और मति का रसराज रक्खा जाय।

एम. ए. परीक्षा में

बिहारी की सतसई किसी एक टीका के सा और अयोध्या के राजा प्रतापनारायणसिंह का र कुसुमाकर रक्खा जाय।

जो दोनों बहुत जान पड़ें तो इनमें से एक दोनों के कुछ भाग नियत कर दिए जायँ।

या आप लोग विचार कर और ग्रंथों रखिए। मेरा यह कहना है कि हिंदी ग्रंथों की क नहीं है कमी केवल हमारे लोगों के उद्योग में।

बहुत लोगों का मत है कि स्कूलों में हिंदी अधिक प्रचार होने से संस्कृत भाषा दब जाय पर मैं तो समझता हूँ कि संस्कृत की तरक्की होग बंगाल में बंगला भाषा, गुजरात में गुजराती के युनिवर्सिटी में प्रचार होने से क्या उस ता संस्कृत भाषा दब गई।

आज कल लोगों को संस्कृत काव्यों हिंदी भाषा में उलथा करने की ज्यादा हो होती जाती है। संस्कृत काव्य में कौन कहानी इसके बताने के लिये जो हिंदी भाषा में उल किया गया हो तो ठीक है, पर जो इस तरह अनुवाद किया गया हो कि मेरा भी अनुव संस्कृत काव्य के ऐसा हिंदी काव्य कहावे तो अ वादक को चाहिए कि संस्कृत काव्य में जो काव्य की बातें हों वे सब हिंदी अनुवाद में भी जाय।

कुछ अनुवाद का भी उदाहरण दीजिए

[illegible]

(संस्कृत [illegible]

बाबू गदाधरसिंह का किया इसका हिंदी अनुवाद "सुआ ने पिँजरे के भीतर से अपना दहिना चरण उठा कर "राजा की जय हो" ऐसा आशीर्वाद किया।"

जिस आर्या में दोनों स्तनों में तपस्वी का रूपक है उसकी कुछ चर्चा ही न की गई। 'पिँजरे के भीतर से' यह मूल में नहीं है।

बाबू गदाधरसिंह ने बँगला ग्रन्थ से हिंदी में अनुवाद किया है इसलिये जान पड़ता है कि बँगला-अनुवाद भी ठीक नहीं है।

पद्य काव्य में छंद के अनुरोध से कुछ घटाना और बढ़ाना पड़ता है पर गद्य में तो ठीक ठीक अनुवाद होना चाहिए।

रघुवंश के ९वें सर्ग का ३१ श्लो०

उपहितं शिशिरापगमश्रिया
मुकुलजालमशोभत किंशुके।
प्रणयिनीव नखक्षतमण्डनं
प्रमदया मदयापितलज्जया॥

लाला सीतारामजी का अनुवाद—

मधु श्रिय देह सोह अति सुन्दर।
कली परासन माहि मनोहर॥
हिम दिनेस नहिं सकल नसाया।
आप मधु ऋतु कछुक घटाया॥

मैं समझता हूँ कि इसमें श्लोक के उत्तरार्ध का अनुवाद ही छूट गया है।

कालिदास ने इस सर्ग के हर एक श्लोक के चौथे चरण में 'प्रमदया मदया' के ऐसा यमकालंकार रक्खा है पर अनुवादक ने अपने अनुवाद में इसकी कहीं चर्चा हो न की। इसमें संदाय नहीं कि अनुवाद में ठीक ठीक मूल की सब बातें नहीं आ सकतीं तौ भी लक्षणव्यञ्जना और ध्वनि से मूल की बातें आ जानी चाहिए।

मैं तो समझता हूँ कि संस्कृत काव्य से बढ़कर हिंदी काव्य में आनन्द मिलता है।

कुछ हिंदी काव्य का नमूना भी देखिए।

चरन धरत चिंता करत नींद न भाव न सोर।
सुवरन कहँ ढूँढत फिरत कवि व्यभिचारी चोर॥
(राजा रघुराजसिंह)

इस दोहे में तीन अर्थ हैं।

कवि पक्ष में चरन से छंद का पाद, सुवरन से सुन्दर अक्षर है। व्यभिचारी पक्ष में चरण धरत से दूसरे के घर पैर रखते ही और सुवरन से सुन्दरवर्णवाली स्त्री है और चोर पक्ष में सुवरन से सोना है।

दृग अरुझत टूटत कुटुँब जुटत चतुर सँग प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिए दई नई यह रीति॥
(बिहारी की सतसई)

इस में विरोधालंकार है।

क्योंकि रीति है कि जो अरझता है वही टूटता है, जो टूटता है वही जुटता है, और जो जुटता है उसी में गाँठ पड़ती है, पर यहाँ पर सब उलटी बात है, नायक और नायिका की आँखें अरुझती हैं, कुटुम्ब टूटता है, दोनों चतुरों के सँग प्रीति जुटती है और दुर्जनों के दिल में गाँठ पड़ती है इस लिये यह नई बात है।

अहो पथिक कहियो तुरत गिरिधारी सों टेरि।
दृग झरि लाई राधिका बह्यो चहत ब्रज फेरि॥
(बिहारी की सतसई)

इसमें अतिशयोक्ति है।

हे बटोही (पथिक) गिरिधारी (कृष्ण) से तुरंत टेर कर (पुकार कर) कहना कि राधे की आँखों ने (वर्षा की) झड़ी लगाई है सो ब्रज फिर बहने चाहता है अर्थात् इन्द्रकोप की झड़ी से आपने ब्रज को बचाया है सो फिर चलकर बचाइए। यहाँ कृष्ण के सब नामों को छोड़ कर कवि ने 'गिरिधारी' ही नाम को रक्खा है इस में भी काव्य है याने पहिले 'गिरिधारी' ही होकर आपने ब्रज को बचाया है इस लिये अब भी 'गिरिधारी' होइए।

यसु दातन को भँचत हैं यसुदा तन को नाहिं।
नर कपरन को भँचत हैं नरक परन को नाहिं॥
(मेरे पिता पं० कृपालदत्त)

पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में यमकालंकार है। (लोग) दाताओं (दातन) के यश के लिए झँखते हैं (पर) कृष्ण (यदुदातन) के लिए नहीं झंखते। और लोग (नर) कपड़ों के लिए झंखते हैं (पर) नरक पड़ने के लिए नहीं झंखते।

बैगन लेकर कामिनी कहत चितइ घनश्याम।
भरता करि हौं हौं तुम्हहिं जौं चलिहौ मम धाम॥
(बाबू गोपालचंद का भारतीभूषण)

इसमें वागविदग्धा नायिका है।

हाथ में बैगन (भँटे) को लेकर वह कामिनी कृष्ण की ओर देख कर कहती है कि मेरे घर चलोगे तुम्हें भरता करूँगी, सुननेवाले तो समझते हैं कि भँटे से कहती है कि तुम्हारा भर्ता (चोखा) बनाऊंगी पर कृष्ण से कहती है कि घर चलो तुम्हें अपना पति (भर्त्ता) बनाऊँगी।

वा दिन की सुधि तोहि को भूलि गई कित साखि।
बागवान तोहि घूर तें लायो गोदी राखि॥
लायो गोदी राखि पालि सींच्यो निज कर तें।
तूं फूल्यो अभिमान पाइ आदर मधु-कर तें॥
बरनै दीनदयाल बड़ाई है सब तिनकी।
तूं झूमै फल भार त्यागि सुधि को वा दिन की॥
(बाबा दीनदयाल गिरि का अन्योक्तिकल्पद्रुम)

इसमें अन्योक्ति और गोदी राखि में श्लेष है, हे वृक्ष, (साखि) उस दिन की सुधि तुझे क्यों भूल गई जिस दिन कि तुझे बागवान गोदी (कोरे) में रख कर ले आया या तुझे घूर से ले आया और राख में गोद (गाड़) दिया। गोदी में रख कर तुझे लाया या तुझे लाया और राख में गोद कर और पाल कर अपने हाथ से सींचा। अब तूं भौंरों से इज्जत पाकर घमंड से फूल उठा। दीनदयाल कहते हैं कि उस बागवान की सब बड़ाई है (पर) तूं उस दिन की सुधि भूल कर (आज) फलों के भार से झूम रहा है।

गोसाईं तुलसीदासजी के ग्रंथ भी काव्य रस से भरे हैं। संवत् १८९२ चैत्र शुक्ल षष्ठी शनिवार को महाराज काशिराज श्री उदितनारायणसिंहजी का देहान्त हुआ उस समय महाराज श्री ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंहजी बहादुर के राज्याभिषेक समय लोगों ने कहा कि स्वर्गवासी महाराज की इच्छा थी कि तुलसीदास के रामायण पर एक सुन्दर टीका बनाई जाय। इस बात के सुनते ही महाराज ने अपने चचा साहब की आज्ञा शिर पर रख बाबा रघुनाथदासजी से मानसदीपिका टीका बनवाई। यह टीका पत्थर के छापे पर छपी हुई है इसकी भूमिका बनारस संस्कृत कालेज के साहित्य शास्त्राध्यापक पण्डित शीतलाप्रसादजी के बाबू श्री ईश्वरीदत्त ने लिखी है। इस टीका में तुलसीदास के रामायण में काव्य के सब अंग दिखाए गए हैं। मैं और साहित्योपाध्याय पं० श्री सूर्यप्रसाद मिश्रजी ने भी मानसपत्रिका के १४—१८ खण्डों में रामायण के काव्यों को कुछ देखाया है। इसलिये उस विषय पर फिर से कुछ लिखना केवल समय नष्ट करना है। एक विनयपत्रिका का पद और मेरा किया हुआ उसका संस्कृतानुवाद भी देखिए।

ऐसी मूढता या मन की।
परिहरि राम भक्ति सुरसरिता
आस करत ओस कन की।
धरम समूह निरखि चातक ज्यों
तृषित जानि मति घन की॥
नहिं तहँ शीतलता न बारि पुनि
हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काँच बिलोकि स्येन जड़
छाँह आपने तन की॥
टूटत अति आतुर अहार बस
छति बिसारि आनन की।
कहलौं कहौं कुचाल कृपानिधि
जानत हौ गति जनकी॥
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख
करहु लाज निज पन की॥ ९१॥

ताहृशी मूढता मनसः ।
ामभक्तिसुरसरितं हित्वा वाञ्छति कथं कुपयसः ।
ूमपटलमवलोक्य चातको, धुद्ध्या यथाभ्रमलसः ॥

ऽभते तत्र न शीतलमम्भो, दृग्वैरिणं च वयसः ।
ध्येनः काचकुट्टिमे दृष्ट्वा, स्वं विम्बं मतिरभसः ॥

पतति तत्र परपतत्रिरूपे हानिमुपैति च वचसः ॥
मनसः किं वर्णये जडत्वं करुणानिधे कुयशसः ।
कृत्वाऽत्र मयात्रपां जनस्यापहर दुःखमति तपसः॥११॥

नवाब खानखाना का एक बरवा भी सुनिये ।
पथिक आर पनिघटवाँ कहत पियाव ।
पैयाँ परउँ नँनदिया फेरि कहाव ॥

एक राही पनिघट पर आकर कहने लगा कि मुझे (पानी) पिआओ। वहाँ पर एक प्रोषितपतिका (जिसका पति विदेश चला गया हो) भी बैठी थी वह अपनी ननदी से कहने लगी कि तेरे पाँव पर पड़ती हूँ इस राही से फिर पियाऽव कहवा। वह पियाव का 'अर्थ पिया आव' याने 'पति आता है' यह समझ कर मन को संतोष देने के लिये फिर उस बात को सुनना चाहती है। दूसरे के वाक्य से अपने चाहे हुए अर्थ को निकालना इसे संस्कृत में वक्रोक्ति कहते हैं। नैषधकाव्य में इसके अनेक उदाहरण हैं।

इसमें संशय नहीं कि संस्कृत जाननेवाले इस हिन्दी को तुच्छ समझते हैं और अपने मकदूर भर इसके दबाने का यत्न करते हैं पर सोच कर देखो तो यह उन लोगों की भूल है। जो योरप की चाल चलो तो वहाँ भी देश-भाषा ही की उन्नति से देशोन्नति हो रही है, ल्याटिन के प्रचार के लिये किसी की इच्छा नहीं। जो भाषा देशभर में फैल जाती है उसी का जय होता है। आज कल हिन्दी भाषा में जितने व्यावहारिक शब्द प्रचलित हैं उतने संस्कृत में नहीं हैं। संस्कृत से धातु और प्रत्यय से नये शब्द बन सकते हैं पर वे बनानेवाले के घर के आस पास ही झूलते रहेंगे। आगरे को अगला और मद्रास को मन्दिरराज कहिये पर इस से आगे की राह में अगेला (अगाड़ी) पड़ रही है। और संस्कृत ही के शब्दों पर अनुराग हो तो पास को पार्श्व और नियर को निकट कहो पर दोनों को छोड़ कर सन्निहित या सविध कहने से कुछ फल नहीं।

सभासदों से मेरी अपील।

(१) अँगरेज़ी के एक शब्द में भी प्रायः स्पेलिंग में गल्ती नहीं होती उसी तरह हम लोगों को चाहिए कि हिन्दी के शब्दों की शुद्धि पर ध्यान दें।

(२) हम लोगों को चाहिए कि एक सूत में बँध कर सब कोई एक तरह से शब्दों को लिखें। सिर, शिर सर. या चुंगी, चुनगी, चुनगी, चुङ्गी, या पंडित, पन्डित, पनडित, पण्डित, इस तरह से लिखने से क्या फल।

(३) हिन्दी के सब समाचार पत्र छापने वाले ऐसी सीधी हिन्दी में ख़बर छापें जिसके पढ़तेही या सुनतेही गवाँर लोग भी मतलब समझ सकें। इसी तरह से इतिहास की भी पुस्तकें सहज हिन्दी में लिखी जांय।

(४) हिन्दी की पुरानी पुस्तकें छापने के लिये और उन पर आज कल की हिन्दी में टीका होने के लिये एक सोसाइटी बनानी चाहिए।

(५) युनिवर्सिटी में एम० ए० परीक्षा तक हिन्दी की भी पुस्तकें नियत करने का बंदोबस्त कराना चाहिए।

(६) हर एक शहर में दो चार ऐसे भी पंडित रहें जो पुराने हिन्दी काव्यों को भी पढ़ावें।

(७) एफ०ए०, बी०, ए०, और एम०, ए० की परीक्षा में जो हिन्दी में अव्वल हों उनके लिये उचित पारितोषिक देने का प्रबंध होना चाहिए।

(८) इस सम्मेलन को सार्थक कीजिए अर्थात् मतभेद झगड़े को दूर कर सब भाई मन से मिलकर हिन्दी की उन्नति के लिये तन, मन और धन से कमर कस कर तैयार हो।

(९) गवाँर लोगों में भी हिन्दी लिखने पढ़ने का अधिक प्रचार करने का यत्न करना चाहिए।

(१०) बंगाली, नैपाली, मद्राजी, पंजाबी...... के समझने लायक एक भाषा बनाने की जरूरत है और वह होने के लायक हिन्दी भाषा ही है इसलिये सब सभासदों से मेरी अपील है कि जो अरबी, फारसी, अङ्गरेज़ी......शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित होगए हैं उनकी जगह नये संस्कृत शब्दों को न बनाइए।

(११) अङ्गरेजी से वालीक हानी किस्से ही का अनुवाद न कीजिए कुछ साइंस (शास्त्रों) के अनुवाद पर भी ध्यान दीजिए। जैसे अँचार, चटनी, तरकारी......के बनाने के लिये हिन्दी में 'पाकशास्त्र' बन रहे हैं वैसे ही सुई, तागा......के लिये भी कुछ लिखिए पढ़िए।

अंत में कुछ मेरे दोहों को भी सुन लीजिए,

राजा चाहत देन सुख, पर परजा मतिहीन।
पर जामतही चहत हैं, भूमि करन पग तीन॥
यहि सुराज महँ एक रस, पीयत चकरी बाघ।
छन महँ दौरत बीजुरी, सागरहू को लाँघ॥ २॥
छपि छपि के परकास भे, लुप्त रहे जे ग्रंथ।
पढ़ि पढ़ि के पंडित भए, बने नए बहु पंथ॥ ३॥
आगि पानि दोऊ मिले, जान चलावत जान।
बिना जान सब जन लिये, राजत लखहु सुजान॥ ४॥
चरनी की करनी गई, चकमक चकनाचूर।
घर घर गंधक गंध में, आगि रहति भरपूर॥ ५॥
बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर।
भारत को गारत किए, मतवाले बरजोर॥ ६॥
मत झगरन महँ मत परहु, इन महँ तनिक न सार।
भरहरि करि खर घोरवर, सब सिरजो करतार॥ ७॥
सबही को येहि जगत महँ सिरज्यो विधिना एक।
सब महँ गुन अवगुन भरे, को बड़ छोट विवेक॥८॥
काज पड़े सबही बड़ा, बिना काज सब छोट।
पाई हेतु भंजावते, रुपया मोहर लोट॥ ९॥
गुन लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का पाय।
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु है भाय॥ १०॥
देखत देखत रात दिन, गुनिजन को नहिं मान।
रेल छाँड़ि अब चहत हैं, उड़न लोग असमान॥
सो गुन ऊपर में चलउँ बात बनाइ बनाइ।
कैसे रीझी पियरवा जानि मोहिँ हरजाइ॥१२॥

अपनी राह न छाँड़िये जौं चाहहु कुसलात।
बड़ी प्रबल रेलहु गिरत और राह में जात॥१३॥
मतवालन देखन चला घर तें सब दुख खोय।
लखि इनकी विपरीत गति दिया सुधाकर रोय॥

मल से उपजा मल बसा मलही का व्यवहार।
नाम रखाया संत हम ऐसे गुरू हजार॥१५॥
का ब्राह्मन का डोम भर का जैनी क्रिस्तान।
सत्य बात पर जो रहै सोई जगत महान॥१६॥

समरथ चाहै सो करै बड़ो खरो लघु खोट।
नोहर मोहर से बड़ी लघु कागज की लोट॥१७॥
सिद्ध भये तो क्या भया किये न जग-उपकार।
जड़ कपास उनसे भला परदा-राखन हार॥१८॥

सहजहि जौं सिखयो चहहु भाइहि बहुगुन भाय।
तौ निज-भाषा में लिखहु सकल ग्रंथ हर जाय॥
बाना पहिरे बड़न का करैं नीच का काम।
ऐसे ठग को ना मिलै नर कहुँ में कहुँ ठाम॥२०॥

बिनु गुन जड़ कुछ देत हैं जैसे ताल तलाव।
भूप कूप की एक गति बिनु गुन बूँद न पाव॥२१
बातन में सब सिद्धि है बातन में सब योग।
ये मतवाले होय गए मतवाले सब लोग॥२२॥

धन दे फिर लेवैं नहीं जगत-सेठ ते आहिं।
विद्या-धन देइ लेहिं नहिं सो गुन पंडित माहिं॥२३
जहाँ तार की गति नहीं अंजन हूँ बेकाम।
तहाँ पियरवा रमि रहा कौन मिलावै राम॥२४॥

भाषा चाहै होय जो गुन गन हैं जा माँहि।
ताही सों उपकार जग सबै सराहहिं ताहि॥२५॥
अब कविता को समय नहिँ निरखहु आँख उघारि।
मिलि मिलि करि सीखो कला आपन भला विचार॥२६॥

हिन्दी-साहित्य का इतिहास।

[पंडित गणेशविहारी मिश्र, पंडित श्यामविहारी मिश्र, और पंडित शुकदेवविहारी मिश्र लिखित ।]

हिन्दी उस भाषा का नाम है जो बंगाल छोड़ समस्त उत्तरीय तथा मध्य भारत में सामान्यतया और युक्तप्रान्त, हार, बघेलखंड, बुँदेलखंड एवं छत्तीसगढ़ में शेषतया बोली जाती है। इसकी दो प्रधान शाखाएं हैं, अर्थात् पूर्वीय और पश्चिमीय, जिनको टी रीति से अवधी और ब्रजभाषा भी कह कते हैं। इनकी उत्पत्ति के विषय में पंडितों का मत द है। कुछ लोगों का मत है कि यह संस्कृत से नकली है। और शेष कहते हैं कि प्राकृत ही बिगड़ते बगड़ते इस दशा को प्राप्त हुई है। हमारी अनुमति यही दूसरा मत ग्राह्य है। अधिकतर पंडित लोग ी इसी को मानते हैं। ब्रजभाषा सौरसेनी प्राकृत े निकली है। और अवधी अर्ध मागधी से। हिन्दी क्रियाओं का वृहदंश प्राकृत ही से निकला हुआ ान पड़ता है परन्तु इसकी कुछ क्रियाएं संस्कृत से मी बनी हैं। इसके शेष शब्द विशेषतया प्राकृत एवं संस्कृत से आए हैं परन्तु कुछ बँगला, मरहठी, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन, जापानी, चीनी आदि सभी भाषाओं से आए हैं और आते जाते हैं। इसका विकास दिनों दिन होता जाता है और आशा की जाती है कि इसका सौन्दर्य्य बहुत बढ़ जायगा।

पंडितों का मत है कि हिन्दी की उत्पत्ति प्रायः १२ सौ वर्ष हुए हुई थी, परन्तु शोक है कि उस समय की हिन्दी का कोई भी लेख हम लोगों को प्राप्त नहीं है, केवल दो चार कवियों के संशयाकीर्ण नाम मात्र अंधेरे में बुझे हुए दीपकों की रेखा से दिखलाते हैं। कहा जाता है कि राजा पुंड ७१४ ई० में एक कवि और कवियों का आश्रयदाता हो गया है। कहते हैं कि पुष्य नामक एक कवि भी इसके यहां था। १०८६ ई० में बारदरवेशा और ११६४ ई० में कुमारपाल का भी होना बतलाया जाता है परन्तु इन कवियों की भी कोई कविता नहीं मिलती। सब से प्रथम गद्य तथा पद्य के लेख जो हस्तगत हैं वह दिल्ली के राजा पृथ्वीराज तथा उसके बहनोई राजा रावल समरसिंह के समय के मिलते हैं जो प्रायः (११८०) ग्यारह सौ अस्सी ई० के हैं। सब से पुराने गद्य लेखों में से एक ११७९ ई० का महाराज पृथ्वीराज का दानपत्र है जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

"श्रीश्री दलीन महाराजं धीराजनं हिन्दुस्थानं राजं धानं
" संभरी नरेस पुरब दली तपत श्री श्री माहानं राजं
" धीराजनं श्री पृथी राजे सुसाथनं आचारज रूषी
" केस धनंत्रि अप्रन तमने का का जीर्न के दुवा की
" मारामं चश्रो जोन के रोजं में राकड़ रूपोआ
५०००) तुमरे
" आ हाती गोड़े का परचा सीवाय
" आवेंगे पजानं से इनं को कोई माफ
" करंगे जोनको नेरको के अंधकारी
" होवेगे सई दुवे हुकम के हडमंत
" रांम संमत ११४५ बर्षे आसाड सुदी १३"

यह लेख उस समय की बोलचाल की हिन्दी का अच्छा उदाहरण है। महोबा के जगनिक कवि भी उसी समय हुए थे। उन्हों ने वर्तमान आल्हा काव्य की नीव डाली परंतु उनके आल्हा में किस प्रकार के शब्द और छन्द थे और उसकी भाषा कैसी थी इसका कुछ पता नहीं चलता क्योंकि जगनिक का कोई भी छन्द प्राप्य नहीं है।

महाकवि चंदबरदाई भाषा का वास्तविक प्रथम कवि है। उसका जन्म अनुमान से ११२८ ई० में हुआ था और प्रायः ६५ वर्ष की अवस्था में वह कवि मोहम्मदग़ोरी से अपने राजा के पक्ष में लड़ कर परमगति को प्राप्त हुआ। इसका बनाया हुआ पृथ्वीराजरासो दो ढाई हज़ार पृष्ठों का महा-

फिरीं। स्वामी हितहरिवंश का जन्म हमारे मत से १५४४ के लग भग हुआ था। यह महाराज राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय के संस्थापक थे और इन्होंने संस्कृत एवं भाषा की उत्तमोत्तम कविता की है, इनका चौरासी नामक ग्रन्थ हमारे पास प्रेमलता नाम से है। इनकी भाषा कविता में संस्कृत के विकट पद अथवा श्रुतिकटु शब्द भूल कर भी नहीं आने पाए हैं। उदाहरण—

ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट मनि स्यामा आजु बनी। सरल तिलक ताटंक गंड पर नासा अलज मनी॥ यों राजत कबरी गूँथित कच कनक कंज बदनी। चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध बिधु मानहु ग्रसत फनी॥

आजु बन नीको रास बनायो। पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट मोहन बेनु बजायो॥ कल कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो॥

इनके पद सूरदासजी के उत्तम पदों की टक्कर के होते थे। दादूजी का जन्म १५४४ में हुआ था और १६०४ में ये स्वर्गवासी हुए। यह महाशय बड़े महात्मा थे परन्तु काव्य दृष्टि से इनकी कविता वैसी प्रशंसनीय नहीं है। इनके शिष्यों में सुन्दरदास रज्जब, जंगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, तथा खेमदास मुख्य थे। इन सबमें सुन्दरदास प्रशंसनीय थे।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने १५३३ में जन्म ग्रहण किया था और १६२४ में उनका स्वर्गवास हुआ। यह महाकवि हिन्दी के अगुवा हैं और इनकी कविता समुद्र के समान अथाह है। हमने इन्हें हिन्दी के नवरत्नों में प्रथम स्थान दिया है। केवल हिन्दी ही क्यों वरन प्रायः संसार भर की भाषाओं में इस महाकवि के जोड़ के बहुत कवि न मिलेंगे। इस छोटे से निबंध में गोस्वामीजी के गुणों का कुछ भी समुचित वर्णन असम्भव है।

यह एक ही कविरत्न चार भिन्न भिन्न कवियों के बराबर है। दोहा चौपाई में यह कथा प्रासंगिक कवियों का नेता है, कवितावली तथा हनुमान ... गोस्वामीजी ने मतिराम आदि के टक्कर के कवित्त सवैया बनाये हैं, विनयपत्रिका अवधी ब्रजभाषा और संस्कृतमिश्रित भाषा परमोत्तम पद कहे हैं, और कृष्णगीतावली ब्रजभाषा के पदरचयिता सूरदास आदि समानता सी कर ली है। इतनी भिन्न भिन्न प्रकार कविता में सफलतापूर्वक उत्तम ग्रन्थ बनाने में भी अन्य कवि समर्थ नहीं हुआ है। इनके बन २५ या ३० ग्रन्थ कहे जाते हैं जिनमें से १९ या अवश्य इन्हीं के बनाये हैं। भक्ति का वर्णन गोस्वा जी के समान किसी भाषा के किसी कवि ने ना किया है। शील स्वभाव भी इन्होंने अच्छे निबाहे और इनके व्याख्यानों की छटा अयोध्याकाण्ड में दे पड़ती है। कहीं भी पढ़ने से इनका कोई ग्र शिथिल नहीं देख पड़ता। इन पर १०० पृ का एक लेख "हिन्दी नवरत्न में" हम ने लिखा है इनके प्रेमियों को उसे पढ़ना चाहिए। यहाँ अधि लिखने का अवकाश नहीं है। नाभादास ने इन भक्तमाल का सुमेर माना था। नन्ददासजी इन भाई थे। उनकी भी कविता मनोहर है।

नाभादास ने भक्तमाल नामक ग्रन्थ में बहुत से भक्तों का वर्णन छप्पय छन्दों में किया है। महाकवि केशवदास के जन्म और मरणकाल अनुमान १५५२ और १६१२ हैं। रामचन्द्रिका, कवि प्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, वीरसिंह देवचरित्र, रामालङ्कृत मञ्जरी (पिंगल) नामक इनके ६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। रीति के प्रथम आचार्य यही हैं और इनकी कविता परम सराहनीय है। हमने इनको हिन्दी नवरत्नों में स्थान दिया है। इनकी कविता कठिन हो गई है यहाँ तक कि "कवि का दीन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई" वाली कहावत आज तक प्रसिद्ध है।। इनकी भाषा विशेषतया संस्कृत-मिश्रित है यथा—

आसावरी माणिक कुम्भ शोभै अशोक लग्न वन देवतासी। पलाशमाला कुसुमालि मध्ये वसन्त लक्ष्मी शुभ लक्षणासी। आरक्त पुत्रा शुभचित्र

पुत्री मनो बिराजै अतिचारु वेपा। सम्पूर्ण सिन्दूर आभास कैधौं गणेश भालस्थल चन्द्र रेपा।

तुलसीदास और केशवदास हिन्दी की कविता करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे—यथा—

भाषा भनित मोरि मति थोरी।
हँसिबे जोग हँसे नहिँ खोरी॥ (तुलसीदास)

भाषा बोलि जानहीं जिन के कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास॥

महाराजा बीरबल ने भी केशवदास का बड़ा मान किया था। इनके भाई बलभद्र मिश्र ने केवल एक ग्रन्थ नखशिख का टकसाली बनाया है। इस शताब्दी में तानसेन, प्रवीणराय पातुरि, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, बीरबल (ब्रह्म), मुबारक, रसखानि, अकबर बादशाह, नरहरि, रहीम, गंग, होलराय आदि भी बड़े प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। होलराय के यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी गये थे तब इन्होंने यह आधा दोहा पढ़ा।

लोटा तुलसीदास को लाख टका के। मोल।

इस पर गोस्वामी जी ने कहा

मोल तोल कुछ है नहीं लेहु राय कवि होल।

इस लोटे को होलराय ने मूर्ति की भाँति एक चबूतरे पर स्थापित किया और होलपुर में यह आज तक पूजा जाता है।

१७ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में भी बड़े बड़े विशद कवि हो गए हैं। यथा सेनापति, बिहारी भूषण, मतिराम, लाल, देव इत्यादि। सेनापति ने १६५० ई० में साहित्यरत्नाकर नामक एक परमोत्तम ग्रन्थ बनाया है जिसमें षड्ऋतु, रामायण, श्लेष, शृंगार और भक्ति का बड़ा ही सुघर वर्णन है। सेनापति महाशय धर्म सुधारक थे अतः इनकी कविता में गम्भीर विषयों का अधिक समारोह है परन्तु यह महाशय, सुन्दर, कोमल और हास्यपूर्ण वर्णन भी अच्छा कर सके हैं।

बिहारी ने १६६३ ई० में सतसई समाप्त की। इस ग्रन्थ में टपैची खूब आई है। कविता के प्रायः सब गुण इस ग्रन्थरत्न में वर्तमान हैं। इनकी बारीक़बीनी परम प्रशंसनीय है। उर्दू शायरी से मिलती जुलती बिहारी ही की कविता है और इस कवि ने उर्दू शायरी के तलाज़िमों की भी हद कर दी है। इन्होंने अपने दोहों में बहुत सा मतलब कहा है यहाँ तक कि एक एक दोहे में डेढ़ डेढ़ घंटे की बात चीत भर दी है, यथा—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सोहँ करै नैनन हँसै देन कहै नटि जाय॥
ज्यों ज्यों पट झटकति बकति हठति नचावत नैन।
त्यों त्यों परम उदारऊ फगुवा देत बनै न॥

कविगण उपमायें देते हैं परन्तु बिहारी ने उपमाओं के फल भी कहे हैं।

पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनोई रहै आनन ओप उजास॥
अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दर्पन से सब गात।
दोहरे तेहरे चौहरे भूषण जाने जात॥

बिहारीलालजी का हिन्दी नवरत्नों में उच्च आसन है। भूषण महाराज ने १६७३ में शिवराज भूषण बनाया और इस समय के पीछे अपने अन्य ग्रन्थ भी रचे। इनके ग्रन्थों में प्राबल्य, मान, और जातीयता की छटा देख पड़ती है। इनके सभी प्राप्य ग्रन्थों का सम्पादन हमने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ग्रन्थमाला में किया है। यहाँ विशेष नहीं लिखते। भूषणजी बड़े ही उत्कट कवि थे और हिन्दी नवरत्नों में यह भी सम्मिलित हैं।

भूषण के अनुज मतिराम ने १६८० के लगभग रसराज बनाया। इसकी भाषा बहुत ही उत्तम होती थी यहाँ तक कि सिवा देवजी के कोई भी कवि मतिराम के बराबर इस गुण में नहीं पहुँचता। उदाहरण—

गुच्छन के अवतंस लसै सिख पच्छन अच्छ किरीट बनायो। पल्लव लाल समेत धरी कर पल्लव सो मतिराम सोहायो॥ गुंजन के उर मंजुल माल

ता रसना सों चरित गुन्यो करैं ॥ आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं। नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं ॥

इस शताब्दी में प्राणनाथ, सुन्दरदास, कुलपति, मइरी, महाराजा जसवन्तसिंह, महाराजा अजीत सिंह, श्रीपति, वैताल, रघुनाथ, महाराणा राजसिंह, घासीराम, महाराजा छत्रसाल, कालिदास, कवीन्द्र, नरोत्तमदास, सहजराम आदि भी बड़े बड़े कवि हो गये हैं। घाघ ने भी ग्रामीण भाषा में मोटिया नीति अच्छी कही है। यथा—

चमा पहिरे हर ज्यातैं औ पोइ धरे अँठिलायँ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा पीसति पान चबायँ ॥
मुये चामते चाम कटावैं सँकरी भुँइ माँ स्वावैं।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा उढ़रि जाय तौ रुवावैं ॥

वेनी कवि इसी समय में एक प्रसिद्ध भँड़ौवाकार होगया है। उदाहरण—

चींटी की चलावै को मसा के मुख आपु जायँ साँस की पवन लागे कोसन भगत हैं। पैनक लगाए मह मह के निहारे परैं अनु परमानु की समानता खगत हैं॥ वेनी कवि कहै हाल कहाँ लौं बखान करौं मेरी जान ब्रह्म को बिचारिबो सुगत है। ऐसे आप दीने दयाराम मनमोद करि जाके आगे सरसौं सुमेर सो लगत है। १।

चूकते सरस धोखे लूकसी लगावैं हिए हूक उपजावैं ए अपूरब अराम के। रस को न लेस रेसा धोपी है हमेस तजि दीने सब देस बिललाने परे घाम के॥ बुरे अदसूरत बिलाने बदवोयदार वेनी कवि बकला बनाए मनौ चाम के। परम निकाम के ए आव बिन दाम के हैं निपट हराम के ए आम दयाराम के॥ २॥

भँड़ौवाकारों का यह कवि अगुआ है।

१८ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में कई उत्तम कवि हो गये हैं परन्तु बहुत निकलता कोई भी नहीं था। शम्भुनाथ मिश्र, घनानन्द, दूलह, देवकीनन्दन, बैरीसाल, महाराजा नागरीदास, गंजन, दास, गुरदत्तसिंह, रसलीन, सुखदेव, ठाकुर, पद्माकर, प्रताप, बोधा, प्रियादास, सूदन, सोमनाथ, हरिकेश, किशोर, गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, तोष, ग्वाल, आदि बड़े बड़े प्रवीण कवि इस शताब्दी में वर्तमान थे, परन्तु इनमें से किसी भी कवि को नवरत्न में परिगणित होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। सूरति मिश्र ने इसी शताब्दी में गद्य काव्य में वैतालपचीसी नामक एक ग्रन्थ बनाया। यही कवि गद्य का प्रथम वास्तविक लेखक हुआ है। गंजन कृत कमुरुद्दी खाँ विलास, दास कृत काव्यनिर्णय, तथा शृंगार निर्णय, गुरदत्तसतसई, सुखदेव के पिंगल, बोधा ठाकुर एवं घनानन्द की प्रेम कविता, पद्माकर की पदमैत्री, प्रताप की मतिराम से टक्कर लेनेवाली भाषा, सूदन कृत वीरकाव्य, नागरीदास की भक्ति, और हरिकेश की उद्दंडता इस काल को भी परम पूज्य बनाती है। उदाहरण—

डह डहे डंकन के सबद निसंक होत बहबही सत्रुन की सेना आनि सरकी। हाथिन के झुंड मारू राग के उमंड इनै चम्पति के नन्द चढ़यो उमड़ि समर की॥ कहै हरिकेस काली ताली दै नचति ज्यों ज्यों लाली परसति छत्रसाल मुखबर की। फरकि फरकि उठैं बाहुअस्त्र बाहिबे को करकि करकि उठैं बड़ी बखतर की ॥

१९ वीं शताब्दी।

इस शताब्दी में सर्दार, शेखर, पजनेश, गनेश परसाद, लल्लूलाल, सदल मिश्र, वेनी प्रवीण, रामचन्द्र, सेवक, लेखराज, शिवसिंह, सेंगर, द्विजदेव, राजा शिवप्रसाद, प्रतापनारायण मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, आदि बड़े कवि और लेखक होगये हैं। शेखर का हम्मीरहठ, पजनेश के उद्दंड छन्द, गनेश प्रसाद की लावनियाँ, रामचन्द्र की चमत्कारी कविता परम प्रशंसनीय हैं। वेनीप्रवीण की कविता बहुत ही विशद है। शिवसिंहजी ने कवियों

के चरित्रादिक लिखने में प्रशंसनीय श्रम किया है। लल्लूलाल ने व्रजभाषा को खड़ी बोली से मिलाकर प्रेमसागर गद्यात्मक काव्य लिखा है। सदलमिश्र ने उन्हीं के साथ साथ खड़ी बोली में गद्य लिखा है।

राजा शिवप्रसाद ने उर्दू मिश्रित हिन्दी लिखी और पाठशालाओं में हिन्दी का विशेष आदर करवाया। राजा लक्ष्मणसिंह ने पहिले पहिल उत्तम गद्यात्मक ग्रन्थ लिखा। परन्तु इस शताब्दी के शृंगारस्वरूप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने १८५० में जन्म ग्रहण कर १८८५ पर्यन्त पीयूष वर्षिणी कविता की है। वर्तमान साधु गद्य के वास्तविक उन्नायक यही महाशय हुए हैं। नाटकों को तो मानो इन्होंने जन्म ही दिया। हिन्दी का उपकार जितना इनसे हुआ किसी दूसरे से नहीं हो सका। देशहितैषिता ने तो मानो पृथ्वी पर इन्हीं के स्वरूप में अवतार लिया था। इनकी कविता में हास्य और प्रेम बहुत अच्छे आये हैं। सत्रहवीं शताब्दी के पीछे केवल यही एक कवि हिन्दी नवरत्नों में गिना गया है।

इसी शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज संस्थापन और वेदों के उद्धार में प्रशंसनीय श्रम और आत्मसमर्पण किया है। हिन्दी को भी इनकी और इनके अनुयायियों की कृपा से विशेष सहायता मिली और आयन्दा भी मिलने की आशा है।

वर्तमान काल में गद्य उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है परन्तु पद्य में परमोत्तम कवि एक भी नहीं देख पड़ता। २०वीं शताब्दी के विषय में कुछ समालोचना करना हम उचित नहीं समझते। हिन्दी में महाराजा कुम्भकरण, महाराजा छत्रसाल और राय बुद्ध कवियों के बड़े आश्रयदाता हो गये हैं। भाषा कविता में प्रायः युद्ध, भक्ति, नायिकाभेद, प्रेम, रीति, अलंकार, नखशिख, षट्ऋतु, रामकथा, कृष्णकथा, स्फुटकथा, आदि विषयों पर कविता हुई। कविता की भाषा प्रायः व्रजभाषा, प्राकृत मिश्रित भाषा, बैसवारी, बुंदेलखंडी, राजस्थानी, खड़ी बोली, आदि हैं। खड़ी बोली में सबसे पहिले भूषण ने १७ वीं शताब्दी में कुछ कविता की। इसी शताब्दी में रघुनाथ कवि ने भी खड़ी बोली में कुछ छन्द कहे हैं, और सीतल कवि ने केवल खड़ी बोली में "गुलज़ार चमन" नामक एक अद्वितीय ग्रन्थ रचा है। वर्तमान समय में भी बहुत से कवि खड़ी बोली में उत्तम कविता करते हैं। गद्य में सबसे प्रथम लेख दान पत्रादि मिलते हैं। गद्य ग्रंथ सबसे प्रथम १६ वीं शताब्दी में सूरदास के समकालीन गो-स्वामी गोकुलनाथजी ने बनाये जो विट्ठलनाथजी के पुत्र और महर्षि वल्लभाचार्य्य के पौत्र थे। इनके ग्रंथों के नाम बावन और दो सौ चौरासी वैष्णवों की वार्ता है। ये बड़े ग्रंथ हैं और इनकी भाषा व्रजभाषा है परंतु यह काव्य ग्रंथ नहीं है और साधारण बोल चाल में इनके द्वारा वैष्णवों का वर्णन किया गया है। गद्य का वास्तविक प्रथम कवि सूरत मिश्र १८ वीं शताब्दी में हुआ है।

समाचार-पत्रों का प्रचार विशेषतया भारतेन्दु के समय से हुआ, और तबसे उनकी संख्या और भाषा में उत्तरोत्तर उन्नति होती आती है। आज भाषा में कई अच्छे अच्छे मासिक पत्र, अर्द्धमासिक पत्र, और साप्ताहिक एवं अर्द्ध साप्ताहिक पत्र निकल रहे हैं और दैनिकपत्र भी एकाध हैं। यदि इस भाँति समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ उन्नति करती गईं तो आशा है कि थोड़े समय में भाषा उन्नत अवस्था में हो जायगी। सभाएँ भी कई अच्छा काम कर रही हैं।

इतिहास की ओर भी कुछ लोगों की रुचि है और कुछ इतिहास-ग्रंथ लिखे भी गये हैं। इस संक्षेप पृथ्वी भर के इतिहास प्रकाशित करते हैं। इन सबका साधारण रीति से भी वर्णन करें तो लेख का बहुत विस्तार हो जाता अतः दिग्दर्शन मात्र से संतोष किया गया। निदान हिन्दी भाषा साहित्य में खूब परिपूर्ण है और गद्य में भी उन्नति होती जाती है। अब सर्वोपयोगी काव्य और [illegible] के ग्रंथों की आवश्यकता है।

व्रजभाषा ।

[पंडित राधाचरण गोस्वामि लिखित]

दोहा ।

व्रज समुद्र मथुरा कमल, वृन्दावन मकरन्द।
व्रज वनिता सब पुष्प हैं, मधुकर गोकुल चंद ॥
जिन तृण सम किय जानि जिय, कठिनज गत जंजाल।
जयति सदा सो ग्रन्थ कवि प्रेम जोगिनी बाल ॥१॥

व्रज शब्द का अर्थ समूह है। "समूहो निवह व्यूह सन्दोह विसर व्रजाः" "गोष्ठाध्व निवहाः व्रजाः" इत्यमरः, "व्रजो गोष्ठाध्व वृन्देषु" इति मेदिनी, "व्रजः व्रजवन मथुरयोश्चतुर्ष्यापूर्वचिर्देशः इति शब्दकल्पद्रुमः।

जिस भूमि में गो समूह रहता है, वह व्रज है। सदैव से व्रजभूमि में गौओं का निवास रहा है। किन्तु श्रीकृष्ण के व्रजभूमि में अवतार लेने से व्रज की बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

शास्त्रोक्त व्रज का माहात्म्य, ग्रैार शास्त्रोक्त व्रज की सीमा छोड़ कर वर्त्तमान प्रणाली से इस समय काम लूंगा। व्रजमंडल की जो भाषा है उसका नाम व्रजभाषा है।

इस समय व्रजभाषा की विलासभूमि अलीगढ़ ज़िले के सिकन्दराराऊ की तहसील, एटा का जलेसर पर्गना, आगरे का फ़ीरोज़ाबाद फ़तहाबाद किरावली तहसीलें, भरतपुर के बयाना कुम्हेर डीग नगर तहसीलें गुड़गांवे की परवल, बुलन्दशहर की ख़ैर, ख़ुर्जा, तहसीलों के मध्यवर्त्ती देश। शुद्ध व्रजभाषा इतने ही प्रान्त में है, बाक़ी प्रान्त में कान्यकुब्जी, शूरसेनी, बुन्देलखंडी, ढुंढारी, अन्तर्वेदी भाषाओं से मिश्र व्रजभाषा बोली जाती है।

इस बात को सब लोग मान लेंगे कि संस्कृत, ग्रैार प्राकृत से जो भाषा का रूपान्तर हुआ है, उसमें व्रजभाषा की ही प्रधानता है। अर्थात् भाषाओं, में व्रजभाषा ही प्रथमावतरण है। चन्दकवि से लेकर अब तक जितने कवि हुए हैं, उन्होंने व्रजभाषा में ही कविता की है। न केवल मध्य देश के कवि वरञ्च मिथिला के विद्यापति, बंगदेश के चंडीदास, गोविन्ददास आदि ने भी इसी भाषा में कविता की है। ग्रैार पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में भी इस भाषा के अनेक कवि हुए हैं जिनके ग्रन्थ ही इसके प्रमाण हैं। कवियों की यह साधारण भाषा है।

व्रजभाषा की मधुरता के लिये इतना कहना यथेष्ट होगा कि "वाचि श्रीमाथुरीणाम्" अर्थात् मथुरा प्रान्त की स्त्रियों की बोली में काम का निवासस्थान है। राजा शिवप्रसादजी ने अपने नये गुटका में एक ईरानी कवि की कथा लिखी है जो व्रज में कविता को पराजित करने आये थे, यहाँ एक लड़की के मुख से स्वाभाविक उक्ति में "सीकरी गलीन में कीकरा लगतु हैं" वचन सुन कर घर को लौट गये।

आगे के राजा लोग भी ग्रैार ग्रैार ऐश्वर्यों के साथ कविता की भी सम्पत्ति रखते थे। इसी से व्रजभाषा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों ने बड़े बड़े राजा महाराजों ग्रैार अकबर, शाहजहाँ आदि बादशाहों के दर्बारों में स्थान पाया था। इनके संग से राजा लोग भी कविता करते थे। स्वयम् अकबर के अनेक कवित्त मिलते हैं। पृथ्वीसिंह अकबर के प्रसिद्ध कवि ग्रैार सर्दार थे। समय समय पर इन कवियों ने शतशः ग्रन्थों के द्वारा इस भाषा की पुष्टि की है ग्रैार कितने ही कार्य्य किये हैं। नरहरि का "जो कोऊ तृण गहै" इस छप्पै के द्वारा अकबर से गोवध बन्द कराना, भूषण कवि का शिवराज को उत्तेजित करना, प्रवीणराय का "झूंठी पातर है भखें के कागा कै स्वान" के द्वारा आत्मरक्षा करना प्रसिद्ध है।

एक बात जो व्रजभाषा के भाग्य में है ग्रैार जो भाषाओं को प्राप्त नहीं हुई वह यह है कि सूरदासजी नन्ददासजी, कृष्णदासजी आदि अष्ट सखा ग्रैार भी हरिरायजी, श्री स्वामी हरिदासजी आदि महात्माओं ने अपनी भक्ति ग्रैार भावना के

द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाओं को प्रत्यक्ष किया था, अपने अनुभव और प्रेम से जो कुछ उस समय में देखा था, वह सब पद, और धमारों के द्वारा वर्णन किया वह उद्गारजीवों के उद्धार का कारण हुआ है। श्रीनागरीदासजी के पद प्रसंग में अनेक आख्यान मिलेंगे। तानसेन, बैजू बावरे, गोपाल, स्वामी हरिदासजी आदि गवैया लोगों ने अपनी गानकला भी व्रजभाषा को अर्पित कर दी है। उनके ध्रुवपद आदि इस टूटे समय में भी भारत का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। मैं एक कवित्त नीचे लिखता हूँ जिससे जाना जायगा कि भाषा के कवियों को कहाँ तक आदर मिला है। इस कवित्त का विषय, औपन्यासिक नहीं ऐतिहासिक है।

"मान दस लाख हुए होहा हरिनाथ की पै लाख हरिनाथ दै कलङ्क कवि तै है को। बीरबल है छकोटि केदो के कवित्त पर दिया हाथी वामन दै भूषण ज्यों पै है को। छप्पै पै छतीस लाख गङ्ग खानखाना हुये तातें दूने दाम हुये ईडर में पे है को। श्रीगमीरसिंह राजा छन्द खूबचंद के पै विदा में दगा दई हुई न फिर दै है को"

बिहारीलाल की सतसई के दोहों पर एक एक अशर्फ़ी देना तो पुरानी बात है, परन्तु अभी महाराज योधपुर ने कविराज मुरारिदानजी को "यशवन्तयशोभूषण" पर एक लक्ष रुपये का सिरोपाव दिया है। श्री नंददासजी,[१] राघवदासजी,[२] आनन्दघनजी,[३] इसी भाषा की कविता करते भगवच्चरणारविन्दों में लीन हो गये।

संस्कृत-साहित्य के जितने गुण हैं, व्रजभाषा में सब पाये जाते हैं। अलङ्कार, नायिका भेद, रसों का समावेश सब इस भाषा में है। अलङ्कार-साहित्य के सब ग्रन्थ इस भाषा में लिखे गए हैं। सब रसों का वर्णन भी है।

(१) नंददास ठाढ़ो तहाँ निपट निकट।

(२) चन्द्र जाडू जहाँ हरि खेलत गोपिन संग।

(३) बहुत दिनान के अवधि आस पास खरे।

व्रजभाषा कविता की परिमार्जित भाषा है। इसके गुण कहाँ तक लिखे जा सकते हैं। [illegible] की सभा में सूरदासजी के "ऊधुवा बार बार दे[illegible] मारी" इस पद पर बड़ा रमणीय विचार हो चुका है।

श्रीतुलसीदासजी की रामायण में कहीं कहीं बुंदेलखंडी और बैसवाड़ी भाषा की झलक है, प[रन्तु] क्या यह व्रजभाषा से अलग है। रामायण के दोहा छन्द, चौपाई सब व्रजभाषा के सूत्र में ग्रथित हैं। इसीसे कहा है 'सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशव दास, अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ कर[त] प्रकास। व्रजभाषा की उत्पत्ति के विषय में प्राची[न] पद्य है।

जनम ग्वालियर जानिये खंड बुंदेले बाल।
तरुनाई पाई सुभग मथुरा बसि सुसराल॥

हिन्दी भाषा के मुखोज्ज्वलकर्त्ता [illegible] बाबू हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दु व्रजभाषा के प्रधा[न] कवि थे, उनके पिता गिरिधरदासजी भी इस भा[षा] के चालीस ग्रन्थों के कर्त्ता थे। भारतेन्दु के [illegible] और उपासकों में सब इसी भाषा के काव्य के [illegible] पाते हैं, परन्तु दैवदुर्विपाक से दो चार महा[illegible] इस सर्वाङ्ग सुन्दर भाषा की कविता से घृणा कर[ते] हैं और "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" चलाना चाह[ते] हैं, परन्तु व्रजभाषा की रक्षा व्रजराज कुमार करें[गे] क्योंकि—

व्रजवासी वल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान।
इनको नेंक न बीसरों नंद बबा की आन॥

"व्रज की तुहि लाज मुकुटवारे"

व्रजभाषा गद्य में बहुत ग्रन्थ नहीं हैं, प[रन्तु] हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता आदि श्री [illegible] कुल के उत्सवावली आदि श्रीगोड़ेश्वर सम्प्र[दाय] के, चौरासीजी की टीका श्री राधावल्लभी [illegible] प्रसिद्ध हैं। प्रेमसागर-प्रणेता लल्लूलालजी [की] राजनीति व्रजभाषा में है। बैताल पच्चीसी, सिंहासनबत्तीसी, शुकबहत्तरी के मूल ग्रन्थ [illegible] भाषा में हैं। श्रीमद्भागवत की कथा की [illegible]

सामग्री ब्रजभाषा में है। कथावालों की बोलचाल ही और है। उनकी आनुप्रासिक भाषा की छटा जिन्हें देखनी हो, किसी ब्रजवासी पंडित से कथा सुने। हम इस बात को अभिमान से कह सकते हैं कि श्रीमागवत की कथा ब्रजवासियों के बाँट है। प्रसिद्ध वक्ता श्रीगोस्वामी सुन्दरलालजी के श्री भागवत के कथा-प्रसंगों में से कुछ ग्रन्थ बम्बई में छपे हैं उनसे ब्रजभाषा गद्य का रसिकजनों को आस्वाद मिल सकता है। दाक्षिणात्यों की हरि कथा भी बहुधा ब्रजभाषा में होती है। इसका अभिनय गद्य पद्य ब्रजभाषा में ही है, विशेष क्या लिखूँ।

चाहै रस चाखा तो पठन कर भाखा
जो न जाने ब्रजभाखा ताहि शाखामृग जानिये।

——:o:——

दादूदयाल और सुंदरदास ।

[राय साहब पंडित चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी लिखित ।]

नागरी प्रचारिणी सभा ने अति कृपा से मुझ को आज्ञा दी है कि एक लेख दादूदयाल और सुंदरदास के विषय में मैं हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में पढ़कर सुनाऊँ । तदनुसार मैं आज आप के सम्मुख यह वृत्तान्त वर्णन करने को उपस्थित हुआ हूँ ।

२—आप महानुभावों के निमित्त इस विषय के तीन विभाग मैंने सोचे हैं अर्थात्—

१-दादू पंथी संप्रदाय का कुछ प्रचलित व्यवहार ।
२-स्वामी दादूदयाल का संक्षिप्त जीवनचरित्र ।
३-इस संप्रदाय के ग्रंथों से हिंदी-साहित्य की वृद्धि ।

कविवर पंडित सुंदरदासजी स्वामी दादूदयाल के निज शिष्य थे । सो इस संप्रदाय से बाहर नहीं हुए । उनका हाल भी संक्षेप से इस वर्णन में आ जायगा ।

३—आप विद्वज्जनों से छिपा नहीं है कि भारतवर्ष में धर्मसंबंधी अनेक आचार्य वा गुरु हो गए हैं जिनकी संप्रदायें अलग अलग चली आती हैं, ऐसी सम्प्रदायों म से एक सम्प्रदाय दादू पंथी साधुओं की भी है । इस में दो प्रकार के साधु पाए जाते हैं, अर्थात्—

एक भेषधारी विरक्त जो भगवे वस्त्र धारण करते हैं और पठन-पाठन, कथा, कीर्तन, भजन उपासनादि धर्मसंबंधी कामों के सिवा और व्यवहार नहीं करते, द्रव्य का सञ्चय करना इनका वर्जित है ।

दूसरे नागे स्थानधारी जो सुफेद सादे वस्त्र पहनते हैं, लेन देन खेती फौज की नौकरी वैद्यकादि धन उपार्जन के उद्योग करते हैं । सञ्चित धन अपने संप्रदाय के उपयोगों में लगाते हैं ।

ये दोनों प्रकार के साधु ब्रह्मचारी ही रहते हैं, विवाह नहीं करते । गृहस्थों के बालकों को चेला कर के अपना पंथ और स्थान चलाये जाते हैं । स्त्री संग इनमें अति वर्जित है ।

४—इस संप्रदाय के बावन अखाड़े प्रसि हैं, प्रत्येक अखाड़े का एक एक महंत है । उ स्थान अधिकतर जयपुर राज्य में हैं, कुछ पल मारवाड़, मेवाड़, बीकानेर आदि राज्यों और पंज गुजरात आदि देशों में भी हैं । नागाओं की फ जयपुर राज्य में विख्यात है ।

५—जयपुर और अजमेर के बीच राजपूत मालवा रेलवे पर नराणा नाम का एक स्टेशन तिस नराणे में दादूपंथियों की मुख्य गद्दी अपने अंत समय में स्वामी दादूदयाल ने स्थान में निवास किया था । उनके रहने बैठने निशान अभी खड़े हैं । इस संप्रदाय के सर्व महंतजी वहाँ विशेषकाल रहते हैं । दादूद्वा नामक वहाँ एक दर्शनीय मंदिर है ।

६—फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की चौथ द्वादशी तक दादूपंथियों का वार्षिक सम्मिल नराणे में होता है । वहाँ की भूमि को दादू पंथी ब पुनीत और पावन मानते हैं । मेले पर साधु अ वहाँ की परिक्रमा करते हैं । अन्य अखाड़ों के मह अपने स्वामी नराणे के महंतजी को भेट देते तैसेही गृहस्थ भक्त जन अपनी इच्छानुसार भें चढ़ाते हैं । मुख्य सेवकों को स्वामीजी के भण्डा से एक नया वस्त्र ओढ़ा दिया जाता है । इस अवस पर तरह तरह के महोत्सव, भजन, जागरण, कथा व्याख्यान, ज्ञानचर्चा और परस्पर सत्संग के ला होते हैं । साधु जन अपने सञ्चित धन से आप साधुओं को बड़े बड़े भोज देते हैं । एक पक्की रसो जयपुर राज्य से भी दी जाती है जिसमें हज़ार साधु पंक्ति बांध कर जीमते हैं ।

७—दादू द्वारे से दर्शकों को बतासों का प्रसाद मिलता है । अखाड़ों के महंत और मंडलियों के पंडित

भी अपने सती सेवकों को चलते समय बताशे हैं। सो यात्री दूर दूर देशदेशांतरों को ले जाते हैं।

८—फाल्गुन शुदि ४ को स्वामी दादूदयाल पहली नराये पधारे थे, इसलिये चौथ के दिन वहाँ ला (सम्मेलन) होता है। फाल्गुन अष्टमी देन दयालजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है, तिथि को बड़े उत्साह से भजन जागरणादि होते एकादशी का व्रत करके द्वादशी से मेला चल है। कोई कोई साधु जन दस पाँच दिवस पीछे ठहरते हैं।

९—नराये से तीन चार कोस पर भराणे की ाड़ी है, वहाँ स्वामी दादूदयाल ने कुछ काल ास किया था और वहाँ उनके शरीर की अन्त्येष्टि या हुई थी। वहाँ भी अनेक साधु यात्रा को जाते हैं। साधुओं के फूल भी किसी किसी अखाड़े के वहाँ धराये जाते हैं।

१०—विरक्त साधु एक स्थान पर बहुत कम रते हैं, आठ महीने जाड़े और गर्मी के विचरने में तीत करते हैं। चातुर्मास किसी एक स्थान में टते हैं। विचरते हुए साधु जहाँ जहाँ ठहरते हैं वहाँ गृहस्थों में धर्म उपदेश अर्थात् परमेश्वर की भक्ति, गुंण उपासना, ब्रह्म ज्ञान का प्रचार करते हैं।

११—पंडित जनों के साथ अनेक साधुओं की डलियाँ रहा करती हैं। उनमें नवजवान साधु डितजी से पठन पाठन में शिक्षा पाते हैं और शेष ाधु जन भजन कीर्तन में रहते हैं। बहुधा मंडलियाँ चरती रहती हैं, जहाँ जहाँ उनके सती सेवक हैं वहाँ हाँ उनकी प्रेरणा से साधु जन वास करते हैं। वहां गृहस्थ अपनी श्रद्धा से भोजनों के निमंत्रण देते हते हैं, जब तक ऐसे निमंत्रण आया करते हैं तब क मंडली वहाँ वास करती है, पीछे दूसरे ठिकाने ा चली जाती है।

१२—जहाँ जहाँ मंडलियाँ वास करती हैं वहाँ ाँ उनके मुख्य पंडित नित्य प्रातःकाल कथा कहते हैं, ह कथा प्राचीन रीति से व्याख्यान के तौर पर होती है। मंडली के संपूर्ण साधु और उस ठिकाने के गृहस्थ स्त्री-पुरुष एकत्र होते हैं, क़रीब एक घंटे के पंडितजी व्याख्यान देते हैं, पीछे निर्गुण सुरीले भजन गाए जाते हैं। इस काम में मंडली के साधु निपुण होते हैं। अंत में श्रोता जनों के चढ़ाये बताशे, मिठाई सर्वजनों में बाँट दिये जाते हैं। सायंकाल निर्गुण आरती गाई जाती है और धर्मचर्चा होती है।

१३—धनी ठाकुरों तथा अन्य गृहस्थों में साधुओं के रखने की बड़ी चाह रहती है। ऐसे श्रद्धालु जन फाल्गुन मास के नराये के मेले में मंडलियों के पंडितों को चतुर्मास के लिये निमंत्रण भेज देते हैं, बहुधा ऐसे निमंत्रण स्थानधारी साधुओं की मारफ़त आते हैं। जिस मंडली को जहाँ का रहना स्वीकार होता है। सो वहाँ का निमंत्रण ले लेती है। आषाढ़ी पूर्णिमा तक वहाँ पहुँच जाती है और दशहरे तक वहाँ वास करती है।

१४—दादूपंथी आपस में आते जाते समय "सत्य राम" शब्द का उच्चारण करके अभिवादन करते हैं। किसी माननीय साधु के पास जब कोई जाता है तब वह तीन बार साष्टांग दंडवत करता हुआ "सत्यराम" कहता है, तिसके उत्तर में वह माननीय साधु "सत्य-राम" कह कर आशीर्वाद देता है। इसी प्रकार से मंडली के संपूर्ण साधु अपनी अपनी बारी से नित्य प्रातःसायं अपने मुख्य साधु के समीप जाकर प्रणाम करते हैं।

१५—स्वामी दादूदयाल की वाणी ही इस संप्रदाय का मुख्य ग्रंथ है। संपूर्ण साधु जन उसका नित्य पाठ करते हैं, बहुतों को संपूर्ण वाणी कंठाग्र रहती है। उस पुस्तक को वे बड़े मान से सुशोभित वस्त्रों में ऊँची गद्दी (पालकीजी) पर रखते हैं।

१६—दादूपंथी निर्गुण—उपासक हैं। एक निरंजन, निराकार, परमेश्वर की भक्ति और उपासना करते हैं, परम ब्रह्म ही उनका इष्टदेव है। उसको सब में रमनेवाला राम कह कर भजते हैं। योगी जन ध्यान धारण, और समाधि करके उसी अपार ब्रह्म में लवलीन रहते हैं।

१७—मृत शरीरों को पहिले मरघी व विमान पर रख के जंगल में छोड़ देते थे। इस विषय में स्वामी दादूदयाल के वाक्य ये हैं—

हरि भजि साफल जीवना, पर उपगार समाइ।
दादू मरण तहां भला, जहँ पसु पंषी खाइ॥

अथवा—

साध सूर सोई मैदाना। उनको नाहीं गोर मसाना॥

यह रीति वर्तमान समय में नहीं है। अब लगभग सारे दादूपंथी अग्निसंस्कार को ही करते हैं।

१८—दादूपंथियों का और सब संप्रदायों के साधुओं से मेल-मिलाप रहता है। सबसे ये प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं। अहंकार नहीं रखते। स्वभाव से बहुत कर मृदुल और सरल होते हैं, अपनी हालत में संतुष्ट रहते हैं। पुस्तकें लिखने में, पक्की स्याही बनाने में, पुस्तकों के गत्ते (जिल्दें) बांधने में, फटी पुस्तकों के पत्रों को जोड़ने में, रसोई और पकवान बनाने में, वस्त्र सीने में, तूंबों पर रंग चढ़ाने में, वैद्यक में ये साधु बड़े निपुण होते हैं।

१९—जो हाल दादूपंथी साधुओं का आज कल देखने में आता है उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यहां दिया है। साधारण बातें जो सर्व संप्रदायों के साधुओं में पाई जाती हैं उनका ज़िक्र यहां नहीं किया गया है और न महात्माओं के उन भेदों को मैं कह सकता हूँ जिन को वे स्वयंही जानते हैं।

२०—अब इस संप्रदाय के स्थापक स्वामी दादूदयाल के चरित्र की कुछ बातें आप को सुनाता हूँ। संवत १६०० विक्रम की फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को दादू गुजरात देश के अहमदाबाद नगर में प्रगट हुए थे, उनकी प्रथम ३० वर्ष की अवस्था का विशेष हाल नहीं मिलता है। संवत १६३० में वे सांभर आये, लग भग छः वर्ष वहां रहे। आंबेर (प्राचीन जयपुर) को गए, और १४ वर्ष वहां रहे। संवत १६४२ में अकबर शाह से फ़तेहपुर सीकरी में मिले और ४० दिवस वहां रहे। संवत १६५० से संवत १६५९ तक जयपुर मारवाड़, बीकानेर आदि राज्यों के अनेक स्थानों में रहते विचरते काटे। संवत १६५९ में नराणे ... संवत १६६० की ज्येष्ठ वदी ८ मी को अंतर्ध्या...

२१—दादू के ज्ञान, धर्मोपदेश और ... महत्व उनकी अपनी वाणी की पुस्तक से और अनेक शिष्यों के लेखों से पाया जाता है। ... शिक्षा का कोई पता नहीं मिलता है पर उनकी ... से स्पष्ट है कि वे हिन्दुओं के धर्म विषयों से पौराणिक-इतिहासों से अच्छी तरह से वाकि... वैसेही मुसलमानों के धर्म का हाल भी उनसे ... था।

इस तरह का हाल लोग साधु और फ़की... सत्संग और कथा श्रवण से भी हासिल कर ... हैं पर दादू के ऐसे सत्संग का भी कुछ पता ... मिलता है।

२२—जनगोपाल जी ने लिखा है कि दा... ग्यारहवें वर्ष में परम पुरुष (परमेश्वर) ने एक बाबा (साधु) का भेष धर के दादू को बाल... खेलते समय दर्शन दिया और एक पान का ... खिलाया, उनके मस्तक पर हाथ धरा और ... दिया पर बालक-बुद्धि से दादू ने ग्रहण न कि... सात वर्ष पीछे वही बुड्ढे महात्मा फिर आये और ... की बाह्य दृष्टि को अंतर्मुख करके ब्रह्म का सा... करा दिया, उसी दिन से दादू परमेश्वर के भजन ... चिंतन में लग गये। सुन्दरदासजी ने अपने "... संप्रदाय" नामक ग्रंथ में दादू के गुरु का नाम वृ...नन्द दिया है सो जनगोपाल के "वृद्ध बाबा" ... मिलता है, इसी शब्द से किसी ने दादू के गुरु ... नाम बूढ़ण (वृद्ध) रख लिया है।

२३—प्रोफ़ेसर एच एच विलसन ने अपने ... रलीजंस नामक ग्रंथ में लिखा है कि कबीर के ... रामानंद के संप्रदाय में दादू के गुरु बूढ़ण थे। विल... सन साहब को जो और वृत्तान्त दादू का मिला ... सो भी अनेक बातों में सही नहीं है। दयालजी ... अपनी वाणी में अनेक संतों के साथ कबीर साह... की भी प्रशंसा की है पर रामानंद का नाम तक ना... लिया है। सुन्दरदास आदि संपूर्ण दादूपंथी ...

गुरु दादू को स्वतंत्र (कबीर पंथी व अन्य संप्रदायों से अलग) मानते चले आते हैं। कबीरपंथी व रामानंदियों की तरह दादूपंथी तिलक या कंठी भी नहीं रखते।

२४—पंडित जगजीवनजी ने लिखा है कि स्वामी दादूदयाल के गुरु परमेश्वर ही थे। दादू ने स्वयं अपनी वाणी में गुरु की महिमा अनेक प्रकार से गाई है पर किसी विशेष व्यक्ति को अपना गुरु नहीं कहा है। उनके वाक्यों से स्पष्ट है कि वे दो प्रकार के गुरु मानते थे, एक बाह्य गुरु दूसरे अन्तर्गुरु। बाह्य गुरु ऐसा बतलाया है कि जो उपदेश द्वारा सन्मार्ग बतलावे और जोग बल से शिष्य को तुरन्त पलट कर अपने तुल्य कर ले। अंतर्गुरु अपना स्वयं आत्मा व परमात्मा है जिसकी अद्भुत कृपा से ही मनुष्य यथार्थ ज्ञान को पाता है। जनगोपाल का वृत्तान्त इस विषय में दादू के अपने वाक्यों से मिलता है। दादू ने अपने गुरु की बाबत यह साखी कही थी—

दादू गैब माँहि गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया, दष्या अगम अगाध॥

गैब एक अर्बी शब्द है जिसके मायने हैं गुप्त या अद्भुत स्थान के। दादूजी कहते हैं कि गुरुदेवजी हमको गैब में मिले जिनसे हमने ऐसा प्रसाद पाया कि हमारे मस्तक पर उनके हाथ के धरतेही हमको अगम अगाध परमेश्वर की प्राप्ति रूप दीक्षा मिली, अर्थात् इस गैबी गुरु की कृपा से हमको तत्काल ब्रह्म का ज्ञान हो गया।

२५—स्वामी दादूदयाल ने अपनी वाणी में अनेक महा पुरुषों की प्रशंसा की है तिनमें दत्तात्रेय, नारद, शुकदेव, सनकादि, ध्रुव, प्रह्लाद, गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद, नामदेव, पीपा, रयदास और कबीर के नाम दिये हैं। दादूपंथी पुस्तक संग्रहों में एक सौ से अधिक महात्माओं के ग्रंथ मिलते हैं तिनमें सब से पहले स्वामी दादूदयाल की वाणी रहती है, पीछे कबीर, नामदेव, रयदास और हरदास की वाणी, इनके पीछे दादूजी के शिष्यों के ग्रंथ, अन्त में गोरखनाथादि योगीश्वरों के ग्रंथ पाए जाते हैं। मुसलमान महात्माओं में से शेख़ फ़रीद क़ाज़ी महमूद शेख़ बहाउद्दीन के पद मिलते हैं।

२६—स्वामी दादूदयाल एक सिद्ध योगी थे, उनकी वाणी को पुस्तक यह बात स्पष्ट दिखाती है। जो जो दृश्य उन्होंने अपने ध्यान काल में अनुभव किए थे उनको अनेक प्रकार से सरल भाषा में वर्णन किया है। उनकी वाणी को पूरे तौर से योगिराज ही समझ सकते हैं। प्रत्येक साखी व पद में योग के विषय वा दृश्य झलक रहे हैं।

परमेश्वर की महिमा और उसका सच्चिदानन्द स्वरूप,
उसकी निर्गुण पूजा और अनन्य भक्ति,
उसकी परम उपासना और उसका अजपा जाप,
मन को परम रूप में स्थिर करने के साधन,
परम रूप का ध्यान, धारणा और समाधि,
अनहद बाजे का श्रवण और उसमें मग्न होना,
अमृत बिंदु का पान और परमानंद की प्राप्ति,
परमेश्वर से परस परस मिलाप ब्रह्म का साक्षात्कार।

ये सब विषय स्वामी दादूदयाल ने अपनी प्रेम उपजीवनी आनन्द बढ़ावनी मिष्ट कविता में सर्व साधारण के समझने योग्य रीति भांति से बतलाये हैं।

२७—स्वामी दादूदयाल धर्म और सामाजिक विषयों के संशोधक थे उन्होंने देश में हानिकारक चालों को देख कर उनके सुधारने का उद्योग किया है। पूर्व ऋषि मुनि आचार्य साधु और फ़क़ीरों की उत्तम उत्तम बातों को लेकर अथवा अपने योग बल से एक शुद्ध निर्गुण ब्रह्म की निर्गुण उपासना बतलाई है, सो उपासना एक उच्च कोटि की है। परमेश्वर को ही अपना सर्वस्व, जगत का सार और आधार माना है। सब व्यवहारों को उसकी उपासना के पीछे रक्खा है, ऐसेही उपासना से परम सुख की प्राप्ति संभव है। उस सुख के सामने सांसारिक सुख तुच्छ है। सार को पाकर कोई भूसी की चाह नहीं करता है। ऐसे अपूर्व आनंदमय परमार्थ के सरल साधन बतला कर स्वामी दादूदयाल ने दिखावटी प्रपंच, सगुण पूजा, कोरी बंदगी को गौण बतलाया है।

२८—नाना मत वाले हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर विरोध देखकर दोनों के लिये एक राह, एक ही ईश, एक ही प्रकार की बंदगी, बतलाई है। सब लोगों को एक परमेश्वर का परिवार दिखा कर सब में भाईचारे का संबंध ठहराया है। सबको परस्पर हेल मेल से चलने की आज्ञा दी है और सब जीवों पर दया की दृष्टि रक्खी है। एक दोहे में अपना सार मत इस भाँति से कहा है—

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सों, दादू यहु मत सार"

२९—दादू के उपदेशों का निचोड़ वही है जो हमारे प्राचीन योगीश्वरों और आचार्यों ने चलाया है। इस बात को दादूपंथी कविवर सुन्दरदासजी ने अपने ग्रन्थों में और पण्डित निश्चलदासजी ने अपने विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रन्थों में स्पष्ट सिद्ध कर दिया है। यदि दादू के व्यावहारिक रीति के कथन छोड़ दें जो जुग जुग में बदलते आये हैं, तो दादू के परम तत्त्व और परमार्थ के मार्ग अद्वैत वेदांत के अनुसार ही हैं। उनका सार हिंदू विज्ञान से विरुद्ध नहीं है। दादू ने जहाँ जहाँ हिंदुओं के विरुद्ध कहा है वहाँ उनका तात्पर्य हिंदुओं के मूलसिद्धांतों के खण्डन में नहीं है, किंतु केवल उन अनिष्ट बातों के विरुद्ध है जिनसे हिंदू जाति को हानि पहुँच रही है। उनके संशोधन से दादू ने हमारा कल्याण किया है पर उस समय के लोगों ने दादू के खण्डन मण्डन से चिढ़ कर उनको धुनिया काफिर आदि कह कर तुच्छ बतलाया है। सुधारकों की आदि में सर्वत्र ऐसी ही निन्दा हुआ करती है, पीछे जब उनका सत्य प्रगट हो जाता है तब उनकी कीर्ति फैलती है॥

३०—वास्तव में जो जो सुधार स्वामी दादूदयाल ने चाहे थे उन में से अधिक सुधारों की ज़रूरत अब भी भारतवर्ष में है, जैसे—

(क) हिंदू और मुसलमानों में मेल जो दादू ने चाहा है सो अब भी ज़रूरी है।

(ख) सब मनुष्यों में भाई चारे का भ[illegible]
अब भारत के सब हितवादी आवश्यक समझते।

(ग) अहिंसा परमो धर्मः, यह सिद्धांत [illegible]
दृढ़ता पाला जाता है। हिंदू सर्वत्र इसके [illegible]
करते हैं। मुसल्मानों में बहाई मत के अनुयायी
मिसर फारस आदि देशों में बढ़ते जाते हैं, [illegible]
सिद्धांत को अपने मुख्य उसूलों में रखते हैं। दादू
वाक्य इस विषय में सर्वमान्य होंगे॥

(घ) सगुण से निर्गुण उपासना सभी विद्व[illegible]
श्रेष्ठ मानते हैं।

(ङ) तीर्थयात्रा से जो हानि और यात्रि[illegible]
की जो दुर्दशा आज कल होती है सो दादू के सम[illegible]
में न थी। दादू का उपदेश इस विषय में आज [illegible]
हमारे लिये परमोपयोगी है।

(च) खान पान में दादू का मत सर्वमान्य हो[illegible]
योग्य है।

(छ) उद्यम और परिश्रम करना दादूमत के अनुस[illegible]
उत्तम है।

(ज) विवाह का निषेध यति महात्माओं के लिये [illegible]
गृहस्थों के लिये एक नारी की आज्ञा महा[illegible]
दासजी (दादूजी के पोता चेले) ने अपने [illegible]
प्रध्या' ग्रंथ में साफ़ दी है। दादूपंथी नागाओं [illegible]
स्थानधारियों को इस आज्ञा पर चलना उचित [illegible]
दूसरे गृहस्थों के बालकों को मूड कर अपना [illegible]
चार चलाना ठीक नहीं।

३१—दादू की प्रथम ३० वर्ष की अवस्था [illegible]
विशेष हाल नहीं मिला है। संवत १६३० के [illegible]
सांभर में दादू की महिमा उठी। उनका कथन हि[illegible]
और मुसलमान दोनों की प्रचलित रीति भाँ[illegible]
से निराला था। इस कारण से दादू के अने[illegible]
विरोधी भी हो गए थे। ऐसे लोगों ने अनेक प्रका[illegible]
से दादू को सताया पर दादू ने अपना मार्ग न छोड़ा।
उन दिनों में दादू ने कुछ इस प्रकार की सा[illegible]
कही थी—

जब थैं हम निर्पख भये सबै रिसाने लोक।
[illegible]र के परसाद थैं, मेरे हृदय न सोक। १६-५१॥
बल तुम्हारे बाप जी, गिनत न राणा राव।
मलिक परधान पति तुम बिन सबही बाव॥
२४-७३॥

एक दफे एक क़ाज़ी जी दादू की तर्क से झुँभला
और उसने दादू के मुँह पर एक घूँसा मारा,
पर दादू ने अपनी शांति न छोड़ी और अपने
को फेर कर कहा भाई एक और मार ले। तब
[illegible]ज़ी शरमा कर चले गये।

३२—आंबेर में दादू की महिमा और बढ़ी।
[illegible] भगवंतदास ने अकबर शाह के बारबार
ने से दादू को फ़तेहपुर सीकरी बुलवाया।
[illegible]बर शाह की इच्छा थी कि दादू अकबर को
[illegible]श्वर का अवतार स्वीकार करे, पर यह
[illegible] दादू ने न मानी। राजा भगवंतदास, और
[illegible]अब्बुल फ़ज़ल आदि ने दादू को बहुत मनाया,
[illegible]ह तरह के लालच दिये पर दादू ने किसी प्रकार
लालच या भय न माना और वे अपनी राह में
[illegible] रहे। अकबरशाह ने आख़िर दादू को निर्लोभी
[illegible]ा फ़क़ीर मान कर आदर से अपने शहर में रहने
लिये बहुत कुछ कहा पर दादू ने अपनी कुटी
[illegible]बेर में ही रहना पसंद किया।

३३—राजा भगवंतदास के मरे पीछे राजा मान-
ह आंबेर के राजा हुए। उनसे कुछ लोगों ने दादू
[illegible] निंदा की कि दादू हिंदू और मुसलमान दोनों की
[illegible]ों के विरुद्ध लोगों को उपदेश देता है। मानसिंह
अपने मन में दादू की बातों को ठीक मान भी
[illegible]या पर लोगों के दबाव में आकर वे दादू से कुछ
[illegible]नुचित प्रश्न कर बैठे जिस पर दादू आंबेर से
[illegible] खड़े हुए। मानसिंह ने दादू से क्षमा माँगी
[illegible]र ठहराने की बातें कहीं पर दाद
[illegible]ामान लुटा कर चल दिए।
[illegible]ों में वर्ष वर्ष छ
[illegible] कर ९ वर्ष
[illegible]

३४—दादू के माता-पिता का हाल ठीक ठीक
जानने में नहीं आता है। दादू ने अपनी वाणी में
कोई नाम या पता नहीं दिया है। दादू के शिष्य
उनकी पिछली अवस्था में उनसे मिले थे, उससे
पहिले का हाल शिष्यों के देखने में न आया था।
ऐसे नाज़ुक हाल के पूँछने का किसी को साहस
भी न हुआ हो।

दादूपंथियों का दृढ़ निश्चय है कि अहमदा-
बाद में लोदीराम नागर ब्राह्मण के घर दादू पले
थे। उनके प्रगट होने का हाल इस तरह से कई
महात्मा लिख गए हैं कि एक टापू में कुछ योगिजन
ध्यान कर रहे थे, तिनमें से एक योगी को भगवत
की आज्ञा हुई कि तुम भारत में जाकर जीवों का
कल्याण करो। इस शब्द से बंधे हुए वे योगिराज
अहमदाबाद में आये, जहाँ लोदीराम साधु संतों
से एक पुत्र के लिये याचना किया करते थे। उस
योगी से भी लोदीराम ने यही वर माँगा, योगी ने
लोदीराम की आज्ञा पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की
और लोदीराम से कहा कि प्रभातकाल साबर-
मती नदी के किनारे जाओ, वहाँ तुमको पुत्र मिलेगा।
तदनुसार लोदीराम नदी के किनारे गए और यह
योगी अपने योग बल से अपनी काया पलट कर
बालक रूप धारण कर के साबरमती नदी में बहते
हुए उस ब्राह्मण को प्राप्त हुआ। लोदीराम ने अपने
घर ला कर पाला, सोई दादूदयाल हुए। इसके
प्रमाण में यह साखी मिलती है—

> सबद बंधाना साह के ताथैं दादू आया।
> दुनिया जीयी बापुड़ी सुख दरसन पाया॥

देश में कहावत चली आती है और कहीं कहीं
लिखा भी मिलता है कि दादू एक रुई पींजने वाले
[illegible]रे। इस बात को दादू पंथी स्वीकार करते
[illegible] दिन दादू ने सांभर या आंबेर
[illegible] काम किया था, सो
[illegible] था। दादू के अनुमुन
[illegible] की महिमा अब वहाँ फैल
[illegible] मीठे दादू के पास

और दादू के भजन व योगाभ्यास में फ़र्क पड़ने लगा तब दादू ने यह पींजने का काम आरंभ कर दिया, जिसमें लोग कम आवें। एक महात्मा लिखते हैं कि जैसे कबीरजी ने जगत बड़ाई को रोकने के लिये गणिका संग रक्खी थी तैसे दादू ने यह रुई धुनने का काम किया था।

दादू ने अपनी वाणी के अरण्य नामक अंग में बहुत ज़ोर दे कर कहा है कि साधु अपनी भक्ति को किसी से प्रगट न करे।

दादू के शिष्य सुन्दरदासजी ने तथा रज्जबजी, जगन्नाथजी और जनगोपाल ने भी इस रुई धुनने का हाल सुना था और इन सबों ने अपने अपने ग्रंथों में इसका ज़िक्र लिखा है। सुन्दरदासजी ने दादू के रुई पींजने की महिमा इस प्रकार गाई है—

राग टोड़ी।

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रुई पीजण के कारण,
आपण राम पठाया ॥ टेक ॥
पींजण प्रेम मुठिया मन को,
लय की तांति लगाई।
धनुही ध्यान बँध्यो अति ऊँचो,
कबहूँ छूटि न जाई ॥
जोइ जोइ निकट पिंजावण आये,
रुई सबन की पींजै।
परमारथ को देह धरयो है,
सम्यक कछु ही लीजै ॥
बहुत रुई पींजी बहु विधि कर,
मुदित भये हरिराई।
दादूदास भजन पींजारा,
सुन्दर बलि बलि जाई ॥१९॥

सुन्दरदासजी ने अपने गुरुदेव के अंग में स्वामी दादूदयाल की महिमा बहुत उत्तमता से गाई है। वहाँ २७ सवैये हैं जिनमें से दो मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ—

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय,
निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ़ दादू।
सील संतोष छिमा जिनके घट,
लागि रह्यो सु अनाहद नादू ॥
भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु,
और नहीं कछु वाद विवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन माँहि,
सु सुन्दर के उर हैं गुर दादू ॥ ३ ॥
कोऊ गोरष कौं गुर थापत,
कोउक दत्त दिगंबर आदू।
कोऊ कंथर कोऊ भरथर,
कोऊ कबीर को राषत नादू ॥
कोऊ कहैं हरदास हमारे जु,
यौं करि ठानत वाद विवादू।
और तौ संत सबै सिर ऊपर,
सुन्दर के उर हैं गुर दादू ॥ ५ ॥

३५—स्वामीदयाल ने किसी को मूँड़ शिष्य नहीं किया था। उनके सत्संगी हज़ारे उनकी दृष्टि ऐसी मोहनी थी और वाक्य ऐसे बेधी थे कि जिसकी तरफ़ वे देखते या कुछ वे वही उनके रंग में लवलीन हो जाता था। और आंबेर में अनेक जन स्वामीजी के दर्शने आते थे और अपने अपने स्थान को ले जा कर म महोत्सव कराते थे। मनुष्यों की क्या कहैं पशु दादूदयाल को देख कर उनके अधीन हो थे। यह सब उनके योगबल की लीला थी। गोपालजी ने स्वामी दादूदयाल के चमत्कारों का हाल लिखा है। ऐसे वृत्तान्तों आज कल के लोग असंभव समझ कर इत्यादि माथिक मानें पर जिन लोगों ने इस युग में योगियों की शक्ति का परिचय पाया है वे दयाल के अद्भुत चरित को असंभव न समझें। महात्मा सुन्दरदासजी ने अपने "सर्वांग यो नामक ग्रंथ में योगियों की शक्तियों का वर्णन है। वैसे ही प्राचीन योगशास्त्र में भी उनके प्र विद्यमान हैं।

३६—स्वामी दादूदयाल के ५२ शिष्य प्रसि हैं, जिनके ५२ थाम्हे और ५२ ही मंदिर स्थान थे। इनमें तीन आचार्य थे अर्थात्—

Puran Das ji

(१) काशी के पंडित जगजीवनजी,
(२) सीकरी के माधवदेव,
(३) टेटड़े वाले नागरजी।

ार महात्मा दादू के शिष्य कहलाने से पहिले
ी थे, उनके नाम ये हैं—

(१) बनवारीजी,
(२) हरदासजी,
(३) हिंगोल गिरिजी,
(४) कपिल मुनि,

३—शिष्यों में २४ संतों ने अलग अलग अपने
े हैं। जिनमें सुन्दरदासजी (दूसर दोसापाटी में
ुर के निवासी) ने अनेक मनोहर काव्य-ग्रंथ
ं हैं, जिनमें से कुछ बम्बई में छप चुके हैं और
अभी तक सर्व साधारण के देखने में नहीं
हैं। निम्नलिखित महात्माओं के ग्रंथों के
न का अभी तक किसी ने नाम ही नहीं
ै है:—

जनगोपालजी,
जगजीवनदाससी,
जगन्नाथजी,
रज्जबजी,
जयमल जोगी,
जयमल चौहान,
बैनजी,
मोहनदास मेवाड़े,
हरिसिंहजी,
बारा हजारी संतदासजी,
माधूजी,
बाबा बनवारीदासजी,
साधुजी,
बखनाजी,
टीलाजी,
भागदास जी,
जग्गा जी,
मसकीनदासजी,
दूजणदासजी,
पूरणदासजी,
गरीबदासजी,

इनके पीछे अनेक दादूपंथी संत हुए हैं उनके भी ग्रंथ मिलते हैं, जैसे

छीतरजी के सवैये।
दास जी का पंथप्रभा और वाणी।
चंपाराम का दृष्टांतसंग्रह।
राघवदास का भक्तमाल।
क्षेमदासजी की वाणी और अन्य ग्रंथ।

इन महात्माओं के वाक्यों के नमूने यहाँ देने की मेरी इच्छा थी पर यह लेख बढ़ गया है और समय भी थोड़ा है। दादूपंथी संपूर्ण ग्रंथ एक लक्ष श्लोकों की बराबर होंगे।

३७—ऊपर लिखे ग्रंथ दादूपंथी संग्रहों में मिलते हैं। इनका संपादन करना हिन्दी-साहित्य के लिये अति उपयोगी होगा। यह ग्रंथ पुरानी हिन्दी में हैं जो वर्तमान भाषा से किंचित् विलक्षण है। बहुधा संपादक पुरानी लेख-प्रणाली और भाषा को न समझ कर इन ग्रंथों को अशुद्ध मान लेते हैं और उनके शब्दों के असली रूपों को बदल कर प्रचलित भाषा के अनुसार करने का प्रयत्न करते हैं जिससे प्राचीन हिन्दी के इतिहास का लुप्त हो जाना संभव है।

३८—दादूपंथी पंडित निश्चलदास के विचार सागर और वृत्तिप्रभाकर ग्रंथ भारत के वेदांती विद्वानों में अति माननीय हैं। सन्यासी, उदासी निर्मले, कबीरपंथी तथा अन्य संप्रदायों के विद्वान् इन ग्रंथों की प्रशंसा करते हैं और भाषा के ग्रंथों में इनको प्रामाणिक मानते हैं। स्वामी विवेकानंदजी भी इनकी प्रशंसा लिख गये हैं। ऐसे अद्वितीय पंडित निश्चलदास का विख्यात पुस्तकसंग्रह देहली के पास एक गाँव में पड़ा सुनने में आता है। राजपूताने के दादूपंथियों के पास हिन्दी के अनेक पुराने ग्रंथ मिलते हैं। इनका संपादन करना हिन्दी के प्रेमियों का ही कर्त्तव्य है।

३९—अब मैं स्वामी दादूदयाल की विनती सुना कर इस वृत्तान्त को समाप्त करता हूँ—

साँई सत संतोष दे, भाव भक्ति विस्वास।
सिदक़ सबूरी साच दे, माँगै दादूदास॥

साँई संशय दूर कर, करि शंक्या का नास।
भानि भरम दुविधा दुख दारुण, समता सहज प्रकास॥

तन मन निर्मल आतमा, सब काहू की होय।
दादू विषय विकार की, बात न बूझै कोय॥

——:०:——

राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि ।

[बाबू शारदाचरण मित्र लिखित ।]

स सभा के अधिवेशन में उपस्थित होने तथा इसके कार्यों में योगदान करने की मुझे बड़ीही प्रबल उत्कण्ठा थी, पर वशतः सभा के अधिवेशन का समय हम यों के लिये अनुपयुक्त हुआ है। इस सुअ- य में हमलोग अपने गृह पर परमपूजनीय तो भगवती की अर्चना में थोड़ा या बहुत रहते हैं और हमें अन्य प्रान्तों से आए हुए ों का यथाविधि सम्मान करना होता है। मैं इस सभा के सदुद्देश्य से पूर्णरूप से त हूँ। इस सभा का उद्देश्य भारतवर्ष के थार्थ में बहुत बड़ा है। हिमालय से कुमारी प तक के निवासियों, विशेष कर हिन्दुओं क्ता (समीकरण) के लिये एक भाषा और तर का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन ें उच्च और सुशिक्षित समाज की भाषा थी और साधारण मनुष्यों की भाषा प्राकृत इन दो भाषाओं में विभेद बहुत कम था, दोनों ही के विभक्ति और प्रत्यय प्रायः एकसे ाने समय के अक्षर के विषय में बहुत मत- परन्तु कई शताब्दियों से संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि ही व्यवहार रही है। इसमें कोई भी विवाद नहीं है कि वासियों की भलाई के लिये एक-भाषा और कार के अक्षर की बड़ी ही आवश्यकता त हुई है। पर कौन सी एक-भाषा या कौन अक्षर (लिपि) का प्रचार किया जाय इस में बहुत ही मतभेद हो सकता है। बहुत से ऐसा कह सकते हैं कि अङ्गरेजी भारतवर्ष की निक भाषा हो, रोमन अक्षर साधारण लिपि ई फ़ारसी अक्षर और उर्दू भाषा के पक्षपाती करते हैं, किन्तु इन सब भाषाओं और अक्षरों के र निरापद नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जातीय भाव हमारी अपनी भाषा की ओर झुकता है। इस विषय में मैंने वर्षों माथा खपाया है, बुद्धि लड़ाई है और इस कई वर्ष की आध्यात्मिक तपस्या के बाद मैंने यह निश्चय किया है कि भारतवर्ष के लिये देवनागरी साधारण लिपि हो सकती है और हिन्दीभाषाही सर्वसाधारण की भाषा होने के उपयुक्त है। मेरा यह भाव आपलोगों के ऊपर बहुत दिनों से विदित है। बार बार मैंने देवनागरी लिपि और हिन्दीभाषा की उपयुक्तता को आपलोगों के दृष्टिगोचर कराया है और हाल में भी 'हिन्दुस्तान रिव्यू' नामक मासिक पत्रिका में मैंने एक लेख लिखा था जिसमें भारत के उत्तर और पश्चिम प्रान्तों की उपस्थित भाषाओं की पारस्परिक एकता का एक स्पष्ट चित्र खींचकर दिखाया था। उस प्रबन्ध में विशेषकर हिन्दी के साथ सब भाषाओं का मेल और एकता दिखाई गई थी और वास्तव में भारतवर्ष के साहित्य और पारस्परिक वार्तालाप एवं पारस्परिक पत्रव्यवहार के कार्यों में ठीक संस्कृत की नाईं हिन्दी ही साधारण परिवर्तन के साथ वर्त्तमान समय के लिये अति उपयुक्त भाषा है।

मेरी भाषा, अर्थात् बँगला ने यथार्थ में बहुत उन्नति की है। इसका साहित्य-भण्डार बहुत बढ़ गया है। इससे यह भारत की सार्वजनीन भाषा होने की स्पर्धा कर सकती है किन्तु इसमें कई दोष हैं जिससे इसका भारतजनसमूह की भाषा होना सम्भव नहीं है। बँगला भाषा का आसामी और उड़िया भाषाओं के अतिरिक्त भारत की और किसी भाषाओं से मेल नहीं है। गत कई वर्षों से हिन्दी ने भी बहुत उन्नति की है और क्रमशः अक्षुण्ण- वेग से और भी अग्रसर हो रही है। मुझे पूर्ण आशा है कि कुछ वर्षों में इसका साहित्य-सरोवर भी उमड़ चलेगा।

बँगला भाषा को उचित है कि प्यारी बहिन की नाईं हिन्दी की उन्नति में साहाय्य दे और इसकी सर्वदा सहेली और पृष्ठपोषक बनी रहे और इसके कोमल गले पर छुरा चलाने का प्रयत्न कदापि न करे, यद्यपि ऐसा करना इसकी शक्ति के बाहर है। भारतवर्ष के सब मनुष्यों के माथे बँगला भाषा की नाईं एक नई भाषा को मढ़ देना दृढ़स्थापित वैज्ञानिक कल्पना और भाषा के इतिहास के प्रतिकूलही जान पड़ता है। यदि अङ्गरेज़ों के समान बङ्गालियों को शासनकर्तृत्व मिलता तो उनके मानसिक आकाश में ऐसे भावों का उदय होना सर्वथा अयोग्य न होता। अस्तु बँगला भाषा के सबलोगों में प्रचार करने की आशा करना मानो बावनरूपधारी हो चन्द्रस्पर्श की आशा रखना है। भारतगवर्नमेण्ट भी ऐसे आन्दोलन को देख आँख नीली पीली करेगी, तिवरी चढ़ावेगी और इसके मूल को गरम जल से सींचकर बहुत शीघ्रही निर्मूल करने की यथासाध्य चेष्टा करेगी।

हिन्दी समस्त आर्य्यावर्त की भाषा है। बोल चाल का विभेद कोई बड़ा कंटक नहीं है। मैंने हिन्दुस्तान रिव्यू के लेख में दिखाया है कि महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा की भाषाओं में परस्पर पार्थक्य वस्तुतः कुछ नहीं है। और विशेष कर हिन्दी के साथ इनका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। यदि हिन्दी भाषा में कुछ संस्कृत के शब्दों का व्यवहार किया जाय तो बड़ी सुगमता से हिन्दी शिक्षित-भारत वासियों की समझ में अनायास ही आ जायगी। मैं बड़े हर्ष के साथ उल्लेख करता हूँ कि आधुनिक हिन्दी लेखकों की कृपादृष्टि इस ओर पड़ी है।

जिस प्रकार बँगला भाषा के द्वारा बङ्गाल में एकता का पौधा प्रफुल्लित हुआ है उसी प्रकार हिन्दी भाषा के साधारण भाषा होने से समस्त भारत-वासियों के एकतारूप की कलियाँ अवश्य ही खिलेंगी और इसकी शुष्क पत्तियाँ लहलहा उठेंगी। हिन्दी भाषा में कई प्रकार के परिवर्तन की आवश्य-कता है, विशेष कर इसकी विभक्ति और ... आशा करता हूँ कि ...

महान् लाभ ...
ये सब परि...
वरन देशोप...
से इस कर्मक्षे...
भाषाओं से अन...
प्रबन्ध बड़े तोड़...
इसका बाज़ार ग...
ओर से इसी आ...
बड़ा ही खेद का ...
आन्दोलन के समय ...
लेती रहे और उ...
आनन्द की बात ...
आजन्म की तन्द्रा तो...
का गीत" आरम्भ क...
मन्त्र से दीक्षित हो त...
लिये चेष्टा करते। सब ...
हैं कि विभक्तियों को ...
आधुनिक विद्वानों का प्र...

कलकत्ते का एक-लि...
वर्ष से समस्त भारतवर्ष ...
करने में तन मन से लगा है ...
(Secretary) होने का बड़...
मैं बंगाली हूँ तथापि मेरे दफ़...
है। इस वृद्धावस्था में मेरे ...
दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी ...
बोलने लगूँगा और प्लेटफ़ार्म ...
ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में व...
दिन मेरा जीवन सफल होगा ...
भारतवासियों के साथ साधु दिन...
करूँगा। हमारे सुयोग्य सह...
उमापतिदत्तशर्म्मा बी० ए० की म...
होने से मेरी और मेरे परिषद की बड़...
बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है ...
करनेवालों की संख्या ...

ो नहीं समझे हैं। यद्यपि यह इनके गौरव का
है कि बङ्गाल ने अपनी बंगभाषा और साहित्य
वशाल उन्नति की है और एक लघु राष्ट्रीयता
नीव डाली है। मुझे सच्चे कार्य्यवाहकों की
यता की बड़ी आवश्यकता है। आप महानु-
ं के साथ इस समय सम्मिलित हो इस महान
ा करने से बढ़कर और मेरे लिये अधिक सुखप्रद
ददायक वस्तु कोई नहीं है। आपका और
कर्म्मक्षेत्र केवल बिहार और युक्तप्रदेश ही नहीं
योंकि जैसा कि श्रीमान् पण्डित मदनमोहन
वीय ने बार बार आप हिन्दीप्रेमियों को दिख-
ा है कि उन प्रान्तों की भाषा तो हिन्दी है ही,
बङ्गाल प्रान्त में हिन्दी प्रचार करने के लिये
हिन्दीभक्तों को बीड़ा उठाना चाहिए। देश
कर्त्तव्य के ज्ञान की ओर बङ्गाली भाइयों को
त कराना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। उन्हें
देना चाहिए कि केवल बङ्गाल ही उनकी
भूमि नहीं है। मैंने सर्वदा बङ्गालियों के बिहार
उड़ीसा से विलग हो जाने की इच्छा के विरुद्ध
े भावों को प्रकाशित किया है और केवल
भाषा बोलनेवाली जातियों से ही एक प्रान्त
निर्म्माण होना सर्वथा मेरे भावों के प्रतिकूल
इस प्रकार का विभेद मेरी समझ में भारतवा-
ों के जातीय-संगठन का हानिकारक होगा।
ालियों के लिये बंगाल, बिहारियों के लिये बिहार
पञ्जाबियों के लिये पञ्जाब इन उद्गार

ध्वनियों के मैं सर्वदा प्रतिकूल हूँ। प्रान्तिक जातीयता
का भाव भारत जातीयता की वृद्धि का बहुत बड़ा
कंटक है। यह भाव भारतजातीयता की सच्ची
वृद्धि में सर्वदा कीड़ा बना रहेगा। यह सच मुच
भारत राष्ट्रीयता के मूल को नाश करता जायगा।
वृक्ष बहुशाखा परिपूर्ण होने पर भी, यदि इसकी
जड़ सड़ी हो, तो बहुत शीघ्र छोटे छोटे अन्धड़ों ही
की झोंक से गिर जाता है। सच्ची देशभक्ति का
सम्बन्ध केवल राजनीति ही के साथ नहीं है। वरन,
बोलचाल, लिपि, भाषा, रहन-सहन, तथा चाल-
चलन, भी उसकी उन्नति के प्रधान अङ्ग हैं। अब
देश में छोटे छोटे राज्यों की स्थिति का दिन चला
गया। पृथ्वीमात्र के मनुष्यों का भाव उच्चतर हो
गया है। सामाजिक और साहित्यसम्बन्धी एकता
ही जातीय संघटन की प्रधान नींव है। हिन्दी की
उन्नति और प्रचार का यथार्थ अर्थ भारत की
जातीय उन्नति है। सब अवस्थाओं में प्रत्येक शिक्षित
भारतवासी को हिन्दी जानना एवं उसमें कुशल
होने की चेष्टा करना अति वांछनीय एवं प्रयोजनीय
है। क्योंकि बनारस हिन्दुधर्म्म और संस्कृत भाषा
का केन्द्र है, इससे हिन्दी सीखने में बड़ा सुभीता होगा।
मैं इस आन्दोलन के सञ्चालकों को हृदयतल से
एवं मुक्तकण्ठ से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि
जिन्होंने मुझे अपना भाव प्रकाश करने का अवसर
दिया है।

——:०:——

मुसलमानी राजत्व में हिंदी।

[मुंशी देवीप्रसाद लिखित ।]

हिंदी मुसलमान बादशाहों के राज में हिसाब-किताब, राज-काज, साहित्य और संगीत-संबंधी कामों के लिये बहुत प्रचलित रही है जिसका संक्षिप्त वृत्तांत मुसलमानी तवारीख़ों के आधार पर अपनी विद्या और बुद्धि के अनुसार लिखता हूँ।

हिसाब-किताब में हिंदी

मुसलमान जबसे हिंदुस्तान में आए तबसे ही उनके राज्य का काम बहुधा हिन्दी में ही होता था। हिसाब और जमाख़र्च का दफ़तर तो मोहम्मद क़ासिम के समय से अकबर बादशाह के राज तक हिन्दी में ही रहता चला आया था। इसका कारण कुछ यह नहीं था कि मुसलमान लोग हिसाब नहीं जानते थे किन्तु वे ऐश्वर्यवान और सिपाही पेशा होने से हिसाब करने और जोड़-तोड़ लगाने का परिश्रम कम उठाना चाहते थे और इसको अपनी सिपाहगरी और विजयप्राप्ति के आगे कुछ बड़ा काम नहीं समझते थे, इसलिये जो देश फ़तह करते थे वहाँ के दीवानों, दफ़तरों और लेखकों को ज्यों का त्यों बना रखते थे और उन पर शासन करने के लिये अपनी एक बड़ी कचहरी बना देते थे जिस का काम या तो आप या उन के मुसलमान मंत्री किया करते थे। देखो जब मोहम्मद क़ासिम ने संवत ७६८ में सिन्ध देश का राज दाहर से जीता था तो वहाँ के अगले दीवान को राज का काम सौंप कर ब्राह्मणों को दफ़तर में नौकर रखलिया जिनके द्वारा राज्य का कर भी प्रजा से उगाहा जाता था जिससे माल का दफ़तर हिन्दी में ज्यों का त्यों बना रहा।

फिर महमूद ग़ज़नवी ने संवत १०७० में पंजाब का राज्य हिंदुओं से लिया तो उसने भी यहाँ के हिसाब का दफ़तर हिन्दी और हिन्दुओं के ...
रहने दिया ...

किया जबकि उसने ...
लिया था।

इस प्रकार विजयी ...
में विजित हिन्दुओं की ...
के समय तक उनके द...
सुलतान सिकंदर लोदी ...
लिखने पढ़ने पर तो लगा...
अपने धर्म का बहुत पक्ष था ...
को फ़ारसी में नहीं कर स...
अनुभव और पिछे मारने ...
मारने का काम नहीं था, परन्तु ...
संवत १६३८ में सम्राट अकब...
महत् पद पाकर बादशाही ...
किया तो पुराने दफ़तरों को भी ...
बड़ी सावधानी और बुद्धिमानी से ...
पहिले हिंदी लिपि और हिन्दी ...
लिखते थे वहाँ अरबी और फ़ारसी ...
अंक मुसलमान लोग लिखने लगे ...
ही हिन्दुओं को भी फ़ारसी पढ़ने और ...
सीखने का हुक्म देदिया जिसके ...
के दफ़तरों की प्रथा का ज्ञान ...
प्राप्त करके एक सरल परिपाटी बनाई ...
शिक्षा का यह परिणाम हुआ कि बहुध...
हिंदी को तो भूल गये और फ़ारसी लि...
सीखकर पहिले के समान कम तनख़...
हिन्दी नवीसंदे ही नहीं रहे किन्तु मुं...
और दीवान बनकर बादशाहों और बादशा...
की कामदारी और मुसाहिबी के ओहदों त...
लगे। स्वयं राजा टोडरमल भी फ़ारसी शिक्ष...
जो उनसे एक पीढ़ा पहिले ...
हिन्दुओं ...

प्रतों में चलरही है। रजवाड़ों के हिन्दी दफ़तरों बनियों के बहीखातों में भी उसी की छाया हिसाब लिखा जाता है जिस में बहुधा वेही फ़ारसी नाम ग्रैार शब्द लाये जाते हैं जो राजा व ने इस नये सुधार में नियत किये थे। महात्मा सजी ने भी इनमें के कई नाम ग्रैार शब्द इस पद में दिये हैं—

हरी किरपा हमरे ग्रवगुण जमा खरच कर देखे।
जिल पड़े ग्रपराध हमारे इस्तीफा के लेखे॥
ल हरफ हरफ सानी को जमा बराबर कीजे।
द बुरद के हाथ हमारे तलब बराबर दीजे॥
इस्तखाब दुबरकी करके
पैसी ग्रमल जनायो॥
दसखत माफ करो तिहि ऊपर
सूर स्याम गुन गायो॥१॥

इस प्रकार दिल्ली के बादशाही दफ़तरों में से तो ड़ों वर्षों की जमी हुई हिन्दी राजा टोडरमल के ले निकल गई परन्तु दक्षिण के बादशाहों के तरों में ज्यों की त्यों बनी रही जिन का निकास देहली से ही हुग्रा था परन्तु वे ग्रपने ग्रपने राज्य कड़ों वर्षों से स्वतंत्र थे।

तवारीख़ फरिश्ता में लिखा है कि हसनगांगू गनी ने जो सुलतान मोहम्मद तुगलक से प्रति- होकर दक्षिण का पहिला बादशाह संवत ०४ में हुग्रा था गांगू (१) ब्राह्मण को ग्रपने हिसाब दफ़तर सौंपा था। उस दिन से ग्राज तक की री सन् १०१६ (संवत १६६४) है। हिन्दुस्तान ग्रब देशों की रीति के विपरीत दक्षिण के बाद- हों के दफ़तर ग्रैार उन की विलायतों के लिखने पढ़ने के काम विशेष कर के ब्राह्मणों के हाथों में हैं।

प्रायः १७५ के पीछे हसनगांगू के घराने से राज चले जाने पर एक बादशाही की जगह ५ बादशाहियाँ उनके नैाकरों की बीजापुर, ग्रहमदनगर, गोलकुंडा, बिदुर ग्रैार बराड़ में स्थापित होगईं जो ग्रकबर के समय से लेकर ग्रैारंगज़ेब के दक्षिण की दिग्विजय करने तक धीरे धीरे दिल्ली के साम्राज्य में मिलगईं जिससे हिन्दी भी संवत १६४० से १७४२ तक सब मुसलमान बादशाहों के दफ़तरों से निकाली गई ग्रैार उस की जगह राजा टोडरमल की चलाई हुई वही फ़ारसी लिपि ग्रैार बोली भरती हुई। यही हाल मालवे, गुजरात, काश्मीर, बंगाल ग्रैार सिंध वगैरः के स्वतंत्र बादशाहों के हिन्दी दफ़तरों का भी हुग्रा जो सब एक एक करके मुग़ल बादशाहों ने लेलिए थे।

यों हिन्दी प्रायः १००० वर्ष तक मुसलमान बादशाहों के दफ़तरों में प्रचलित रह कर एक हिन्दू प्रधान मंत्री के प्रयत्न से ख़ारिज होगई जिस की पालीसी फ़ारसी के प्रचार से हिंदू जाति के वास्ते वैसी ही उपयोगी थी जैसी कि ग्राज कल भारत के वर्तमान नेताग्रों की ग्रंग्रेज़ी के पठन पाठन की वृद्धि करने में है क्योंकि जैसे ग्राज दिन केवल हिंदी या उर्दू पढ़ा हुग्रा हिंदुस्तानी ग्रादमी ग्रंग्रेज़ों में कुछ ग्रादर नहीं पा सकता है वैसे ही उस समय भी मुसलमान बादशाहों ग्रैार उनके ग्रमीरों वज़ीरों में कोरी हिंदी जानने वाले हिंदू की भी कुछ क़दर नहीं थी परन्तु जब वे भी फ़ारसी लिख पढ़ कर राज का काम करने के योग्य होगये तो मुसलमानों के बराबर ग्रमीरों ग्रैार वज़ीरों के से ग्रोहदे ग्रैार दरजे पाने लगे।

इस लेख को देख कर बहुधा लोग ऐसा कहेंगे कि हिन्दी के वास्ते ग्रकबर का समय ग्रच्छा नहीं था जिस में राजा टोडरमल के द्वारा हिन्दी की ग्रवनति हो कर फ़ारसी की वृद्धि हुई। सो प्रत्यक्ष में तो यह बात ठीक ही है जो राजनीति के हित से की गई थी परन्तु ग्रकबर मूल में हिन्दी का द्वेषी नहीं था उसने ग्रपने

(१) हसन, गांगू ब्राह्मण का नौकर था ग्रैार उसी के ा ग्रैार ग्राशीर्वाद से इस पद को पहुँचा था। उसने शाह होने के पीछे गांगू का उपकार याद रखने के ग्रपना नाम सुलतान हसन गांगूय ब्राह्मणी रखलिया, के वंशज भी सब ग्रपने नाम के पीछे बहमनी हमनी) शब्द जोड़ते रहते थे।

पोते .खुसरो को ६ वर्ष की अवस्था में पहिले हिन्दी पढ़ने को ही बैठाया था। अकबरनामे में लिखा है कि ७ मार्च सन १८ जलूसी (अगहन सुदि ६ संवत १६५०) को सुलतान .खुसरो हिन्दी विद्या सीखने को बैठा। भूदत्त ब्राह्मण जो महाचार्य के नाम से सर्व साधारण में प्रसिद्ध है और अनेक विद्याओं में कम कोई उसके समान होगा उसके पढ़ाने का नियत हुआ।

अब यहां सिकंदर और अकबर के कर्मकांड की तुलना करके देखना चाहिये कि सिकंदर ने तो हिन्दुओं को भी हिन्दी के पढ़ने से रोक दिया था और अकबर ने अपने पोते को पढ़ा कर निज घरही में हिन्दी का प्रचार किया।

अकबर ने राज्यप्रबंध के जीर्णोद्धार और शासन संस्कार में भी हिन्दी का हो बहुत कुछ प्रचार किया था जिसका पता आईन अकबरी से लगता है। सिक्कों, तोपों, बंदूकों हाथी, घोड़ों और दूसरी चीज़ों के नाम जो उसने नए निकाले थे बहुधा हिन्दी के ही रक्खे थे जिनका कुछ नमूना यहां भी लिखा जाता है।

सोने के सिक्कों के नाम

१ सहंसा—१०१ तोले ९ मासे सोने का होता था और ९१ तोले ८ माशे का भी
२ रहस्य—सहंसे का आधा
३ आत्म—सहंसे का चौथाई
४ विंशति—सहंसे का १० वां और २० वां भाग
५ युगल—सहंसे का ५० वां भाग—२ मोहर का
६ अदल गुटका ११ माशे सोने का—मोल ९)
७ धन—१ मोहर मोल ९)
८ रवि—आधी मोहर
९ पांडव—मोहर का पाँचवाँ भाग
१० अष्टसिद्धि—मोहर का आठवाँ भाग
११ कला—मोहर का सोलहवाँ भाग

चाँदी के सिक्कों के नाम

रुपया
द्रव्य—अठन्नी
३ चरन—चौअन्नी
४ पांडव—१ रुपये का पाँचवाँ भाग
५ दसाद—दसवाँ भाग
६ कला—अन्नी या सोलहवाँ भाग
७ सोकी—२० वाँ भाग

ताँबे के सिक्कों के नाम

१ दाम—१ पैसा—१ तोले आठ माशे ७ र
२ अधेला—आधा दाम
३ पवला—पाव दाम
४ दमड़ी—दाम का आठवाँ भाग

तोपों के नाम

१ गजनाल
२ हयनाल
३ नरनाल

बंदूकों के नाम

१ संग्राम
२ संगीन

तलवारों के नाम

१ जमधर—जमदाढ़
२ खपवा
३ जमखाग
४ नारसिंह मूठ
५ कटारा

पहिनने के कपड़ों के नाम

१ सर्वगाती—जामा
२ चित्रगुप्त—बुरका, घूंघट
३ शीश शोभा—टोपी—मुकुट
४ केशघन—मूबाफ बालों में गूंधने या बाँधने का
५ कटिजेब—कमरबंदा—पटका
६ तनजेब—आधे बदन में पहिनने का नीमा
७ पटगत—नाड़ा, कमरबंद
८ पारपेरान—इजार—पाजामा

रम नरम—शाल
रम गरम—दुशाला
रनधरन
ठ सोमा
कोचिया
रायन

कपड़ों के थानों के नाम ।

मल
ार
ी
रर कुल
ान
ावली
कपूर
ल्लूर

हाथी के सामानों के नाम।

झांप—झूल
डंबर—छतरीदार हौदा
पोल—सिरी
बागा—अंकुश

सिपाहियों के नाम ।

कड़ैत—लकड़ी से लड़ने वाले
त—परेबाज़
तैत—ढाल तलवार से लड़ने वाले
छैत—बरछे से लड़ने वाले
मनैत—तीर कमान से लड़ने वाले
कैत—दोनों हाथों से तलवार मारने वाले
हाथ—एक हाथ से तलवार मारने वाले
नेरिया—तलवार छीन लेने वाले
दुवा—छोटी ढाल रखने वाले पुरबिये
हवा—बड़ी ढाल रखने वाले दखनी
बंदोली—बाँकी या टेढ़ी तलवार वाले
१२ पहरायत—पहरा देने वाले
१३ खिदमतेये—सेवक
१४ मेवड़े—डाक ले जाने वाले
१५ चेले—जो पहिले गुलाम कहलाते थे
१६ अहदी—अकेले लड़ने वाले

डेरे वगै़रा के नाम ।

१ गुलालबाड़—बड़ी क़नात लाल रंग की जो सब डेरों के आस पास कोट के समान खड़ी होती थी।
२ रावटी—दस दस, लंबे चौड़े डेरे।
३ मंडल—४ गज़ के ४ चोबों पर खड़े होने वाले डेरे।
४ आकाशदिया—जो ४० गज़ ऊँचा होता था ।
५ सूर्यकांति—जिसको दोपहर के समय सूरज के सामने रखकर रुई में अग्नि उत्पन्न करते थे जिससे बादशाही बवरचीख़ानों और दीपकों के जलाने वगै़रा में काम लिया जाता था।
६ चंद्रकांति—जिसे चंद्रमा के आगे करके पानी टपकाया जाता था।
७ संख—गाय के सींग जैसा ताँबे का बनाया जाता था और ऐसे ऐसे संखों को मिला कर समय समय पर दरबार में बजाते थे।

बादशाहों के सिक्कों में हिंदी।

पुराने सिक्कों के देखने से पाया जाता है कि शहाबुद्दीन ग़ोरी से लेकर अकबर बादशाह के समय तक ४०० वर्ष के लग भग बादशाही सिक्कों में हिन्दी अक्षर रहते आये थे जिनमें बादशाहों के नाम तथा और भी कई विशेषण मुद्रित होते थे।

शहाबुद्दीन ने अपनी दिग्विजय में हिन्दुओं और हिन्दू धर्म का सर्वनाश तो किया परन्तु सिक्कों में जो हिन्दी अक्षर और राज्य चिह्न हिन्दू राजाओं के समय से चले आते थे वे सब ज्यों के त्यों रहने दिये। हम यहां उनका भी कुछ नमूना हिन्दी-प्रेमियों की भेंट करते हैं।

नम्बर	नाम बादशाह	हिन्दी अक्षर
१	मोईज्ज़ुद्दीन मोहम्मद साम व शहाबुद्दीनग़ोरी	१ श्रीमहमद बिनसाम २ श्रीमद हमीर श्री महमद साम
२	महमूद बिन साम	श्री हमीर
३	ताजुद्दीन यलदोज़	श्री हमीर
४	शमसुद्दीन अलतमश	श्री हमीर श्री समस-दिन
५	रुक्नुद्दीन फ़ीरोज़शाह	श्री हमीर, सुरितां श्री रुकन दीन
६	रज़िया बेगम	श्रीहमीर, श्रीसमस-दैन
७	मुइज्ज़ुद्दीन बहरामशाह	श्री मुइज़
८	अलाउद्दीन मसऊदशाह	श्री हमीर, श्री अलाय दिन
९	नासिरुद्दीन महमूदशाह	श्री हमीर
१०	ग़यासुद्दीन बलबन	श्री सुलतां गयासुदी
११	मुइज्ज़ुद्दीन कैक़ुबाद	श्री सुलतां मुईजुदी
१२	जलालुद्दीन फ़ीरोज़ ख़िलजी	श्री सुलतां जलालुदी
१३	ग़यासुद्दीन तुग़लक शाह	श्री सुलतां गयासदी
१४	शेरशाह सूर	श्री सेर साहि
१५	इसलामशाह सूर (सलीम शाह)	श्री इसलाम साहि
१६	अकबर बादशाह	श्री राम

अकबर बादशाह ने सब बादशाहों से बढ़कर यह काम किया कि अपने अनेक सिक्कों के साथ एक सिक्का ऐसा भी चलाया था कि जिसमें न तो अपना नाम था और न कोई राजचिह्न था। केवल एक तर्फ़ तो श्रीराम और सीताजी की मूर्ति थी जिस पर नागरी में राम नाम लिखा था और दूसरी ओर र इलाही महीना और इलाही सन् था। ऐसे ऐसे सिक्के ी छाप लखनऊ की छपी हुई आईन अकबरी में जिसमें सीधी तर्फ़ तो रामचन्द्रजी की मूर्ति इस ाकृति से बनी है कि आप मुकुट धारण किये और धनुषबाण चढ़ाये जारहे हैं। पीछे सीताजी हैं। उनके ा में भी १ छोटी सी बाल है। उलटी ओर फ़ारसी

में अहमन इलाही ५० मुद्रित है। पर इस मे के इकमाल में पढ़ने की नहीं आई है। बहमन माे इलाही सन् ५० का हमारी ऐतिहासिक अंग्रे चैत सुदि १ रविवार संवत् १६६२ ता० १० मार्च सन् १६०५ को लगा था।

सरकारी काग़ज़ों में हिन्दी।

क़ाज़ी लोग जो मुक़दमों के फ़ैसले लि या क़ानूनगो सरकारी काग़ज़ और परवाने लि थे उनमें भी कभी कभी हिन्दी लिखी जाती थ ज़मीन संबंधी फ़ैसलों में ऐसे हिन्दू वादी प्रतिवा के समझने के लिये जो फ़ारसी पढ़े नहीं होते थे फ़ारसी के नीचे कुछ सारांश हिंदी में भी लिख दिया जाता था। गांववालों के नाम के परवाने दस्त और इतलाक़नामे वग़ैरा बहुधा हिन्दी ह होते थे। इस हिन्द की रोक किसी ने नहीं की थ औरंगज़ेब के समय में भी चलती रही थी। मै ऐसे कई काग़ज़ देखे हैं।

साहित्य।

हिन्दी-साहित्य का आदर मुसलमान बा में उनका राज होते ही होगया था। सुलतान म ग़ज़नवी की तवारीख़ में लिखा है कि जब उ सन् ४१३ हिजरी (संवत् १०८०) में कालंजर चढ़ाई की थी तो वहाँ के राजा नंदा ने उस प्रशंसा में एक हिन्दी शेर (दोहा) लिख कर भेज था। सुल्तान ने उसको हिन्दी अरब और अजम (ईरान) के विद्वानों को दिखलाया जो उसकी सेवा में थे, सबने सराहना की और बहुत दाद दी। त सुलतान ने अपना बहुत गौरव मानकर (क्यों एक बड़े स्वतंत्र राजा ने उसकी प्रशंसा की थी) १५ क़िलों की हकूमत का फ़रमान जिनमें एक कालंजर भी था बहुमूल्य पदार्थों सहित उसके पारितोषिक में राजा के पास भेजा और उसका राज्य ज्यों का त्यों उसी के पास छोड़कर उसने ग़ज़नी की तरफ़ कूच कर दिया।

तवारीख़ में यह नहीं लिखा है कि उस दोहे में भाव था। परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उसमें चमत्कार होगा कि जो हिन्द, अरब, और म (ईरान) के विद्वानों को पसंद आगया और तान ने रीझकर उसकी ऐसी क़दर की कि का राज्य भी नहीं लिया जिसके वास्ते वह नी से इतनी दूर चलकर आया था और इसके थ १४ क़िले और उसको दे गया। इस वृत्तान्त सुलतान महमूद की प्रीति हिन्दी की प्रति स्पष्ट से सिद्ध होती है और उससे ये चार बातें लती हैं।

एक तो हिन्दी की क़दरदानी।

हिन्द के विद्वानों को अपने पास रखना।

एक शत्रु राजा की हिन्दी कविता को अपने गौरव का हेतु समझना।

उसकी रीझ में राजा को उतना बड़ा पारितोषिक देना जो दोनों के ही मान-सम्मान का सूचक था।

यदि सच पूछो तो इन सब बातों का मूल रण हिन्दी भाषा और उसकी कविता का प्रभाव। जिसने महमूद जैसे कट्टर तुर्क बादशाह के बार में अपना महत्त्व दिखा कर अरब और अजम विद्वानों को मोहित करलिया और उपहार भी पाया कि वैसा फिर कभी किसी समय में नहीं हा होगा क्योंकि प्रथम तो कालंजर का राज्य नष्ट से बचगया। दूसरे राजा नंदा को अद्वितीय मान र लाभ प्राप्त हुआ जिससे उसका राज्य और दृढ़ गया। तीसरे मुसलमान भी हिन्दी भाषा के रसिया कर स्वयं उसमें कविता करने लगे, जिसका ा भी उसी बादशाह के वंशजों की तवारीख़ों से ता है, जिनमें लिखा है कि उनके समय में सुलेन का पोता साद का बेटा मसऊद हिन्दी भाषा का विद्वान् और कवि था। उसने जो दो दीवान रसी के बनाये थे तो एक हिन्दी का भी बनाया ा। फ़ारसी भाषा में किसी कवि की सब कविता संग्रह को दीवान कहते हैं।

पंजाब में महमूद ग़ज़नवी का राज संवत् १०७० में होगया था और जब ही से मुसलमान लोग हिन्दी बोलने लगे थे और यही कारण मसऊद के कवि होजाने का था।

जामेउलहिकायात से जो सुलतान शमसुद्दीन के राज में संवत् १२६८ के आसपास बनी है जाना जाता है कि अन्हलपुरपट्टन के राजाधिराज सोलंखी सिद्धराज जयसिंहदेव के समय में जिसने संवत् ११५० से संवत् १२०० तक राज किया था कुछ हिन्दुओं और फ़ारसियों ने मतद्वेष से खंभात के कई मुसलमानों को मार डाला था और उनकी एक मसजिद भी गिरादी थी। मसजिद का 'ख़तीब' (उपदेशक) कुतुबअली कवि था। वह यह सब हाल हिन्दी कविता में लिख कर राजा के पास लेगया। राजा ने निर्णय करके मसजिद को फिर से बनाने के लिये रुपया दिला कर अपराधियों को दंड दिया। इधर दिल्ली में तुर्कों का राज होजाने से जो संवत् १२५० में हुआ था मुसलमानों में हिन्दी का प्रचार और बढ़ा, जिनमें अमीर ख़ुसरो जैसे हिन्दी भाषा के कविकोविद उत्पन्न होगये, जिनकी मधुर और प्रासाद कविता ने मुसलमानों को हिन्दी-साहित्य का रसिया बना दिया। ख़ुसरो के समकालीन सुलतान फ़ीरोज़ तुग़लक के राज्य में मुल्ला दाऊद ने नूरक और चदा के प्रेम का हिन्दीकाव्य बनाया था, जिसको उस समय के लोग बड़े प्रेम से पढ़ते थे और शेख़ 'तक़ीउद्दीन' उपदेशक भी दिल्ली की जामामसजिद में व्याख्यान देते हुए उसके दोहे और कवित्त पढ़कर लोगों को मुग्ध कर देता था। एक दिन किसी मौलवी ने कहा कि मसजिद में यह हिन्दी-कविता क्यों पढ़ी जाती है तो शेख़ ने कहा कि इसके भाव सब सूफ़ियों और क़ुरान की शिक्षाओं से मिलते हुए हैं। इस बात से जो मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदउनी ने अपने इतिहास में लिखी है यह सिद्ध होता है कि उस समय हिन्दी की कविता मुसलमानों में ख़ूब समझी जाने लगी थी और फिर कोई समय ऐसा नहीं था कि जो मुसलमान कवियों से

ख़ाली रहा है। हमको हिन्दी-पुस्तकों की खोज में कई मुसलमान कवियों का पता लगा है और कई ग्रंथ भी उनके रचे हुए मिले हैं। परन्तु विस्तारभय से हम यहाँ केवल उनके नाम किंचित् परिचय सहित प्रमाणस्वरूप लिख देते हैं।

१ अकबर (बादशाह)
२ अनवरख़ाँ
३ अनीस
४ अब्दुल रहमान
५ अलहदाद
६ अलीमन
७ अहमद
८ आज़म
९ आदिल
१० आरिफ़
११ आलम
१२ आसिफ़
१३ इनशा
१४ कमाल
१५ क़रीम
१६ क़ाज़ी अकरम
१७ ख़ान
१८ ख़ान आलम (नवाब)
१९ ख़ान सुलतान
२० ख़ुसरो
२१ ग़ुलामी
२२ जमाल
२३ जलील
२४ जानजानाँ
५ ज़ुलकरनैन
६ ज़ैनुद्दीन
ताज
तानसेन
दाऊद
दानियाल (शाहज़ादा)
दानिशमंद ख़ाँ
३२ दिलदार
३३ दिलाराम
३४ नज़ीर
३५ नबी
३६ नवाज़
३७ नियाज़
३८ निशात
३९ पंथी (मिर्ज़ा रोशन ज़मीर)
४० प्रेमी (शाह बरकत)
४१ फ़रीद
४२ फ़ज़ायलख़ाँ
४३ फ़हीम
४४ बाज़ीद
४५ बारक
४६ मदनायक (निज़ामुद्दीन बिलगरामी)
४७ मलिक मोहम्मद जायसी
४८ मलिक नूर मोहम्मद
४९ महबूब
५० मीरमाधो
५१ मीर रुस्तम
५२ मुबारक
५३ मोहम्मद
५४ रज्जबजी
५५ रहमतुल्लाह
५६ रसखान
५७ रहीम (नवाब ख़ानख़ाना)
५८ रसनायक (तालिबअली)
५९ रसिया (नजीबख़ाँ)
६० लतीफ़
६१ वजहन
६२ वहाब
६३ वाहिद
६४ साहिब
—६५ सुलतान

शाहशाको
शाहशाही
शेख़
शेखुगदाई
शेख़ सलीम
शाहम बीजापुरी
हिम्मत ख़ाँ
हिम्मत बहादुर (नवाब)
हुसेन
हुसेन मारहरी
हुसेनी

इनमें कई कई तो रहीम श्रौर ख़ान श्रालम वग़ैरः श्राप भी कवि थे वैसे कवियों की क़दर भी करते थे। संभव है कि इनके सिवाय श्रौर भी श्मान कवि हुए हों श्रौर श्रब भी श्रमीरश्रली-जैसे श्रच्छे कवि मुसलमानों में विद्यमान हैं।

प्रायः सबही मुसलमान बादशाह हिन्दी भाषा हिन्दी-कविता के समझते थे श्रौर कई कई तो भी थे श्रौर स्वयं कविता भी करते थे। श्रकबर शाह की फुटकर कविता बहुधा कवियों के है। जहाँगीर की कविता तो कोई नहीं सुनी रन्तु इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दी के श्रच्छे दोहे श्रौर कवित्त उसके याद थे। उसने श्रपनी चर्या में जिसका नाम तुज़ुक जहाँगीरी है कई ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे उसको हिन्दी ता का याद होना प्रतीत होता है। वह संवत् ७४ के वृत्तांतों में कुमुदनी श्रौर कमल की व्याख्या हुए कहता है "कि यह बंधी हुई बात है कि उ दिन को फूलता है श्रौर रात को सुकड़ जाता कुमुदिनी दिन को मुँद जाती है श्रौर रात खिलती है। भौंरा सदा इन फूलों पर बैठता है इनके भीतर जो मिठास होती है उसके चूसने ग्ये इनकी नालियों में भी घुस जाता है। बहुधा होता है कि कमल मुँद जाता है श्रौर भौंरा रात उसी में बैठा रहता है। इसी तरह कुमुदिनी में। फिर उनके खिलने पर भौंरा निकल कर उड़ जाता है। इसी लिये हिन्दुस्तान के कवीश्वरों ने बुलबुल के समान उसको फूलों का रसिया मान-कर श्रपनी कविताश्रों में उत्तम युक्तियों से उसका वर्णन किया है।"

"तानसेन कलावंत मेरे बाप की सेवा में रहता था। वह श्रपने समय में श्रद्वितीय हो नहीं था वरन किसी समय में भी उनके तुल्य गवैया नहीं हुश्रा है। उसने श्रपने ध्रुपद में नायका के मुख के सूर्य की, उसके श्राँख खोलने के कमल के खिलने श्रौर उसमें से भौंरे के उड़ने की उपमा दी है। दूसरी जगह कनखियों से देखने के भौंरे के बैठने से कमल का हिलना कहा है।"

श्रब दो एक दृष्टांत इस बादशाह के कवियों के निहाल करने के भी लिखे जाते हैं।

(१) संवत् १६६५ के वैशाख बदि ११ के वृत्तांतों में लिखा है "कि राजा सूरजसिंह[1] हिन्दी भाषा के एक कवि को भी लाया था जिसने मेरी प्रशंसा में इस भाव की कविता भेंट की कि जो सूरज के कोई बेटा होता तो सदाही दिन बना रहता। रात कभी नहीं होती क्योंकि सूरज के श्रस्त होने पर वह उसकी जगह बैठकर जगत् के प्रकाशमान् रखता। परमेश्वर धन्य है जिसने श्रापके पिता के ऐसा पुत्र दिया जिससे उनके श्रस्त होने पर लोगों में शोक-रूपी रात्रि नहीं व्यापी, सूरज बहुत पश्चात्ताप करता है कि हाय मेरा भी कोई ऐसा ही बेटा होता जो मेरी जगह बैठ कर पृथ्वी में रात नहीं होने देता जैसा कि श्राप के भाग्य के चमत्कार श्रौर न्याय के तप-तेज से ऐसी भारी दुर्घटना हो जाने पर भी संसार इस प्रकार से प्रकाशमान् हो रहा है कि मानो रात का नाम श्रौर निशान ही नहीं है।"

"ऐसी नई युक्ति हिन्दी भाषा के कवियों की कम सुनी गई थी। मैंने इसके इनाम में उस कवि को हाथी दिया। राजपूत लोग कवि को चारण कहते हैं।

(२) वैशाख बदि ३० मंगलवार संवत् १६७५ को जहाँगीर ने श्रहमदाबाद गुजरात में वृत्तांत

(१) मारवाड़ का राजा

[illegible]

(इस हिन्दी [illegible] करते हैं।"

[illegible] हिन्दी कविता के समझने [illegible] में बढ़ गया था। [illegible] बादशाहों की मातृभाषा तो तुर्की थी और घर में तुर्की ही बोला करते थे परन्तु हिन्दुस्तान में राज करने से हिन्दी भी बोलने लगे थे और शाहजहाँ की मातृभाषा तो [illegible] हिन्दी ही थी। जब यह जन्मा था तो अकबर बादशाह ने उसे अपनी बड़ी बेगम सुल्तान रुकैया को सौंप दिया था कि तुम्हारे संतान नहीं है इसी को अपना बेटा समझ कर पालो। बेगम की बोली तुर्की थी इस लिये वह शाहजहाँ से तुर्की ही बोलती और बहुत चाहती थी कि यह भी तुर्की ही बोला करे परन्तु शाहजहाँ को तुर्की पसन्द नहीं थी और न उसका जी तुर्की बोलने में लगता था।

मुल्ला अब्दुल हमीद ने बादशाहनामे में लिखा है कि "हज़रत बादशाह ज़ियादा तो फ़ारसी बोलते हैं और जो लोग फ़ारसी नहीं जानते उनसे हिन्दुस्तानी बोली में बातें करते हैं, कुछ तुर्की भी समझते हैं परन्तु बोलते कम हैं। बोलने का अधिक अभ्यास नहीं है। बचपन में इस भाषा की तरफ़ कुछ रुचि नहीं थी। मिर्ज़ा हिंदाल की बेटी और बाबर बादशाह की पोती रुकैया सुलतान जो बादशाह के लालन पालन को नियत हुई थी उसकी बोली तुर्की थी और वह महल में तुर्की बोला करती थी। [illegible] को ज़बरदस्ती तुर्की बोलना सिखाती [illegible] को यह बोली नहीं सुहाती थी बहुधा शब्द तो समझ में आ गये [illegible] तरह से बोलना नहीं आया। एक दिन [illegible]

[illegible] बोलता है।"

[illegible] दिया कि हज़रत के [illegible] न ख़ुद [illegible] जिसे इस [illegible] को पूरा नहीं किया।"

[illegible] के [illegible] है कि शाहजहाँ तुर्की नहीं बोलता था, [illegible] बोलता था।

शाहजहाँ को भी हिन्दी कविता से अधिक प्रेम था। वह अपने दरबार-कवीश्वरों में से [illegible] राय, [illegible] हरनाथ महापात्र और सुन्दर [illegible] की कविता बहुत पसंद करता था और इनको बड़े इनाम और इकराम देता था।

कहते हैं कि जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह को शाहजहाँ बादशाह [illegible] से ही कविता करना आया था। एक बेर शाहजहाँ ने महाराजा से एक कवित्त का अर्थ पूछा था। जब महाराजा से पूरा पूरा अर्थ न हो सका तो सूरतमिश्र को हुक्म [illegible] कि राजा को कविता सिखाओ और कवि बना[illegible]

शाहजहाँ का बेटा दाराशिकोह तो हिन्दी [illegible] संस्कृत के समझने में अपने बाप दादाओं [illegible] भी बढ़ कर निकला था जिसने स्वयं उपनिषदों का उल्था फ़ारसी में किया था परन्तु औरङ्ग़ज़ेब हिन्दुओं का द्वेषी हो कर भी हिन्दी भाषा और हिन्दी कवि[illegible] से विमुख नहीं रहा था। आगरे की छपी हुई मु[illegible]सिर आलमगीरी में लिखा है कि १० जमादिउल अव्वल सन् १००१ (फागुन सुदि ११ संवत ११४१) को बादशाह के डेरे दक्षिण में कृष्णानदी पर गाँव बदरी के पास हुए। एक दिन सलाबतख़ाँ मीर तुज़ुक ने बादशाही अदालत की कचहरी में पहिले एक आदमी को बादशाह की [illegible]

यह अर्ज़ करता है कि मैं बङ्गाल के दूर देश से इसी होने के वास्ते आया हूँ सो मेरा मनोरथ पूरा हो जाहिए। बादशाह ने मुसकरा कर खीसे में हाथ डाला और १००) के सोने और चाँदी के 'चरन' अशरफ़ियों को दे कर फ़रमाया कि इसको दे दो और कहो कि हम से जो रोकड़ लाभ लिया चाहता था यह है। जब ख़ान ने यह रक़म उसको दी वह बग़ैर कर नदी में कूद पड़ा। ख़ान चिल्लाया कि वह तो डूबता है। बादशाह के हुक्म से तैराकों ने उसको नदी में से पकड़ लाये। तब हज़रत ने दरवाज़े के भीतर मुँह करके सरदारों से कहा कि एक आदमी बङ्गाल से आया है उसके सिर में यह झूठा ख़याल समाया हुआ है कि मेरा मुरीद (चेला) हो जावे। दोहरा—

चूहा खड़ा न मावे तरकल बंधी उज्ज।
तोले नंदी मादरखेंदी खदी नलज्ज ॥१॥

इसको मियां फ़र्रुख़सहरंदी के पास ले जाओ और कहो कि इसको मुरीद कर लो और टोपी दे दो।

बड़े खेद की बात है यह दोहरा जिसके लिये यह कथा लिखी गई है ठीक ठीक पढ़ने में नहीं आता और इसका कारण यही है कि फ़ारसी लिपि में हिन्दी भाषा सही नहीं लिखी जाती।

कलकत्ते की छपी हुई प्रति में यह दोहरा यों छपा है।

टोपी लंदे बाघरी देंदे खरे निलज्ज।
चूहा खड नमावली तोकल बंधे छज्ज ॥१॥

तज़करे चग़त्ता में भी यह दोहा ऐसा ही संदिग्ध छपा हुआ है।

रुक़्क़ेआत आलमगीरी में लिखा है कि एक बेर शाहज़ादा मोहम्मद आज़म ने कुछ आम बाप के पास भेजे थे और उनके नाम रखने की प्रार्थना की थी। औरंगज़ेब ने बेटे को लिखा कि तुम स्वयं विद्वान् होकर बूढ़े बाप को क्यों ऐसी तकलीफ़ देते हो, तुम्हारी ख़ातिर से सुधारस और रसनाविलास नाम रक्खा गया।

बहुत से हिन्दी के हिन्दू-कवियों ने भी मुसलमान बादशाहों से हिन्दी-कविता पर बड़े बड़े मान-सम्मान और इनाम पाये हैं। अकबर आदि मुग़ल बादशाहों में तो कविराय का एक पद ही नियत हो गया था जो हिन्दू-कवियों को मिला करता था। राजा बीरबर को सबसे कविराय का ही ख़िताब मिला था। बीरबर के कविराय होने से पहिले एक कविराय और भी था जिसको बादशाह ने उड़ीसे के राजा मुकंददेव के पास भेजा था। शाहजहाँ के समय में सुन्दर कविराय और जगन्नाथ महा कविराय था। दूसरा ख़िताब महापात्र का भी था जो नरहर और हरनाथा वग़ैरा कवियों को मिला था और ऐसे ही और भी बादशाहों के राज्य में हिन्दीभाषा के हिन्दू और मुसलमान कवि प्रतिष्ठा पाते रहे हैं जिनका वर्णन करने से लेख बहुत बढ़ जाता है। सारांश यही है कि मुसलमान बादशाहों और विशेष करके मुग़लों के समय में हिन्दी-कविता ने उनकी और उनके अमीरों की उदारता से बहुत उन्नति पाई है और अच्छे अच्छे हिन्दू मुसलमान कवि जिनमें से १७५ नाम सुजान-चरित्र में लिखे हैं इन्हीं के समय में हुए।

और तो क्या हिन्दी तथा ब्रजभाषा के साथ साथ ही डिंगल कविता की उन्नति भी मुग़ल बादशाहों के समय में ही हुई है जो राजपूतों और राजपूताने में विशेष कर के प्रचलित है। जैसे हिन्दी में कई भाषाओं के मिलने से उर्दू बोली निकल पड़ी है वैसे ही मारवाड़ी बोली में भी कई बोलियाँ मिल कर डिंगल भाषा बनी है जिसमें राजपूताने के चारण, भाट और सेवक जाति के कवि कविता करते हैं।

डिंगल कविता पहिले तो बहुत विस्तृत नहीं थी परन्तु जब मुग़ल बादशाहों के समय में राजपूतों का ऐश्वर्य बढ़ा तो उसके साथही डिंगल भाषा के कवियों के भी भाग खुल गए जो राजाओं की रीझ और मौज से तो लाख पसाव पाते ही थे अब उनके प्रसंग से बादशाहों तक भी पहुँच कर उनसे और

उनके उदार अमीरों से भी अपनी धनघड़[1] कविता के पारितोषिक पाने लगे और डिंगल भाषा राजपूताने के जंगलों से निकल सभ्य बादशाहों के मुँह लगने लगी।

चारणों के कहने से तो अकबर बादशाह भी डिंगल भाषा के कवि थे क्योंकि वे उनकी कविता भी पढ़ा करते थे।

जहाँगीर ने एक चारण की जिस कविता का भावार्थ अपनी दिनचर्य्या में लिखा है वह डिंगल भाषा की ही थी। शाहजहां और औरंगज़ेब भी डिंगल भाषा जानते थे ऐसा चारणों के ग्रंथों से पाया जाता है। नवाब खानखाना तो डिंगल भाषा का रसिक ही नहीं था वरन् उसकी कविता भी करता था। डिंगल कवियों में उसका भी नाम लिखा जाता है। सारांश यह है कि यह डिंगल कविता भी मुग़लों के समय में उन्नति से विमुख नहीं रही थी। इस भाषा के नीचे लिखे प्रधान प्रधान कवि मुग़ल बादशाहों के समय में ही हुए हैं।

१ पीथल (पृथ्वीराज राठोड़)
२ लक्खा, बारहठ।
३ दुरसा, आढा।
४ सूराचन्द, तापरिया।
५ झूला, साईंयाँ।
६ हापा,
७ माला, साँदू।
८ संकर, बारहठ।
९ रंगरेला, बीटू।
१० ईसरदास, बारहठ।
११ जाड़ा, मेहू।
१२ ओपा,
१३ आसा, बारहठ।
१४ राजसिंह।
१५ अल्लू।
१६ पाड़खान, आढा।
१७ किसना, आसिया।
१८ हेम, सामोर।
१९ कसोदास, गाडण।
२० जगा, खिड़िया।
२१ हुकमीचन्द, खिड़िया।
२२ नरहरदास, बारहठ।
२३ करनीदान, कविया।
२४ बीरभाण, रतनू

संगीत

हिन्दी-संगीत भी मुसलमान बादशाहों में फैला क्योंकि बहुधा बादशाह राग-रंग के रसिया नाच, गान बिना वे और उनके अमीर अपने जीव को फीका समझते थे और इसकी सामग्री प्राचीन समय से दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में बहु रहती आई है। गोपालनायक, बैजू, धूनायक, चिरजू नायक, तानसेन, रामदास, और सूरदास, आदि बड़े बड़े गवैये इन बादशाहों के समय में ही हुए हैं जो विशेष करके हिन्दीभाषा के गीत और गाने गाते थे। उनके संगत से बहुत से मुसलमान गवैये भी उत्पन्न हो गए थे जिनकी संतान आज तक इस विद्या की धनी बनी हुई है। भाँति भाँति के हिन्दी-गीत बनाने वाले तथा राग-रागिनियों के जोड़ने वाले भी अनेक कवि अमीर ख़ुसरो से लेकर लखनऊ के अंतिम बादशाह वाजिद अलीशाह तक हो गए जिनका नाम हिन्दी-संगीत में सदा अमर रहेगा। हिन्दू-गवैयों का मुसलमान बादशाहों से मानसम्मान भी राजाओं से बढ़ कर किया है। गोसाऊ बादशाह ही

---

(१) दरबार जोधपुर के कविराजा महामहोपाध्याय मुरारदानजी ने वार्डिक मानिकल के प्रसंग में जो अपनी अनुमति कलकत्ते के महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसादजी शास्त्री को लिखी थी उसमें डिंगल भाषा का अर्थ अनघड़ पत्थर या मिट्टी का ढगल (ढेला) बताया है। आजकल गवर्नमेंट का ध्यान वार्डिक क्रानिकल की ओर बहुत लगा हुआ है जो विशेष करके डिंगल भाषा में है जिसके लिये श्री दरबार मारवाड़ ने बहुत सा रुपया व्यय करके जोधपुर में एक वार्डिक कमेटी बनाई है जिसकी प्रधानता इसी उदाहरण से सिद्ध होती है कि मारवाड़ राज्य के प्रधान मंत्री उसके प्रेसीडेंट हैं।

अलाउद्दीन खिलजी जैसे कट्टर और अभिमानी बादशाह ने तख़्त पर अपने बराबर बैठा कर उसका गाना सुना था। अकबर ने तानसेन को बड़े आदर-सत्कार से बुलाकर पहिले ही मुजरे में १ करोड़ दाम का इनाम दिया था। बाबा रामदास को बैरमख़ाँ ख़ानख़ाना ने १ दिन में १ लाख टके चाँदी के दे डाले थे। महापात्र जगन्नाथराय त्रिशूली के बराबर शाहजहाँ ने रुपये तौल दिये थे और महा कविराय की पदवी देने के सिवा गान-विद्या में भी उसका पद दरबार के सब गवैयों से ऊँचा ही रक्खा था। शाहजहाँनामे में जहाँ बड़े कलावत लाल ख़ाँ को गुण-समुद्र की उपाधि मिलने का उल्लेख है वहाँ कई कलावतों के गुण-वर्णन करके अंत में यही लिखा है कि इस आनन्द मंगल के समय में तो सब राग-रागिनियाँ बनाने और गानेवालों का अग्रगण्य तो जगन्नाथराय महाकविराय ही है।

सबही हिन्दी भाषा की चीज़ें गा गा कर मुसलमान बादशाहों को रिझाया करते थे और उनसे लाखों रुपये के इनाम और जागीरें पाते रहते थे। बादशाहों के हिन्दीभाषा समझने से ही हिन्दी गवैयों का कल्याण और उनको लाभ होता था।

——:o:——

अर्थात् नागरी अक्षरों में और उर्दू में सामने बराबर में छपते रहे। जब से नागरी अक्षरों को उर्दू अक्षरों के स्थान में प्रचलित किया है तब से नागरी मज़मून के बराबर अँगरेज़ी-अनुवाद छपता है। सारांश, यद्यपि राजभाषा मरहठी है तथापि गज़ट में आमा-पत्र, प्रसिद्धपत्र इत्यादि सब नागरी और अँगरेज़ी में छापे जाते हैं।

१२—मध्यभारत की बड़ी बड़ी रियासतों में से केवल इन्दौर ने ग्वालियर का अनुकरण करने में उत्साह और साहस दिखाया है। इन्दौर भी ग्वालियर की तरह मरहठा राजधानी है तिस पर भी हिन्दी-प्रचार का काम इन्दौर ने किया है इसके लिये धन्यवाद के लिये यह भी पात्र है। इन्दौर राज में नागरी प्रचार के इतिहास में दीवान राय नानकचंद साहब का नाम अमिट रहेगा।

१३—खेद का विषय है कि महाराष्ट्र-जातीय राजा लोग तो नागरी अक्षरों के प्रचार के काम में योग देकर सुयश लूटें और उन्हीं के बराबरवाले अन्य राजा गण जैसे जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, धौलपुर इत्यादि के राजा महाराजा जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, नागरी अक्षर जिनकी वंशानु-वंश की लिपि है वे उर्दू अक्षरों को हटाने में हिचकिचावें। इस विषय में सभा की सेवा में मेरी विनीत सूचना है कि वह एक प्रतिनिधि मंडल जिसमें एक महाशय स्थानीय सज्जन हो हरएक दरबार की सेवा में उपस्थित होकर नागरी-प्रचार के पवित्र काम में उनका ध्यान आकर्षित करें। आशा है कि मध्यभारत में नागरी प्रचार का काम जितना आवश्यक है उतनाही सुकर भी होगा।

१४—रही अन्य रियासतें जहाँ हिन्दी को छोड़ अन्य भाषाएँ प्रचलित हैं उनमें भी बड़ौदा अग्रसर है। बड़ौदा की देशभाषा गुजराती है तथापि श्रीमान् बड़ौदा-नरेश का हिन्दी भाषा के विषय में जो अनुराग है वह गत वर्ष में उनकी राजधानी में [illegible] हुआ था उसी के साथ [illegible] की भी बैठक हुई थी उसके अधिवेशन में नागरी अक्षरों को भारतवर्ष की लिपि बनाने और हिन्दी भाषा के राष्ट्रभाषा [illegible] के विषय में गंभीर विचार हुआ था, उसमें मा[illegible] हो सकता है। महाराजा बड़ौदा भी महाराष्ट्र जाति [illegible] हैं। उनकी मातृभाषा मराठी और देशभाषा गुजरा[ती] है तिस पर भी उनका हिन्दीभाषा पर प्रेम होना सराहनीय है।

१५—अब बड़ी रियासतों में हैदराबाद निज़ाम का राज रहा। निज़ाम के राज में मराठी तेलगू [illegible] व्यवहार प्रजा के कारण होता है परन्तु दरबार की लिपि उर्दू है। इस कारण राजा और प्रजा दोनों ही को भिन्न भाषा और भिन्न लिपि के कारण कष्ट उठाना पड़ता है। यह त्रुटि अँगरेज़ी भाषा और लिपि ने अंशतः मिटाई है तथापि उसका कदापि सर्व-जन की भाषा या लिपि होजाना संभवनीय नहीं। ऐसे ठिकाने में नागरी लिपि और हिन्दीभाषा का प्रचार बहुत उपयोगी होगा।

१६—कई छोटी छोटी रियासतें ऐसी हैं जैसे रायपुर वगैरा जहाँ उर्दू लिपि ही का अधिक प्रचार है, वहाँ प्रजा की सुविधा के लिये नागरी अक्षरों का प्रचार बड़ा लाभकारी होगा।

इसके लिये मेरी अल्प समझ में भारतवर्ष के संपूर्ण दरबारों की सेवा में एक प्रतिनिधि[मंडल] (रिप्रेसेंटेशन) भेजा जाय और उनको अनुमति और विचार-सभा में भेजने के लिये निवेदन किया जाय तो ठीक होगा। इसका यह लाभ होगा कि स्थानिक विरोध क्योंकर है, दरबारों को नागरी प्रचार के काम को उठाने में क्या आपत्तियाँ और बाधाएँ हैं उनसे सभा परिचित हो जायगी ताकि प्रतीकार करने के लिये उपक्रम किया जाय।

इस लेख से मालूम हो जायगा कि मराठा रियासतों ने नागरी-प्रचार और हिन्दी-भाषा के लिये अनुकरणीय चेष्टा की है। आशा है कि उत्तरभारत और मध्यभारत के राजा लोग और प्रजागण इस बात की ओर ध्यान देंगे। भारत का भाग्य ऐसा है

देखाता है कि अन्य लोग ते। उसकी भलाई के लिये यत्न करें और जिनका असली कर्तव्य है वे पीछे हटे रहें, ऐसा प्रवाह मध्य और उत्तरभारत के लिये कहा जाता है। उसे मिटाने का साहस और बुद्धि ईश्वर समस्त राजा और प्रजागणों को देवे हमारी यही प्रार्थना है।

——।०।——

नाटक और उन्यास।

[बाबू गोपालराम लिखित।]

उपदेश जगत् का बहुत बड़ा बोझा साहित्य के इन्हीं दो अटूट और अजर पहियों पर रहता है। ये दोनों चक्के ऐसे पक्के और प्रौढ़ हैं कि जबसे जगत् की सृष्टि हुई और उपदेश का जब से उपयोग होने लगा तबसे ये दोनों सदा सब देश के साहित्य में उपदेशवहन का कार्य्य निरन्तर करते आते हैं किन्तु तनिक भी नहीं घिसे, न नाकाम हुए।

मतलब हमारे कहने का यह है कि जब किसी देश के मर्म्मज्ञानी साहित्यसेवी ने देशसुधार का काम अपने माथे उठाया तब उपदेश का काम इन्हीं दो उपन्यास और नाटकों से लिया है।

जो साहित्य का इतना प्रधान और इतना आवश्यकीय अङ्ग है, जिस पर साहित्य-संसार का इतना बड़ा भार है, जिसकी महिमा सब देशों के साहित्य में इतनी ऊँची है, उसकी कुछ गति, विधि जानना और कुछ लेखा हिसाब रखना हिन्दी-साहित्य-स्नेही और साहित्य-सम्मेलन के लिये बहुत जरूरी है।

यह हम जानते हैं कि जिस अँगरेज़ी-साहित्य में उपन्यास और नाटकों की बड़ी चहल पहल है और जिसके बाम्य संसार में इनकी टेटमटेस है उसी अँगरेज़ी के इन धुरन्धर विद्वानों के सामने इस विषय पर मेरा कुछ कहना सूरज को चिराग़ दिख-लाना होगा लेकिन इसी भरोसे से कुछ कहने की इच्छा हुई है कि बड़े लोग कम समझ बालकों की बात पर झनझाने और हँसने नहीं बल्कि उनकी भूल और ढिठाई बिसार कर उनके भाव और उत्साह के विचार से .खुश होकर उनकी बातें सुनते हैं।

जो लोग नई रोशनी की चकाचौंधी में अपने प्राच्य-साहित्य की कोई ख़बर नहीं रखते अथवा अपने घर की सम्पत्ति बिसार कर पश्चिमी सन्
बाढ़ में बह रहे हैं वे कह सकते हैं कि नाट
उपन्यास विलायती वस्तु हैं। किन्तु उन मह
से हम यह नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि न
और उपन्यास विदेशीय वस्तु नहीं हैं, न हमारे
में विलायत की नक़ल से चले हैं।

जैसे सब देशों में साहित्य के इन दोनों अंगों की
स्थिति और उन्नति है और हुई वैसेही इस देश में भी
है, इतनाही नहीं बल्कि यह ज़ोर से कहा जा सकता
है कि हमारे देश में नाटक और उपन्यास की उन्नति
चर्म्म-सीमा को पहुँच गई थी।

इसके प्रमाण में हम कविवर बाणभ
कादम्बरी नहीं पेश करते, न कविकुलतिल
कालिदास की शकुन्तला का नाम लेना चाहते।
उत्तररामचरित और मालतीमाधव की बात
नहीं कहते। कहते हैं साहित्य की यह बात जो आ
आप अपने देश भर में, प्रान्त प्रान्त, नगर नगर, और
गाँव गाँव और घर घर में देख सकते हैं, और जिसका प्रत्य
आज भी आँखों के सामने मौजूद है, लेकिन सब लोग
उधर ध्यान नहीं देते। और जिनका ध्यान ग
गया भी है तो उसे तुच्छ और अकिञ्चित्कर सम
उन्होंने छोड़ दिया है। यही कारण है कि कुछ लोग
आज अपने देश के इस उज्ज्वल और श्याम सर्वाङ्ग
को अपनाने में विदेशीय माल अथवा विलायती
वस्तु कहते और समझते हैं।

दिन भर के काम-काज से निपट कर जब आप
घर के लोग अपनी बैठका में विश्राम करते हैं
जिनको सदा स्वतंत्र भाव से पेट भरना और सुख
सरकार के राम राज्य में निज अपने बाल बच्चों सहित
दिन बिताने का सौभाग्य है अथवा जिनको पेट के
निमित्त पराई सेवा के लिये पराधीन होकर अपने
से दूर रहना और वहीं के अपरिचित
में समय काटना पड़ता है ऐसे दोनों प्रकार के

इस विश्राम के समय जब साथ में दो चार और बैठे हैं तब यह बात उठती है कि भाई कोई क़िस्सा कहो। इसी को देहाती कहते हैं चच्चा एक कहानी कहो। होश सम्हाले हुए बालक बालिका माता, पिता, काका, ताऊ से कहते हैं—एक ठो कहनी कह।

बड़े बूढ़े, भाई बहन या पड़ोसी जिनसे यह अनुरोध किया जाता है वह एक राजा या सात राजा अथवा राजा की बेटी या राजा के कुँवर की कहानी कहते हैं। उन कहानियों में करुणा, वीर, शान्त, वियोग, मिलन, रोना, गाना, भयानक, रुद्र सब बातें हैं। क़िस्सा कहनेवाले ऐतिहासिक हुए तो राजा हरिश्चन्द्र की कहानी, गोपीचन्द्र, योगी भरथरी का क़िस्सा; रसिया हुए तो चार यार, छबीली भटियारी का क़िस्सा; कहने वाला मसखरा हुआ तो यज्ञमूर्ख अहीरों का क़िस्सा होने लगा, जिनमें से एकने ससुराल जाने के लिये माता का बतलाया नाक के सामने का सीधा रास्ता तै करते हुए बीच में ताड़ का पेड़ देख कर ऊपर चढ़ जाना और सीधा उतर कर तो आगे बढ़ना ठीक समझा था।

कहीं कहनेवाले पुराण के ज्ञाता हुए तो सीता-बनवास की कथा, वसुदेव देवकी की कथा या ऋषि उद्दालक की दातव्यता कहने लगे। जो जिस ढंग का हुआ वह उसी तरह का ऐतिहासिक या कल्पित सुना अथवा समझा हुआ क़िस्सा कहने लगता है।

उन कहानियों में कोई बिलकुल सच्चे सत्य-हरिश्चन्द्र, रामलछमण या क़तल हक़ीकत राय की तरह, कोई आकाश-पाताल बाँधनेवाले आल्हा ऊदल के समान, कोई आसमान में घर बनाने वाले हातिमताई की तरह और कोई वीर परोपकारी नायक विजयमल की तरह गद्य पद्य दोनों में होते हैं।

बालक, बड़े, बूढ़े स्त्री-पुरुष में इन कथा-कहानियों की इतनी रुचि और इतना चलन क्या आप लोगों को नहीं बतलाते कि हमारे देश में पहिले उपन्यासों से उपदेश देने का कितना अधिक प्रचार था?

यह उपन्यासों की बात हुई। अब नाटकों की बात लीजिए। जहाँ दस लड़के कुछ छोटे कुछ बड़े कुछ अबोध, कुछ सुबोध, कुछ सभी शकल के, कुछ पक्की समझ के जमा हुए कि उन्होंने नाटक खेलना शुरू कर दिया।

आप बालकों की दुनिया में जाइये तो देखियेगा कि कोई दल बाँधकर स्नान का नाटक खेल रहा है। एक चौतरे पर से कुछ बालक पाँव फैला कर स्नान कर रहे हैं, कोई नीचे उतर कर डुबकी लगाता है, कोई धोती उतारकर निचोड़ रहा है। और कोई जलचारी मगर घड़ियाल बनकर उन्हें पकड़ता और घसीटता है। कोई चिल्लाकर भागता, कोई गिरता और धूल पोछ कर उठता, कोई मदद करके जलचारी से अपने साथी की रक्षा करता है।

इस भौंका भपटी में जो धक्का और चोट लगती है उसको कुछ परवा न करके लड़के उठते हैं और धोती पहन कर सूखी ज़मीन में जाने का नाट्य करते हैं। इसको लड़के "घुडुआ कुडुआ का खेल" कहते हैं।

कहीं आप देखेंगे कि लड़कों ने बाज़ार बसाया है, दूकानें लगी हैं, तराज़ू से चीज़ें तौली जाती हैं। चीज़ों में देखियेगा कि ठीकरों के बताशे और मिट्टी के लड्डू बने हैं। ठीकरों के पैसे और ठीकरों ही के तिलवे हैं। किसी ने धूल का सत्तू और उसे बारीक़ छानकर मैदा बनाया है। ढेलों के गुड़ और कीचड़ का हलुवा बनाकर ख़रीद बिक्री जारी कर दी गई है।

कहीं ब्राह्मण के बालक सयाने हुए तो देखियेगा उन्होंने महल्ले भर के लड़कों को जमाकर कर्मकाण्ड का स्वाँग रचा है। आप पुरोहित बनकर पैतालिये संकल्प कराते फिरते हैं। पिण्डदान, दक्षिणा आदि देते हुए यजमान उनका आज्ञापालन कर रहे हैं। कहीं रेलवे का नाटक है तो चार छः लड़के गाड़ी बन कर एक दूसरे से हाथ मिलाये चल रहे हैं। सबसे आगे का लड़का एञ्जिन बनकर

मुँह से भग भग भग भग भक भक बोलता, कभी सीटी देता, कभी ठहरता, कभी सरपट दौड़ाता है। कोई सिगनलमेन, कोई खलासी बना है, कोई घंटा बजाता है। कहीं घुड़दौड़ रची गई है और यहाँ एक लड़का दूसरे को अङ्गोछे की लगाम लगाकर दौड़ाता और डरबी और सेण्टलेजर की दौड़ करा रहा है। कोई राजा बना न्याय करता है। दारोग़ा साहब असामी को पकड़ कर मेजिस्ट्रेट के सामने लाते हैं और क़ायदे से गवाह पेश होते हैं। इजहार होते हैं, फ़ैसला सुनाया जाता है। बेत लगते हैं। यह सब बालकों का साहित्य देख कर क्या नहीं समझा जाता कि आपके लड़के आप की बेख़बरी में कैसा नाटक खेल रहे हैं?

लड़कों का जो दल भेड़ बकरी बनकर बाघ की लीला करता है उसका नाटक हमने पहाड़ी जगहों में देखा है। रोहतासगढ़ मण्डल आदि जङ्गल-मय स्थानों के लड़के बाघ के शिकार और हड्कुआ का नाटक किया करते हैं।

कहने का मतलब यह कि नाटक और उपन्यासों का उपयोग हमारे देश में सदा से है और यहाँ सब से अधिक था। और उसी का यह फल है कि आज भी बालक बड़े बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब में उसका प्रचार है। जिन उपन्यास और नाटकों का प्रचार साहित्य-जगत् में इतना वाञ्छनीय है, जिनके समान उपदेश के लिये साहित्य में दूसरा आधार ही नहीं समझा जाता उनकी इन दिनों हिन्दी-साहित्य में क्या दशा है? यही कह कर हम इस प्रबन्ध को समाप्त करेंगे।

पहिले हम नाटक की बात कहते हैं। हिन्दी भाषा को लल्लूलालजी के बाद सुन्दर शृंगार देने और उसे उन्नत करने में जैसे हिन्दी-प्रेमी, हिन्दी पाठक, हिन्दी-ग्रन्थकार, हिन्दी-समाचार-पत्र-सम्पादक और हिन्दी लेखक गोलोकविहारी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आन्तरिक सम्मान के साथ नाम लेते हैं और लेते रहेंगे वैसेही उसमें नाटक साहित्य-[illegible]ार दुर्दान्त अङ्ग पुष्ट करने के लिये भी भारतेन्दु का नाम साहित्य-जगत् में सदा सुप्रकाशमान सुव[illegible] अक्षरों से लिखा रहेगा। भारतेन्दु का यह यश [illegible] तक सातों समुद्र में जल रहेगा, जब तक आका[illegible] में नक्षत्रों की ज्योति दीप्त पड़ेगी, जब तक सूर्य [illegible] चन्द्र का नभ-मण्डल में चक्कर लगता दिखाई देगा तब तक अटल और अनघ होकर विराजमान रहेगा।

यह बात ठीक है कि भारतेन्दु के लिखने [illegible] पहिले भी हिन्दी में कुछ नाटक बने थे किन्तु उन[illegible] गिनती अनामिका की पोरों पर ही हो जाती थी। [illegible] उपन्यास भी श्रद्धास्पद मान्य भारतेन्दुजी ने [illegible] लिखे हैं। नाटक और उपन्यास ही नहीं किन्तु इति-हास, काव्यादि सब विषय के ग्रन्थ उन्होंने रचकर हिन्दी-साहित्य की सूखी वाटिका हरी भरी की [illegible] उन्हीं के सजाये साहित्योद्यान में आज हम [illegible] विचरण कर रहे हैं किन्तु कहने का तात्पर्य य[illegible] कि साहित्य के और अङ्गों की पुष्टि तो हिन्दी के [illegible] और सुलेखकों ने भी भारतेन्दुजी से पहिले अथवा पीछे की है, किन्तु नाटक जिसे नाटक कहना चाहिए भारतेन्दुजी के बाद आजतक कोई पचीस वर्ष के बने हुओं में पाँच भी नहीं मिलेंगे, कहते हिन्दी-लेख[illegible] का मस्तक नीचा हो जाता है। इस अवसर [illegible] किसी अच्छे बुरे नाटक का नाम लेकर समालोचन[illegible] करना और अमान्य के इस चढ़ते युग में किसी से [illegible] वैर बिसाहना हमको पसन्द नहीं है। इस कारण नाटक के विषय में हम इस से आगे कहना उचित नहीं समझते।

उपन्यास का नाम लेते भी डर लगता है। [illegible] काशी है और भारतवर्ष में उपन्यास के लिये [illegible] समय काशी का नाम बहुत ऊँचे गया है। उपदेश के लिये नाटक का जितना ऊँचा दरजा है उप-न्यास का उससे सूत भर भी नीचे नहीं है। अन्तर दोनों में इतना ही है कि नाटक में सब कुछ साज सरंजाम तैयार करके ठाठ बाट के साथ दर्शकों के सामने अभिनय दिखा दिया जाता है। इस कारण अच्छे काम करनेवाले [illegible]

काम ग्रौर बुरे कर्मवालों की दुर्गति सब सामने देखने का अवसर रहता है। किन्तु उपन्यास में सब बातें नहीं होतीं। केवल बातों ही से सब बातों का वर्णन करना होता है। इसी कारण एक दृश्य काव्य ग्रौर उपन्यास श्राव्य काव्य कहा है। इस दशा में नाटक स्वभाव ही से तना रोचक ग्रौर चित्त पर असर करनेवाला गा सो कहने की कुछ ज़रूरत नहीं है।

जिस उपन्यास में नाटक के समान कुछ ठाट ट नहीं, कुछ लक दक सजावट नहीं, कुछ हाव व नहीं केवल बातों से समझाना बतलाना है सको पाठकों का मन अपनाने के लिये दो ही ज़ें हैं एक भाषा दूसरी घटना।

भाषा ऐसी चुहुलदार हो कि पढ़ते ही मन ड़क उठे ग्रौर घटना इतनी मन खींचनेवाली हो कि पढ़नेवाला उसी में तन्मय हो जाय यही खक की बहादुरी है। वेदान्त ग्रौर फिलास्फी- ले सज्जन यहाँ तन्मय शब्द व्यवहार के लिए माफ़ करें। यहाँ ब्रह्मज्ञान के तन्मय से मतलब हीं है, न उपन्यास लेखक सबको योगी बनाने का वा रखते हैं।

उपन्यास-साहित्य का बड़ा मधुर अङ्ग है। जस ज़माने का उपन्यास है वह उपन्यास उस माने का इतिहास है। उस समय के देश काल ग्रौर समाज का उपन्यास मानों एलबम होता है। अच्छे ग्रौर उत्तम उपन्यास जिस ज़माने में बनते हैं उस समय की भीतरी बाहरी गुप्त से गुप्त ग्रौर प्रगट सब बातें उसमें मौजूद रहती हैं।

अगर हम इस ज़माने का कोई उपन्यास पढ़ने लगें ग्रौर पढ़ते पढ़ते जहाँ हमारे मन में यह बात आ गई कि ऐसा कैसे हो गया, अथवा ऐसे होते तो कभी नहीं सुना, बस वहीं समझना चाहिए कि उस उपन्यास लेखक की सब मिहनत मिट्टी में मिल गई।

मतलब कहने का यह है कि उपन्यास में वेही बातें लिखी जानी चाहिएं जो उस समय में होती हों जिस समय का उपन्यास है। उपन्यास के पात्रों का बर्ताव, व्यवहार, कार्य्यकर्तव्य, उनका फल, परिणाम सब वैसाही होना चाहिए जैसा उस समय हुआ करता है।

ऐसी कोई घटना अथवा ऐसा कोई काम जो कहीं नहीं होता, जब उपन्यास में आया ग्रौर पढ़ने वाले के मन में यह बात आई कि अरे! यह तो बिलकुल अनहोनी बात या अघटित घटना है या पाठक ने यह कह दिया—यार यह तो बिलकुल गप्प है वहीं ग्रन्थकार के उपदेश-कार्य्य की नाव डूब गई ग्रौर समझना चाहिए कि उपन्यास-लेखक ने अपनी सब मिहनत वहीं खो दी।

यह बात ठीक है कि उपन्यास के पात्र, उपन्यास की घटना ग्रौर उसके परिणाम सब स्वतंत्र होते हैं। लेकिन इस स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम आज इस समय की एक घटना का नाटक बनावें ग्रौर उसमें शकुन्तला की तरह लिख दें कि जब दुष्यन्त अपनी प्यारी को मुनि दुर्वासा के शापवश भूल गया तब मेनका अप्सरा आकाश से आग का शोला बनकर आई ग्रौर बिलखती हुई अपनी कन्या शकुन्तला को गोद में उठा ले गई। या सत्यहरिश्चन्द्र की तरह किसी दानवीर आधुनिक राजा का नाटक बनाकर उसके कुँवर की लाश रोहिताश्व के समान मरघट पर पहुँचावें ग्रौर कफन का टैक्स देने के लिये उसे फाड़ते समय त्रिलोक कँपा देने ग्रौर त्रिलोकीनाथ को वहाँ बुलाने की बात लिख देवें।

जिस समय की ये बातें हैं उस समय के ही नाटकों में यह सब घटना शोभा पा सकती है। इन दिनों की घटना के जो नाटक, उपन्यास बनाए जाते हैं उनमें अगर उस ज़माने की घटनाओं के समान घटना वर्णन हो तो वर्णन करनेवाला बावला बनेगा ग्रौर लोग उसकी हँसी करेंगे। तब उसकी मिहनत बेकाम होगी ग्रौर वह अपना (उपदेश का) काम कुछ नहीं कर सकेगा।

इस कारण स्वतंत्रता उतनी ही है जितनी पच सके। जिससे अजीर्ण होकर यक्ष्मा हुआ और अन्त को शरीर में सङ्कट पहुँचा वह स्वतंत्रता काहे की, यह तो आफ़त का पहाड़ हुआ। तब उपन्यास के पात्र, घटना और परिणाम स्वतंत्र यों होते हैं कि उनसे किसी व्यक्ति विशेष पर सोलहों आने लक्ष न प्रगट हो। इसी कारण नाटक और उपन्यास के पात्र, घटना और उनका परिणाम स्वतंत्र होना चाहिए कि उनका काम (उपदेश) हो जाय और व्यक्तिगत आक्षेप और द्वेष न हो।

जो घटना और घटना का जो परिणाम व्यास हो उसको उपन्यास में न लाना अथवा चुन चुन कर लाना और बाक़ी छोड़ देना उपन्यास को अधूरा रखना है। देश काल और पात्र के साथ जितना संबन्ध है वह सब लिखना ही चित्त उपन्यास-लेखक का कर्तव्य है। किसी निन्द्य कार्य्य का करनेवाला पात्र उसका संयोगवश उत्तम परिणाम पावे तो उसे उड़ा देना उचित नहीं उसे लिख कर और पात्रों से उसका अपवाद प्रकट कराना उचित है। क्योंकि ऐसा परिणाम कहीं कहीं पहिले देखा जाता है लेकिन उपन्यास लेखक अब ज़माने का इतिहास देखने में उसको नहीं करेगा तब देखेगा कि वह उत्तम परिणाम क्यों नहीं है और गम्भीरता से देखने पर उसका अन्तिम फल अवश्य शीघ्र पड़ेगा।

कुछ लोगों का कहना है कि उपन्यास में नीच स्वभाव के पात्रों का वर्णन कभी नहीं होना चाहिए। लेकिन इस तरह छान बीन कर रखने से उपन्यास पूरा नहीं हो सकता। उपन्यास में सब [illegible] रखना चाहिए। केवल ध्यान इसी [illegible] का रहना चाहिए कि नहिन कर्म का दुःखदायी परिणाम ऐसी दृढ़ता से दिखाया जाय कि पढ़ने वालों के चित्त पर असर करे। लेकिन यह भी इस सुन्दरता से सजाया जाय कि वहाँ [illegible] [illegible] न होने लगे।

[illegible] जो [illegible] है उसका [illegible] भाग [illegible] होने पर भी [illegible] देखा [illegible] होता है।

मिस्टर रेनल्ड इङ्गलैण्ड ही से नहीं बल्कि दुनि[illegible] से निकाल दिए जाते।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि जो बातें हो [illegible] वे सब उपन्यास में इस चतुराई से सजानी चाहि[illegible] कि पढ़नेवाले को उसके आदि से अन्त तक [illegible] बयानों पर आस्था उपजती जाय और उनके मन [illegible] यह बात बैठी रहे कि उपन्यास-लेखक सब बातें आँखों देखी हुई सत्य सत्य कह रहा है। सब कुछ ऐसा हो भी जिस पर पाठक को कलाम न [illegible] यही सर्वाङ्ग सुन्दर उपन्यास है।

कलाम दो तरह का होता है एक घटना [illegible] दूसरा भाषा पर। घटना की बात हम कह चुके [illegible] उपन्यास में वही घटना योग्य है जो उस समय हो[illegible] हो जिस समय का उपन्यास है।

रही भाषा की बात, उसमें इस बात को ध्यान [illegible] समझना चाहिए कि उपन्यास की भाषा के [illegible] होते हैं। एक वह जो उपन्यास लेखक की [illegible] हुई है, दूसरी जो उपन्यास के पात्रों की है। उपन्या[illegible] लेखक की भाषा तो उसके अभ्यास और ज्ञान [illegible] निर्भर करती है किन्तु पात्रों की भाषा में उपन्यास लेखक की चतुराई और ज्ञान दरकार है। जो पात्र जैसा है, उपन्यास में उसकी रहन सहन और शिक्षा जैसी बतलाई गई है उसी के अनुसार भाषा उसके मुँह से बोली जाती है। एक पढ़ी लिखी शिक्षि[illegible] बाला के मुख से लखनऊ की कुँजड़िनों की [illegible] बोली सुनाना, अथवा चौक की भटियारियों से एक पण्डिता के समान शब्दोच्चारण कराना [illegible] अयोग्य है। एक मज़दूर या ख़िदमतगार से [illegible] या फ़ारसी अरबी के शब्द कहलाना या एक [illegible] अथवा मौलवी से शुद्ध [illegible] कहलाना उपन्यास लेख[illegible] [illegible] करना है।

[illegible] बात [illegible] में नहीं होने पर [illegible] समाज [illegible] अनुचित है।

में यह दोष है तब जो चाहे उस पर उँगली बतलावे हमको उस दोष से मुक्त होना ही उचित है। .खुशी की बात है हिन्दी-लेखकों का यह दोष बहुत कुछ दूर हुआ है। भरोसा है कि समालोचकों की चाबुक लगने से यह कलङ्क जो और भाषाओं में पूरी मात्रा से मौजूद है हमारी हिन्दी से दूर हो जायगा।

दूसरी भाषाओं से अनुवाद कैसा होना चाहिए? अनुवाद के लिये कैसी योग्यता चाहिए? "ओरिजिनल" लिखने से अनुवाद करने में कितनी कठिनता और पराधीनता होती है ये सब बातें आज इस अवसर पर नहीं कहेंगे। उससे प्रबन्ध ही नहीं बढ़ेगा बल्कि प्रसङ्ग से बाहर बात होगी। यदि भगवान् ने इस सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन का शुभ दिन दिखाया तो दूसरी भाषाओं से अनुवाद विषय पर ये सब बातें कही जाँयगी।

कहना इस समय यह है कि हिन्दी का उपन्यास-साहित्य इन दिनों बङ्गभाषा ही के अनुवादित उपन्यासों से भर रहा है। जैसे स्वनिर्मित उपन्यास लिखने की रुचि उपन्यास-लेखकों में बिलकुल नहीं रही है वैसे और भाषाओं से उपन्यास वा आख्यान लेकर हिन्दी में लाने की रुचि और उपयोग आज हिन्दी-उपन्यास-लेखकों में बहुत ही कम देखे जाते हैं। यहाँ तक कि जो हिन्दी सुलेखक अङ्गरेज़ी के धुरन्धर विद्वान् हैं, जो गुजराती के ज्ञानवान पण्डित हैं, जो उर्दू फ़ारसी के पूरे जानकार हैं, जो स्वयं उपन्यास लिखने की शक्ति सामर्थ्य रखते हैं वे भी बङ्गभाषा सीखकर बङ्गला से ही अनुवाद करने की अधिकरुचि और उत्साह दिखाते हैं। इस तरह एक ही ओर सब की रुचि तब अच्छी होती जब और भाषाओं में रत्न होते! अथवा सबसे उत्तम पदार्थ केवल उसी भाषा में पाये जाते। किन्तु इस तरह एक ही ओर की झोंक से आज हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में कूड़ा-करकट भर रहा है। उपन्यास-लेखकों को उचित है कि जिनको स्वयं संसार का अनुभव है और प्लाट बाँधकर आप उपन्यास सकते हैं वे ओरिजिनल उपन्यास लिखें। जो अङ्गरेज़ी, गुजराती, उर्दू आदि के पण्डित हैं वे भाषाओं से रत्न लाकर हिन्दी-साहित्य की शो[भा] बढ़ावें। यदि बङ्गभाषा ही का उपन्यास अनुवा[द] करने की बड़ी प्रवृत्ति हो तो वे कम से कम इतना अवश्य देख लें कि कौन उपन्यास हिन्दी में नहीं हुआ, कौन हिन्दी में होने योग्य है, और किसकी हिन्दी में आवश्यकता है। इन बातों के जाने समझे बिना ही आजकल अनेक उपन्यास-लेखक अपनी नासमझी से हिन्दी-सुलेखकों को मर्म्मवेदना पहुँचा रहे हैं।

उपन्यास-साहित्य की आज जो दशा है उसकी बात क्या कहें। यदि भारतेन्दु के चन्द्रप्रभापूर्ण प्रकाश, श्रीयुत राधाचरण गोस्वामी महाशय की सौदामिनी, लाला श्रीनिवासदास का परीक्षा गुरु, बाबू राधाकृष्णदास का निःसहाय हिन्दू, स्वर्गवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्त की मडेल भगनी, अभ्युदय कार्यालय की शिक्षा-निबन्धावली आदि ऐसे ही चालीस पचास उपन्यास हिन्दी उपन्यासों से निकाल दिये जाँय तो आज जो बाज़ार में उपन्यासों की भार[मार] ठेलमठेल देखते हैं वह सब पंसारी की दूकान के लिये टके सेर रद्दी ही के लायक़ रह जाँयगी।

उपन्यास में पहिले जानने योग बात, घटना की जवनिका में छिपा रखना और इधर उधर की बेसिलसिले और बेजोड़ न हों पहिले कहना और घटना पर घटना का तूमार बाँधकर असल भेद जानने के लिये पाठकों के हृदय में कुतूहल बढ़ाना और रहस्य पर रहस्य साजकर ऐसा उपन्यास गढ़ना कि पूरा पढ़े बिना पूरा स्वाद न मिले लेकिन पढ़ने वालों को ऊब न हो बल्कि जितना पढ़ता जाय उतना ही उस में उलझता जाय ऐसी ही गुप्तनिका से जो ग्रन्थकार उपन्यास रचने में सिद्धहस्त उन्हीं की लेखनी का साहित्य में आदर होता है और उन्हीं का परिश्रम सार्थक समझा जाता है। जिसका उपन्यास पढ़कर पाठक ने समझ लिया

कि सब सोलहों आने सच है उसी की लेखनी सफल-परिश्रम हुई समझना चाहिए।

यहां एक बात कहकर हम अपना यह प्रबन्ध पूरा करते हैं। यद्यपि इसमें अपनी बड़ाई है किन्तु बात सच्ची और अप्रिय नहीं है और प्रसङ्गवश उदाहरण के समान उसका बतला देना उचित है। एक बार हमने एक उपन्यास "हम हवालात में" नाम का लिखा था, जो जासूस में छपा और उसको पढ़कर बहुतेरे कृपालु महाशयों ने लिखा कि आप पर तो बड़ा सङ्कट पड़ा था। उपन्यास लिखने के कारण हवालात में जाना पड़ा।

इतना ही नहीं बल्कि आधुनिक कई मासिक और साप्ताहिक पत्रों के एक सुयोग्य सम्पादक, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक ने जो इस समय यहां मौजूद हैं हमें पढ़कर चिट्ठी में हमसे पूछा था कि सच बतलाइये आप हवालात में बन्द किये गये थे या नहीं।

कहने का तात्पर्य यह कि ऐसे ही जब उपन्यास का आदि से अन्त तक पढ़ने वालों को सच्चा ज्ञान पड़े तभी उपन्यास लेखक को सफल-मनोरथ समझना चाहिए।

हम अपने सब हिन्दी सुलेखक मान्यवर ग्रन्थकारों से नम्रतापूर्वक बिनती करते हैं कि उपन्यास लिखते समय इन बातों पर ध्यान रखने से साहित्य और जगत् का बड़ा उपकार होगा। नाटक उपन्यास की रीति बताने का हमको समय नहीं है। इस कारण अब सभापति और समस्त सज्जनों से यथायोग्य अभिवादन करके प्रबन्ध यहीं समाप्त करते हैं।

——:०:——

भाषा लिटरेचर की बढ़ती के निमित्त खिष्टियान मिशनों का काम

[रेवरेंड जी. जे. डन लिखित ।]

यद्यपि सन् १७९३ ईसवी से पहिले उत्तरी भारतवर्ष में खिष्टियान मण्डली का कुछ काम हुआ था तथापि केरी साहब के आने से, जो उसी बरस में हुआ, भाषा लिटरेचर लिखने का काम आरम्भ हुआ। खिष्टियान मण्डली इसलिये स्थापित हुई कि प्रभु यीशु खिष्ट का प्रचार हो। हमारे मुख्य धर्मशास्त्र का नाम इन्जील अर्थात् सुसमाचार है इसीलिये केरी और उसके साथियों ने उस ग्रन्थ को बँगला में अनुवाद करना अपना प्रथम काम समझ कर १८०२ ईसवी में पहिली बार छपवा कर उसे प्रकाशित किया। उसके अनन्तर हिन्दी, मराठी, उड़िया और छत्तीस और भाषाओं में उन्होंने सुसमाचार को प्रकाशित किया। उसी दिन से जैसे जैसे भाषाओं में मिशनरियों की निपुणता बढ़ती चली आती है वैसे वैसे प्रत्येक भाषा की बैबलवाला अनुवाद सोधा चला जाता है। धर्मविषयक अनेक पुस्तकें छोटी बड़ी लिखो गई हैं और प्रति वर्ष कितनेक लाख बिकती हैं।

सच पूछिये तो जिस भाषा में कुछ भी लिखा गया उसी में अवश्य सुसमाचार का अनुवाद हुआ और कितनी ऐसी भाषाएं हैं जिनमें सुसमाचार को छोड़ कर और कोई पुस्तक पाना अनहोनी बात सी है। सब भाषाओं में मिशनरियों के काम का वर्णन यदि लिखूँ तो महाभारत के तुल्य ग्रन्थ रचना करनी पड़ेगी पर ऐसी कहानी के श्रोतागण कहाँ। इसलिये मैं एक ही भाषा पर जो मेरी समझ में मुख्य है इस समय कुछ लिखूँगा। और वह हिन्दी भाषा है।

पद्यभाग

लेब एक अङ्गरेज था जो बहादुरी, ... में ... निपुण हो गया। इसने अनेक ऐसे भजन लिखे थे जो अब तक ... से गाये जाते हैं। इसके उदाहरण के लिये ... भजन लिखता हूँ।

भजन

हे मेरे प्रभु, मो पापी उद्धारियो।
छोड़ो न कभु, न मोहे बिहारियो ॥१॥
हे प्रभु मैं पापी, यह निश्चय आप जानियो।
हाय कैसो संतापी, मो दुखी आप पहचानियो।
हे कृपानिकेतु, मो पापी पै लखियो।
और तारण के हेतु, मोहे शरण पै रखियो।
मैं अति अशुद्ध, अशुद्ध कुं शुद्ध करियो।
मैं अति निर्बुद्धि, निर्बुद्धि कुं बुद्धि भरियो।
मैं अधम अयोग्य, तो आप यह न मानियो।
पै आप पापी लोग, नित अपनी ओर तानियो।
जब होयगो मरण, तब प्रभु शान्त करियो
और जब लौ है जीवन, मोहे प्रेम करके ...

शुजाअत अली एक लखनऊ के अमीर ... थे। वे लखनऊ से कलकत्ते में आकर मसीही ... गये उन्होंने उर्दू और हिन्दी में बहुत ही ... भजनों और ग़ज़लों को लिखा जो दिलगुदाज़ ... मनोरञ्जक पाये जाते हैं। सच पूछिए तो हिन्दी भजनों में शुजाअत अली के पद रचने पर ... शुक्रगुजारी हुई पर यह भी सच है कि "... भूला है यह संसारा, मन मन ... गुजारा" आदि भजन गाते समय शुजाअत अली अभी तक लोगों की आँखों में आँसू ... मनों में हर्ष उत्पन्न करते हैं।

देहली के टामसन साहब ने ... नाम की पुस्तक लिखी है। इस ग्राम में मुझे ... लोग मिले हैं, जिन्होंने यह पुस्तक कण्ठ की है। ... थोड़े दिन हुए कि ... ने ... की मधुर कथा ब्रजभाषा में लिखी है और बहुत ... लोग उसको चाहते हैं।

मुङ्गेर में कितने भजन लिखे गये । नैनसुख और हुसेन और जैन पारसन्स (आश्रित) के भजन अब तक गाये जाते हैं। पर मुङ्गेरवालों में जैन क्रिश्चन अर्थात् (जान अधम) जो प्रायः जान साहब के नाम से सब को स्मरण आते हैं सबसे बड़े थे । मुक्तिमुक्तावली, सत्यशतक, गीतसंग्रह आदि पुस्तकों में उनके मनोहर भजन पाये जाते हैं उनमें से एक को लिखता हूँ ।

भजन

कौन करे मोहि पार तुम बिनु
दीनदयाल दयामय स्वामी, दुःख सुख पालन हार।
नर अपराधी कैसे तरिहैं, दारुण भव नदधार ॥१॥
माया जलनिधि केवट कामा, इच्छा धरे पतियार।
तृष्णा तरङ्ग पवन उठावत, कपट पाल हङ्कार ॥२॥
मोह जलधर गर्जन लागे, छप लियो करधार।
कामिनी दामिनी ऐसी चमकत, झहरत नयन निहार॥
आशा लङ्गर तोहि पर बाँधो, तुम्हीं मम कनिहार।
जान अधममय अरणव बूडत, कोऊ न आवत पार।४

डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि जान साहब के भजन सारे बिहार में गाये जाते हैं, न केवल ख्रिष्टियानों में वरन साधू और गानेवालों में भी उनकी मधुरता के कारण उनका प्रचार है। मुङ्गेर में अब तक प्रेमचन्द और फ़तहगढ़ में हरप्रसाद और इटावे में जैनसन साहब जीते हैं । भजन और काव्य लिखते हैं । जैनसन साहब के सुलेमान के दृष्टान्त प्रेम दोहावली और दाऊदमाला चारों ओर फैले हुए पाये जाते हैं ।

गद्य भाग में अधिक लिखा गया है। वेदतत्त्व प्रोफ़ेसर विलसन साहब के ऋगवेद संहिता के अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका का अनुवाद है। बहुमियाह गोरे ने (जो पहिले नीलकंठ गोरे कहलाते थे) छः दर्शन के विषय में षड्दर्शन दर्पण नाम अगाढ़ख्यात पुस्तक लिखी है ।

संस्कृत विद्याभूषण डाक्टर जौन मूर की मत परीक्षा हिन्दी में बहन साहब ने उल्था की। धर्म्म संबंधी वाद विवाद के अनेक और ग्रंथ सब जानते हैं पर इस सभा के सम्मुख हैवेलेट साहब के ख्रीष्टानुकरण ऐसी भक्तिजनक पुस्तक का नाम सुनाना उचित है । यह एक प्रसिद्ध लातीनी भक्त की पुस्तक का अनुवाद है। जौन पारसंस का यात्रा स्वप्नोदय जो बनियन साहेब के जगन्मोहन पिलग्रिम्स प्रोग्रेस का अनुवाद है, हिन्दी गद्य का एक नमूना गिना गया है। इसी भाग में ऐसे लेख गिनने चाहिए जैसे हूपर, जैनसन, प्रीवस, डैन, इत्यादि के लिखे हुए बैबल के अनेक भागों की टीका हैं ।

धर्म्मविषयक पुस्तकों को छोड़ कर कितने महान् लोगों के जीवनचरित्र हिन्दी में लिखे गये हैं। महारानी विक्टोरिया, महाराजाधिराज एडवर्ड सातवें, सिकन्दर महान, चीनदेशनिवासी, शौ नाम पादरी, डफ़, जडसन, केरी, इत्यादि इनमें से हैं ।

इतिहास के विषय में पूर्वकाल के रोमियों का वृत्तान्त और युनानियों का, संसार का प्राचीन संक्षेप इतिहास और जौन पारसंस का, खिष्टियान मण्डली के वृत्तान्त को छोड़ कर और अनेक हैं।

भूगोल विद्या कितने प्रकारों से पढ़ाई जाती है। जो जापान, चीन, मिश्र, बरमा, राजपुताने, लंका, कश्मीर, पलास्टीन, इत्यादि के वर्णन के ग्रंथ लिखे गए हैं वे मनभावने और सचित्र हैं। हमलोग अपना मन उन बातों में लगाते हैं जो भारतवर्ष के निवासियों के स्वास्थ्य, आरोग्यता और विश्राम से सम्बन्ध रखती हैं । इसी कारण इटावे के डाक्टर जैनसन साहेब जिनकी जन्मभूमि अमेरिका है अनेक विद्या-संबंधी अँगरेज़ी पुस्तकों के अनुवादक हुए हैं। जैसे तपरोग, हैज़े का वृत्तान्त, भलेचंगे रहने के उपाय, बालकों की आरोग्यता, बालोत्पन्न शिक्षा, निर्मलता की आवश्यकता, निर्मल जल इत्यादि ।

लोगों की चाल सुधारने के उपदेश के लिये गाली देने का निषेध, विवाह और श्राद्ध का खर्च, आभूषण का लोभ, विधवा उपाय, और विशेष करके

मादक द्रव्यों के निषेध के लिये विषकाड़ दर्पण, मद्यादमन, इससे क्या लाभ होगा ? और निषेध या चिकित्सा ! लिख कर प्रकाशित किये गये हैं। मेरे रहने का घर, इसमें मनुष्य के शरीर की विधा का सरल वर्णन है। कीट पतंगों का वृत्तान्त एक मनोहर अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। कितनी ही कहानियों के भी अनुवाद हुए और कितने हिन्दी ही में लिख कर तैयार हुए हैं। फुलमणी और करुणा अद्भुत आदर, अपनी बेड़ियों का तोड़ना, विश्वासविजय, मुमुक्षु-वृत्तान्त, रामपालसिंह की कथा इन में से कुछ हैं।

शिक्षा की पुस्तकें अनेक लिखी गई हैं। क्रिश्चन लिटरेचर सोसाइटी की ओर से लाखों रीडर और बंगाल शिक्षा-भाग की प्रेरणा से हैन साहेब के कितने रीडर, साइंस रीडर, इत्यादि अब प्रकाशित किए गए हैं।

अब मैं इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ताओं का जंगलरूपी सूचीपत्र का वर्णन समाप्त कर और एक दूसरे भाग के विषय में कुछ कह कर इस लेख को समाप्त करूँगा। हिन्दीव्याकरण विद्यासागर ज्ञान समुद्ररूपी पुरुषों के योग्य विद्या है और मैं समझता हूँ कि इसमें हम लोगों ने अपने भारतमित्र भाइयों की सेवा करने में बहुत यत्न किया है। आदम और टौमसन और येट साहबों के हिकमा रियों को बुरा भला कहना कठिन नहीं, कदाचि हम सभों ने किया हो। परन्तु इन्हीं लोगों ने मार्ग खोला है। भला होगा कि यह सभा उसको पूर्ण करे। आदम और बडन ने छोटे व्याकरणों को लिखा है पर एथरिंगटन का भाषाभास्कर कितने न देखा। पर इन पर्वतों में मानो हिमालय पर्वत केलॉग साहब का व्याकरण आकाश से बातें करता है और हम छोटे छोटे ढेररूपी ग्रीव्स और हैन उन्हीं के ऊपर के गगन मण्डल से बूँद बूँद बटोर कर वि की सरिता चलाने के लिये यत्न कर रहे हैं। परमेश्व दीनदयाल ऐसा करे कि भाषा के हितार्थी परस्पर सहायता करके इस बात पर सम्मत हों और कि प्रत्येक नगर और प्रत्येक गाँव का निवासी ऐसी मनोहर और मधुर भाषा बाँचने और बोलने लगे कि भारतवर्ष उनके कल्लोल से यहाँ तक गूँज उ कि सारे जगत् के लोग सुन कर विस्मित औ मोहित हों।

—:o:—

नागरी-प्रचार देश-उन्नति का द्वार है।

[बाबू गोपालप्रसाद खत्री लिखित।]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज का यह सम्मेलन होनहार मङ्गल की शुभ सूचना है। केवल हिन्दी ही क्यों, हिन्दू जाति की भी बहुत कुछ भलाई इस स्मरणीय सम्मेलन की सफलता पर निर्भर है। भिन्न भाषाभाषी महाराष्ट्र, गुजराती, बङ्गाली आदि हमारे देशभाई निज निज भाषा की उन्नति के लिये इस सदुपाय से बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर चुके हैं। मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं की वर्तमान अवस्था ही इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतएव इस सदुपाय के पथ-प्रदर्शक अथवा यों कहो कि इस सत्कार्य में प्रवृत्त करनेवाले भिन्न भाषाभाषी सज्जन अवश्य ही हम हिन्दी-सेवकों के हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

प्यारे सज्जनो, यद्यपि मैं हिन्दी का कोई कवि, लेखक या चतुर वाग्मी नहीं हूँ तथापि यह कहने में मुझे कुछ भी सङ्कोच नहीं है कि मैं हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि से प्रेम रखता हूँ। अपने को हिन्दी का अकिञ्चन भक्त या लघु किङ्कर समझ कर कृतार्थ मानता हूँ। मैं हिन्दुस्तान में रहनेवाला हिन्दू हूँ, हिन्दी मेरी मातृभाषा है और इसी नाते से मुझे अपनी भाषा और अपनी लिपि पर अटल प्रेम है। मैं अपने अहोभाग्य समझता हूँ कि ईश्वर की कृपा से हिन्दी, हिंदू, हिन्दुस्तान से मेरा सम्बन्ध है। मेरी समझ में पूर्व पुण्य-प्रताप से जो जो भाग्यशाली सज्जन सर्वदा हिन्दी, हिंदू, हिन्दुस्तान को अपनी इष्टसिद्धि का मूलमंत्र मान कर कर्तव्य-पथ में अग्रसर हो रहे हैं वे धन्य हैं! उनका जन्म सार्थक है! उनका जीवन अमूल्य है!

यद्यपि मैं जानता हूँ कि इस पण्डितमण्डली के समक्ष मुझ सरीखे अगण्य पुरुष का किसी विषय में कुछ कहने का साहस करना सर्वथा बालस्वभाव सुलभ धृष्टतामात्र है तथापि हृदय की उमंग से विवश होकर अपने विचारों को प्रकट करता हूँ। अपने विचार प्रकट करने के और भी दो प्रबल कारण हैं। एक तो यह कि इस सम्मेलन का उद्देश्य ही यह है कि सब लोग हिन्दी व नागरी के विषय में अपने अपने विचारों को प्रकट करें। दूसरा कारण यह है कि मुझ सरीखे क्षुद्र व्यक्ति के विचारों में भी कदाचित् कोई विचार काम का हो। कभी कभी बालकों के भी कोई कोई विचार उपादेय निकल आते हैं और बूढ़ों के भी कोई कोई विचार वास्तव में असार होते हैं। इसी अनुभव पर किसी कवि ने कहा है—

> युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
> अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मयोनिना॥

अर्थात् यदि बालक की भी उक्ति युक्तियुक्त हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए और यदि साक्षात् ब्रह्मा का भी वचन युक्तियुक्त न हो—असार हो—तो उसे तृण सा तुच्छ जानकर त्यागना चाहिए।

महाशयो, नागरी लिपि कैसी सरल, शुद्ध और सुबोध है और हिन्दी भाषा कैसी मधुर और मनोहर है इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर अनेक अनुभवी लेखक लोग अपनी लेखनी से ललित लेख लिख चुके हैं और अनेक वकागण प्रभावशाली सारगर्भित व्याख्यान दे चुके हैं। नागरी लिपि की उत्तमता का एक उत्तम उदाहरण यही है कि हमारे महाराष्ट्रदेशनिवासी भाइयों ने अपनी भाषा को नागरी लिपि से अलङ्कृत किया है—वे नागरी लिपि को "बालबोध" लिपि कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह निश्चित—निर्विवाद सिद्धान्त हो चुका है कि भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को ही प्राप्त होगा और उसके लिये नागरी लिपि ही राष्ट्रलिपि होगी। इस सिद्धान्त का सूत्रपात भी कलकत्ते के "एकलिपि-

विस्तार-परिषद्" ने "देवनागर" पत्र निकाल कर किया है। भिन्नभाषाभाषी भावुक सज्जनों ने, उदार-हृदय अनुसन्धानशील विदेशी विधर्मी विद्वानों ने तथा हिन्दी बोलनेवाले स्वदेशनिवासी भाइयों ने जो समय समय पर हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के गुणों का गान किया है उसको अवतारणा करने के लिये बहुत समय की आवश्यकता है। हमारी नागरी लिपि सर्वाङ्गपूर्ण है—हमारी हिन्दीभाषा अपनी जननी या जननी की जननी देववाणी संस्कृत के सम्बन्ध से सनाथ होकर सर्वाङ्गसुन्दर है। आप नागरी लिपि में संसार की चाहे जिस भाषा के कठिन से कठिन शब्दों को ठीक वैसेही लिख सकते हैं जैसे उनका उच्चारण किया जाता है। अन्य किसी भी लिपि को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है।

बहुत लोग कहते हैं कि नागरी लिपि देर में लिखी जाती है, अन्य लिपियाँ इसकी अपेक्षा बहुत शीघ्र लिखी जाती हैं। ऐसा कहनेवालों से हमारा यही निवेदन है कि लिखनेवाले के अभ्यास के अनुसार हर एक लिपि शीघ्र लिखी जा सकती है। लोग अन्यान्य लिपियों को सर्वदा लिखा करते हैं, इसलिये उनके हाथ उन्हीं लिपियों के लिखने में अभ्यस्त हैं। इसी से वे नागरी की अपेक्षा अन्य लिपियों को शीघ्र लिख लेते हैं। ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे जो नागरी लिपि में ही सब काम-काज करते हों। नागरी लिखने का अभ्यास न होने के कारण ही हम आप इसे शीघ्र नहीं लिख सकते। हमने अपनी आँखों से ऐसे कई आदमियों को देखा है जो अँग्रेज़ी और उर्दू के समान समय में ही नागरी लिख लेते हैं। पूछने से विदित हुआ कि उनको नागरी लिखने का अच्छा अभ्यास है, वे सब समय नागरी लिपि को ही काम में लाते हैं। इसके सिवाय यदि यह भी मान लिया जाय कि नागरी लिपि में इतनी त्रुटि है तो यह त्रुटि नागरी के विशिष्ट गुणों के [illegible] हुई है। [illegible] का यह [illegible] गुण है [illegible] को लिखिये कहीं पढ़िये। अन्य भाषाओं के [illegible] यह नहीं है कि आदमी [illegible] कबूतर लिखकर उसे १२ कबूतर पढ़िये। नागरी लिपि में [illegible] बच्चा भी जो लिखेगा उसे सब लोग सुगमता [illegible] सही सही पढ़ लेंगे।

हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी है और उसका [illegible] रूप या उसकी लिपि सर्वगुणागरी नागरी ही है। हमारा देश बहुत दिनों से विदेशी शासकों के हाथ में है। विदेशी जातियों के संसर्ग से केवल [illegible] ही क्यों, हमारे भाव, भोजन, वेश और मत में पूर्ण परिवर्तन नहीं तो गड़बड़ अवश्य हो गई। यदि आप ध्यान दे कर देखेंगे तो हिन्दुस्तान निवासी हिन्दू ही अधिक मिलेंगे, जिनकी मु[illegible] भाषा हिन्दी ही या हिन्दी का कोई रूपान्तर है। चाहे वे किसी समय में विवश हो हिन्दू से मुसलमान हो गये हों अथवा अकाल से विहाल हो काल के गाल में जाने से बचने के लिये या कि[illegible] अन्य अनिवार्य कारण से ईसाई बन गये हों, पर निस्सन्देह वे पहिले हिन्दू ही थे। इसी से अब भी किसी न किसी रूप में उनकी भाषा हिन्दी ही है। भारत के किसी प्रान्त का रहनेवाला हो, चाहे बंगाली हो, चाहे महाराष्ट्र हो, चाहे गुजराती हो—सब टूटी फूटी हिन्दी बोल लेते हैं और समझ भी [illegible] हैं। इसी से विज्ञजनों की सम्मति है कि देश [illegible] हिन्दीभाषाभाषी जन अधिक हैं, इस कारण [illegible] की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है, साथ ही [illegible] लिपि होने का सम्मान नागरी ही पा सकती है।

हमारे देश भाइयों में अशिक्षित अपढ़ लोगों की संख्या अधिक है। इस देश की इस अवनति का प्रधान कारण यही है। अवनति के मूल में [illegible] का अशिक्षित रहना सिद्ध है। इस देश की मा[illegible] हिन्दी है। यदि देशवासियों को हिन्दी भाषा [illegible] शिक्षा दी जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य[illegible] विदेशी भाषाओं की अपेक्षा अपनी हिन्दी भाषा को वे बहुत शीघ्र सीख सकते हैं। हमने बहुत से ऐसे आदमी देखे हैं जो कई वर्षों तक विदेशी भाषाओं के सीखने में श्रम कर फिर भी कुछ [illegible] नहीं प्राप्त कर [illegible]

ते हैं। यह उनकी मोटी बुद्धि का भी दोष कहा जा सकता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वे अपनी भाषा में इतना श्रम करते तो कभी भी विफल-मनोरथ न होते। इस समय अवस्थानुसार अवश्य ही उनकी गणना शिक्षितों में होती और वे अपना सब मतलब भली भाँति हल कर लेते। इसके अतिरिक्त हमारा देश इस समय धन-हीन है, और विदेशी भाषा सीखने में अधिक समय लगने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषा सीखने में उतने समय और व्यय की आवश्यकता नहीं है। नागरी लिपि का प्रचार भी हिन्दी-भाषा के प्रचार से कम आवश्यक नहीं है। हमारे धर्मशास्त्र, स्तोत्र, मन्त्र आदि सब इसी लिपि में हैं। नागरी प्रचार से धर्म की भी उन्नति हो सकती है। नागरी बहुत सरल और सुन्दर लिपि है। बहुत शीघ्र—एक दो दिन में ही अध्यवसायनिष्ठ पुरुष साधारण रूप से इसको सीख सकता है। प्यारे सज्जनो, नागरी और हिन्दी का चोली दामन का साथ है—एक ढांचा है तो दूसरी जान है। उन्नति के रथ के ये दोनों पहिये हैं। इसी लिये जाति की—समाज की—धर्म की और देश की उन्नति के लिये नागरी लिपि और हिन्दी भाषा का प्रचार परम अपेक्षित है।

पहिले कहा जा चुका है कि अविद्या के बढ़ने से ही—ज्ञान के न होने से ही—अपढ़ अशिक्षितों की अधिकता से ही देश की दुर्गति होती है—अवनति होती है। यह भी प्रकारान्तर से कह दिया गया है कि मातृभाषा या देशभाषा के प्रचार और उन्नति से शीघ्र शिक्षा का विस्तार और अशिक्षितों का उद्धार हुआ करता है। विदेशी भाषा की अपेक्षा देशी भाषा की सहायता से सहज में ही विद्या (शिक्षा) का विस्तार हुआ करता है। आज बंगाली या महाराष्ट्रों में अधिक विद्वान् और लेखक क्यों देख पड़ते हैं? इसका अन्यतम कारण अँगरेज़ी शिक्षा भले ही हो, किन्तु मुख्य कारण यही है कि बँगला, मराठी आदि भाषाओं के सच्चे सेवकगण अन्य भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद कर तथा अन्य देशीय विद्वानों के विशद विचारों को अपनी भाषा में प्रगट कर अपनी अपनी भाषा के साहित्यभाण्डार को भर रहे हैं। औरों को जाने दीजिये, हमारे बंगाली भाइयों ने ही पृथ्वी की अन्य भाषाओं के उपयोगी साहित्य से अपनी भाषा को भूषित कर ऐसी सुगमता कर दी है कि साधारण समझ के सर्वसाधारण जन सहज में ही—बिना कोई दूसरी भाषा सीखे भिन्न भाषाभाषी विद्वानों के विचारों से लाभ उठाते हैं और अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं।

बहुत लोगों में यह भ्रान्त धारणा है कि केवल नौकरी, क्लर्की आदि के लिये ही विद्या की आवश्यकता है। किन्तु वास्तव में जो पढ़ा लिखा नहीं है—जो शिक्षित नहीं है वह किसी भी काम को भली भाँति नहीं कर सकता। क्या कारीगर, क्या सौदागर, क्या नौकरीपेशा और क्या किसान और मज़दूर—सबको ही पढ़ने लिखने की आवश्यकता है। इनको अपनी भाषा की शिक्षा ही सहज में—स्वल्प समय में दी जा सकती है। यह कहने से मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि विदेशी भाषाएँ पढ़ी न जाँय। मेरा मतलब यह है कि जो समर्थ और प्रतिभाशाली सम्पन्न पुरुष हैं वे पहिले अपनी भाषा और लिपि को अवश्य सीख लें, फिर भले ही पारदर्शिता प्राप्त करें तथा यथाशक्ति विदेशी विभिन्न भाषाओं के साहित्य से अपनी भाषा को लाभ पहुँचाना अपना कर्तव्य समझें। किन्तु क्या धनी और क्या दरिद्र—सबको पहिले अपनी भाषा और अपनी लिपि की शिक्षा मिलनी चाहिए। इससे एक उपकार यह भी होगा कि पहिले अपनी भाषा सीख कर हम लोग फिर विदेशी भाषाओं को सहज में ही सीख सकेंगे। आरंभिक शिक्षा अपनी भाषा में मिलने से आगे अन्य भाषाएँ सीखने में बड़ी सहायता मिलती है। संसार में कोई भी ऐसा देश न होगा जहाँ के रहनेवाले अपने देश की भाषा और लिपि को न जानते हों। यह बात हमारे ही यहाँ देखियेगा कि यहाँ के अधिकांश लोग चाहे अन्यान्य

भाषाओं के धुरन्धर पण्डित हों किन्तु हिन्दुस्तान में रहनेवाले हिन्दू होकर भी हिन्दी-साहित्य से एकदम अपरिचित हैं। हिन्दी समझने पर भी नागरी लिपि पढ़लेने पर भी गँवारी हिन्दी कह कर हिन्दी की उपेक्षा करने वाले महाशयों का इस देश में अभाव नहीं है। अन्य भाषाओं में थोड़ी सी योग्यता होने पर ही हिन्दी में साधारण बात चीत करने को भी पाप समझने वाले समझदार भी कम नहीं हैं। हा! कैसे शोक और लज्जा की बात है कि इस देश के बड़े बड़े कुलीन हिन्दू—देहाती नहीं, नागरिक, अपनी भाषा को, अपनी लिपि को जानतेही नहीं और न जानने की चेष्टा ही करते हैं। हम मानते हैं कि वे विदेशी भाषाओं के पूर्ण पंडित हैं। परन्तु इससे वे चाहे विदेशी भाषा और लिपि की सहायता से सपरिवार अपने पेट का पालन भलेही करलें; परन्तु अपने घर के रत्नों से आजन्म अनभिज्ञही रहेंगे। उनको अपने धर्म का, अपनी नीति का, अपने पूर्व पुरुषों के अमूल्य विचारों का कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। केवल इतना ही नहीं, पहिले अपनी लिपि व अपनी भाषा न सीख कर अन्य विदेशी भाषाओं की शिक्षा में मगन होने वाले पुरुष देश की बड़ी भारी हानि करते हैं। वे अपनी सभ्यता न जानने से विदेशी सभ्यता की चमक दमक में चौंधिया कर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी समाजनीति न जानने के कारण विदेशी लोगों के विभिन्न विचारों से सहमत होकर—या उनके आगे परास्त होकर समाजसुधार के नाम से समाजसंहार करने पर उतारू होते हैं। अपने धर्म का सच्चा रूप न जान सकने के कारण विदेशियों की दृष्टि से अपने धर्म को देखते हैं और उनके ही चेला बन कर धर्म के मूल में कुठाराघात करते हैं, आचार विचार का संहार करते हैं और कोई कोई अपना धर्म छोड़ कर अपनेही धर्म की निन्दा करते हुए अन्य पंथों का प्रचार करते हैं—अपने सरीखे स्वभाषान-भिज्ञ भोले भाले भाइयों को भुला कर अपना दल बढ़ाते हैं। हम इन सब हानियों के विचार का भार इन्हीं ज्ञानियों या पांडित्याभिमानियों पर छोड़ते हैं और कर्तव्यबुद्धि से हिन्दी और नागरी प्रचार क से अपना संबन्ध जोड़ते हैं या "स्टुपिड हि कहकर हिन्दी नागरी की सेवा से मुख मोड़ते ह भाता है, दोनों श्रेणियों के सज्जन इस विषय प ध्यान देकर विचार करेंगे।

साथही एक बात और कहूँगा। हो सकता है कि यह बात "छोटे मुँह बड़ी बात" हो, किन्तु मेरी समझ में बात बड़े काम की है। हमारे देश के माननीय मुखिये देश की उन्नति के लिये बहुत वर्षों से उद्यो कर रहे हैं और इसी उद्देश्य से कांग्रेस की जाती महासमिति की स्थापना की गई है। यदि कांग्रेस साथ साथ नागरी-हिन्दी के प्रचार का कुछ भी प्रयत्न किया जाता तो आज बहुत कुछ सफलता हो गई होती। आज दिन लाखों साधारण जन—किसान, व्यापारी, सौदागर और नौकरी चाकरी करने वाले निम्न कोटि के लोग आपके समान कांग्रेस के म— को समझ गए होते और वे केवल ज़बानी जमा ही नहीं वरन् कार्यतः आपकी सहायता करते—इ के उस उत्तम कार्य से सहानुभूति दिखाते और इ प्रकार आपका मत यथार्थ लोकमत माना जाता। आ के अमूल्य विचारों का, आपके उदार प्रस्तावों का प्रजा पर पूर्ण प्रभाव पड़ता। कांग्रेस के मंडप में बैठ कर प्रस्ताव पास कर केवल तालियाँ पीट देने से क्या फल हुआ। कांग्रेस के महत्त्व को, अपने स्वत्व को, विद्या के विशेषत्व को केवल आपही तो समझ सके सर्वसाधारण को उससे रत्ती भर भी लाभ नहीं हुआ। देहाती किसान, श्रमजीवी साधारण लोग—जिन संख्या आपसे कहीं अधिक है, आपकी चेष्टा के महत्त्व का कुछ भी तत्त्व नहीं समझ सके। वे नहीं जानते कि आपके उस धूमधामी मण्डप में क्या हो रहा है। शायद वे यही अनुमान करते होंगे कि किसी राजा के यहाँ कुछ काम काज है, वे लोग बरात में आये होंगे। यही कारण है कि इतने दिनों से निरन्तर उद्योग होने पर भी कांग्रेस को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई।

हम यह मानते हैं कि सब देशों में राजभाषा का महत्त्व अधिक है। तदनुसार यहाँ भी राजभाषा का महत्त्व होना ही चाहिए, क्योंकि बिना उसके सीखे काम ही नहीं चल सकता। यह भी सच है कि यहाँ समष्टि रूप से भिन्न-भाषा-भाषी राजा का राज्य है—इसलिये हमको विदेशी भाषा सीखने की आवश्यकता है। किन्तु व्यष्टिरूप से हमारे देश के अधिकांश देशी नरेशों की मातृभाषा प्रायः हिन्दी ही है। इसलिये देशीनरेशों को अपने अपने राज्य में भूतपूर्व राजभाषा उर्दू का स्थान हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि को देना चाहिए। हम अपनी ब्रिटिश सर्कार को इस बात के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि उसने अदालतों में नागरी प्रचार की भी आज्ञा दे दी है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि अदालतों में पूर्णरूप से उस आज्ञा का पालन नहीं होता। केवल गवर्नमेंट की आज्ञा से सफलता नहीं हो सकती। गवर्नमेंट की उस आज्ञा का पालन करना हमारे देशभाइयों का ही काम है। इसलिये वे यदि एकमत होकर इसके प्रचारकों का साथ दें तो पूर्ण सफलता प्राप्त होने में कोई सन्देह नहीं है। हम यों से कहते हैं कि सब देशी नरेश यदि अपने अपने राज्य के कार्यालयों में राजभाषा अँगरेज़ी के साथ हिन्दी-भाषा और नागरी लिपि को स्थान दें और गवर्नमेंट भी कर्मचारियों को उत्साहित करती हुई अपने समस्त साम्राज्य के कार्यालयों में नागरी लिपि को स्थान दे तथा हमारे देश भाई भी, जो गवर्नमेंट के कार्यालयों में काम करते हैं, कुछ कष्ट उठा कर नागरी में ही यथासम्भव कार्यनिर्वाह करें तो नागरी के प्रचार में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। महाराणा उदयपुर, महाराजा जोधपुर, महाराजा बूँदी, महाराजा जैसलमेर, श्रीमान् कोटा नरेश, श्रीमान् बीकानेर नरेश, महाराजा अलवर आदि देशी नरेश और विशेष कर टोंक की मुसलमानी रियासत—ये सब हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र और भक्तिभाजन हैं। इन श्रीमानों ने अपने अपने राज्य के कार्यालयों में कृपापूर्वक नागरी को स्थान देकर अपने उदार उन्नत विचारों का परिचय दिया है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह महाराजा जयपुर आदि अन्य देशी नरेशों को भी ऐसी ही सुमति दे कि वे नागरी के गुणगौरव को जान सकें। हम सर्वसाधारण जनों का भी यही कर्तव्य है कि राजभाषा अँगरेज़ी के साथ साथ राष्ट्रभाषा व राष्ट्रलिपि का आदर करें, प्राणपण से नागरी व हिन्दी के प्रचार का प्रयत्न करें और महाकवि कालिदास के "आफलोदयकर्म्मणाम्" अर्थात् "सफलतापर्यन्त काम करते रहने वाले" इस अमूल्य उपदेश को चित्तपटल पर अङ्कित कर नागरी-प्रचार में तन, मन, धन से तत्पर रहें—लगे रहें। यदि कोई सङ्कीर्ण हृदय भिन्नभाषा-भाषी विदेशी हमारी भाषा के प्रचार का विरोध करे और हमारे इस उद्योग से सहानुभूति न प्रगट करे तो क्या हमारा भी यही कर्तव्य है? या हताश होकर हाथ खींच लेना उचित है? कभी नहीं।

प्रिय मित्रो, आप जानते ही हैं कि देश में एक ऐसी भाषा अर्थात् राष्ट्रभाषा अवश्य होनी चाहिए जिसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारा देश सरलता के साथ सहज में बोल सके और एक ऐसी राष्ट्रलिपि भी होनी चाहिए जिसमें सब देशवासी अपनी प्रान्तीय भाषाओं को लिख कर परस्पर एक दूसरे की भाषा को सहज में पढ़ सकें। ऐसी कल्पना हमारे देश में हो चुकी है और यह राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्रलिपि नागरी वर्णमाला चुनली गई है। हमको फिर भी अपनी उदार गवर्नमेंट से निवेदन करना चाहिए कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और राष्ट्रलिपि नागरी है। सर्कारी काम काज, जिनसे सर्वसाधारण का घनिष्ठ सम्बन्ध है—जैसे कचहरियों की लिखापढ़ी, देश के विभिन्न विभागों के विभिन्न विषयों की विवरणी, सर्कारी सरक्यूलर आदि में राजभाषा अँगरेज़ी के साथ हमारी भाषा और लिपि को भी स्थान मिलना चाहिए, जिससे हम सर्वसाधारण सर्कारी बातों को सहज में समझ सकें—हमारे सब देशभाई—

हम उपकारों को जान सकें, जो हमारी सर्कार हमारे ऊपर कर रही है।

बहुत लोग अदालतों में नागरी—हिन्दी के प्रचार का विरोध करते हुए यह आपत्ति करते हैं कि हिन्दी में अदालती शब्द बहुत कम हैं, इसलिये हिन्दी से अदालत का काम चल नहीं सकता। उनसे हमको यही कहना है कि यदि यह बात यथार्थ है तो इसका दूर हो जाना कुछ कठिन नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर किसी न किसी प्रकार अभाव की पूर्ति कर ली जाती है। जब काग़ज़ न था तब काग़ज़ का काम भोजपत्र से चल जाता था। विद्वान् लोग विचार कर अपने सब अभावों को दूर कर सकते हैं। बड़े बड़े आविष्कार विद्वानों के विचार से ही हुए हैं। असम्भव कुछ नहीं है, ध्यान देने व उद्योग करने की आवश्यकता है। जो अदालती शब्द हिन्दी में नहीं हैं तो उनके प्रतिशब्द हिन्दी में बना लिये जा सकते हैं। जब मनुष्यों ने बड़े बड़े कोष और व्याकरण बना लिये हैं तब कुछ शब्दों को गढ़लेना कौन बड़ी बात है। इसके अतिरिक्त जो अदालती शब्द बहुत प्रचलित हो गये हैं और जिनको सर्वसाधारण सहज में समझ लेते हैं उनको हिन्दी भाषा में सादर स्थान मिलना चाहिए। नागरी लिपि में लिखे जाने से ही ये हिन्दी की सामग्री समझे जायँगे। इसलिये यह आपत्ति युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होती। आप निरपेक्ष भाव से हिन्दी—नागरी—प्रचार के विचार को हृदय में स्थान तो दीजिये, फिर कोई आपत्ति न रह जायगी।

हमारा इतना ही कर्तव्य नहीं है, हमको एक और भी उपाय करना चाहिए। यह उपाय सहज साध्य होने के अतिरिक्त हमारे ही हाथ में है, इस कारण उसमें सफलता पाने की पूर्ण आशा है। नित्य के पत्रव्यवहार में, हिसाब किताब में नागरी लिपि का व्यवहार और नित्य की बोल-चाल में, लेख—पुस्तक आदि की रचना में हिन्दी-भाषा का प्रयोग करना ही यह उत्तम उपाय है। हम में से यदि शिक्षित लोग ऐसा प्रयत्न कर लें तो जो हमारे भाई हिन्दी या नागरी को नहीं जानते या जान भी हिन्दी—नागरी के प्रचार पर ध्यान नहीं दे उनको भी विवश होकर हिन्दी या नागरी शिक्षा प्राप्त करनी होगी तथा हिन्दी या नागरी आदर करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त हिन्दी-नागरी के प्रचार का अत्यन्त सरल उपाय यह भी है कि हम लोग अपने लड़के, लड़की, भाई, भगिनी स्त्री, बन्धु—बान्धव, इष्टमित्र सम्बन्धियों को नागरी व हिन्दी सिखाने का भार स्वयं अपने ऊपर ले लेवें उनको हिन्दी व नागरी के गुण बतला कर सीखने के लिये उत्साहित करें। हिन्दी भाषा की शिक्षा कुछ समय सापेक्ष है। इसलिये कम से कम नागरी लिपि के प्रचार का प्रयत्न करने से भी बहुत कुछ सफलता हो सकती है। जो नागरी लिपि सीखेगा वह हिन्दी भाषा सीखने के लिये अवश्य ही उत्कण्ठित होगा। यह केवल कल्पना नहीं है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण पाए जाते हैं।

यह नियम भी स्वभावसिद्ध है कि जो मनुष्य जिस विषय में ज्ञान प्राप्त करता है वही उसको रुचता है। एक ओर जैसे चोर को चोरी, जुआरी को जुआ तथा व्यभिचारी को व्यभिचार ही रुचता है, वैसे ही दूसरी ओर विद्वान् की प्रवृत्ति प्रायः पढ़ने लिखने में ही होती है—शिक्षित मनुष्य का मन अच्छे ही कामों की ओर झुकता है। यदि मनुष्य शिक्षित है—पढ़ा लिखा है तो उसे समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ने की रुचि अवश्य होगी। पहिले पास का पैसा न ख़र्च कर सकेगा तो मँगनी माँग कर या पुस्तकालयों में जाकर पुस्तकें और समाचारपत्र आदि पढ़ेगा। यदि वह अपनी मातृभाषा को जानता है तो अधिकतर उसी के समाचारपत्र और पुस्तकें पढ़ेगा। पुस्तकों के पढ़ने से ज्ञान और अनुभव बढ़ेगा। समाचारपत्रों के पढ़ने से समाज की, देश की दशा विदित होगी। देश में क्या हो रहा है—यह जानने से भलाई में प्रवृत्ति और बुराई दूर करने की इच्छा का उदय अनिवार्य है। पढ़ने लिखनेवाला मनुष्य देश की, समाज की, धर्म की,

र्ग की ग्रीर अपनी भलाई जिसमें होगी उसका विरोध कभी नहीं करेगा, वरन् भलाई के कामों में सब सहायता करेगा ग्रीर ग्रीरों को भी वैसा करने के लिये उत्साहित करेगा। इससे सिद्ध हुआ कि देश की उन्नति के लिये शिक्षा की आवश्यकता है ग्रीर वह शिक्षा मुख्यरूप से हिन्दी में ही होनी उचित है। हिन्दी देश-भाषा—मातृभाषा होने के कारण उसमें मिली हुई शिक्षा सर्वसाधारण के लिये सहज होगी—इस योग्य हिन्दी भाषा ही है। हिन्दी का प्रचार पूर्णरूप से नागरी प्रचार पर ही निर्भर है। इसी लिये नागरी प्रचार देश की उन्नति का द्वार है।

बूँद बूँद जल से ही सागर बना है, छोटे छोटे परमाणुओं से ही सुविशाल पृथ्वी-मण्डल बना है, सर्वसाधारण जनों से ही देश बसा है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों को उपदेश देने के पहिले अपना सुधार कर ले। इस प्रकार अपने आदर्शचरित्र से उपदेश देना मौखिक उपदेश से कहीं बढ़कर है। इसके अतिरिक्त यदि प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी उन्नति करने के लिये प्रण कर ले तो फिर इतने उपदेश की—इतने परिश्रम की आवश्यकता ही नहीं है, बहुत ही सहज में देश की उन्नति हो सकती है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि अपढ़ लोगों की अपेक्षा पढ़े लिखे लोग अपनी उन्नति के लिये अधिक विचार कर सकते हैं ग्रीर बहुत शीघ्र—सहज में ही अपनी उन्नति कर लेते हैं। व्यक्तिगत उन्नति ही समष्टि रूप से देश की उन्नति है। इस युक्ति का भी यही सार है कि नागरी-प्रचार देश उन्नति का द्वार है।

अपने को हिन्दू कहनेवाले हम हिन्दी भाषा-भाषियों को प्रण कर लेना चाहिए कि हम अपने लड़की लड़कों को पहिले नागरी-वर्णमाला सिखावेंगे—प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी में दिलावेंगे या स्वयं देंगे। काम काज में—उत्सव के समय में—अवसर पर जहाँ हजारों रुपया ख़र्च कर डालते हैं वहाँ रुपया पीछे एक पैसा या सैकड़ा पीछे एक रुपया अथवा अपनी श्रद्धा के अनुसार कुछ धन नागरी-प्रचार के हेतु निकाल कर किसी हिन्दी ग्रीर नागरी से सम्बन्ध रखनेवाली संस्था को—किसी हिन्दी पुस्तकालय को भेज देंगे अथवा कहीं न भेजेंगे तो उसी रुपये से स्वयं कुछ पुस्तकें ग्रीर समाचार-पत्र मँगावेंगे, जिससे नागरी के प्रचार में सहायता होगी।

हमारे देश में दान करनेवालों की कमी नहीं है। किन्तु शिक्षा के अभाव से अब दान ऐसा पुण्य कर्म भी पाप का कारण हो रहा है। हज़ारों लाखों हट्टे कट्टे पेट भरे आदमी भीख माँगते हैं। ऐसों को दान देना ग्रीर देश को आलसी अकर्मण्य बनाकर हराम-ख़ोरों की वृद्धि करना एक ही बात है। ऐसे ही लाखों पंडे, पंडित, पुजारी, पुरोहित, पाधा आदि हैं जो अशिक्षित होने के कारण पुण्यार्थ प्राप्त धन का दुरुपयोग कर दाता को भी ले डूबते हैं। इस-लिये देशहितैषी विद्वानों का कर्तव्य है कि वे मातृ-भाषा ग्रीर नागरी लिपि की शिक्षा का विस्तार कर लोगों को इस योग्य बनावें कि वे पढ़ लिख कर दान देने का उद्देश्य समझ सकें। दान करने का उद्देश्य परोपकार है। जिस दान से परोपकार के बदले पराया अपकार हो वह दान दान ही नहीं है। जब सब लोग शिक्षा पाकर इस तत्त्व को समझ जाँयगे तब वे आपही अंधे, अपाहज, अनाथों को ग्रीर विद्वान् विरक्त ब्राह्मणों को छोड़कर किसी को दान न देंगे। ऐसा होने से वे हट्टे कट्टे भिखारी अवश्य ही कोई उद्योग, व्यवसाय करने के लिये बाध्य होंगे—तब ये पण्डे, पण्डित, पुजारी, पुरोहित, पाधा आदि अवश्य ही शिक्षा पाकर चरित सुधारने के लिये विवश होंगे। हिन्दी-नागरी-प्रचार द्वारा सर्वसाधा-रण को शिक्षा देकर उनके दिव्य नेत्र खोल देने से ही उनको नागरी-प्रचार ऐसे सार्वजनिक उपयोगी काम में दान देने की रुचि होगी। तभी सब लोग स्वयं हिन्दी-पुस्तकें ग्रीर समाचार-पत्र मोल मँगा-कर पढ़ेंगे ग्रीर तभी यह समझेंगे कि पुस्तकें ग्रीर समाचार-पत्र मोल लेकर पढ़ना भी नागरी-प्रचार

में सहायता कर अपनी उन्नति करते हुए देश की उन्नति करना है।

मेरी समझ में नागरी-हिन्दी के प्रचार के लिये यही सब सहज उपाय हैं कि स्थान स्थान में, नगर नगर में, गाँव गाँव में सभाएँ स्थापित हों। उन सभाओं में हिन्दी की उन्नति, और नागरी के प्रचार के लिये विचार किया जाय। वे विचार कार्यरूप में परिणत करने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय। सभाओं से संयुक्त पुस्तकालय भी स्थान स्थान पर स्थापित हों। पुस्तकालयों में पहिले कुछ भी फ़ीस न लीजाय। स्थानीय सभा के उद्योग से एकत्रित धन द्वारा पुस्तकालय का व्यय चलाया जाय। जब लोगों को पढ़ने का शौक़ होगा तब वे आपही पुस्तकालय को यथाशक्ति आर्थिक सहायता देंगे। ग्राम ग्राम में, स्थान स्थान में कम से कम एक एक पाठशाला भी स्थापित की जाय। इन पाठशालाओं में असमर्थ बालकों को हिन्दी और नागरी की आरम्भिक शिक्षा मुफ़्त दी जाय और समर्थ अमीरों के लड़कों से फ़ीस ली जाया करे। इन पाठशालाओं के खोलने का उद्योग भी हिन्दी हितैषिणी सभाओं के ही द्वारा होना चाहिए। कुछ ऐसे विद्वान् जो स्वयं संपन्न, देशहितैषी और हिन्दी के हिती हैं उनको अपना कुछ समय भ्रमण के लिये देना चाहिए। वे लोग भ्रमण कर अपने आस पास ऐसी सभाओं के स्थापन करने का प्रयत्न करें और ऐसी सभाओं के अधिवेशनों में जाकर अपने व्याख्यानों से लोगों को नागरी और हिन्दी सीखने के लिये उत्साहित किया करें। अवस्थानुसार उक्त सभायें वैतनिक उपदेशक रखकर भी उनके द्वारा सर्व साधारण को हिन्दी और नागरी सीखने के लिये उत्साहित कर सकेंगी। इस समय ऐसी सभायें स्थापित करने के लिये हिन्दी पत्रों को प्रबल आन्दोलन करना चाहिये और संपन्न विद्वान् हिन्दी हितैपी सज्जनों को कुछ कष्ट उठा कर और धन व्यय कर अपने आस पास के स्थानों में भ्रमण करना चाहिए, हिन्दी-सभायें स्थापित कराने की पूर्ण चेष्टा करनी चाहिए। जो महोदय विदेशी भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर चुके हैं उनको अन्य भाषाओं के अनेकानेक उपयोगी विषयों से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करनी चाहिए—मातृभाषा की सेवा में अपने अमूल्य समय का कुछ अंश देना चाहिए। उनको इस कार्य में यश के अतिरिक्त धन का भी लाभ होगा। प्रति वर्ष भिन्न भिन्न स्थानों में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होना चाहिए और प्रत्येक हिन्दी-हितैषी को अपने विचार प्रकट कर हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न करते हुए निश्चय रखना चाहिए कि नागरी-प्रचार देश-उन्नति का द्वार है।

माननीय मित्रगण! मुझे जो कुछ कहना था वह मैं आप श्रीमानों की सेवा में निवेदन कर चुका। आप लोगों ने धैर्य के साथ मेरे वक्तव्य को सुना इसके लिये मैं अपने को धन्य समझता हूँ और आप महानुभावों को हार्दिक-धन्यवाद देता हूँ। मेरे भाषण में यदि कुछ अनुचित निकल गया हो अथवा कोई त्रुटि रहगई हो, क्योंकि मुझ ऐसे व्यक्ति के भाषण में त्रुटि का रह जाना सर्वथा सम्भव है, तो आप अपनी उदारता से उसे क्षमा करेंगे।

समस्त हिन्दी-हितैषी सज्जनों से मेरा यही अन्तिम निवेदन है कि—

घनाक्षरी।

सुनिये सुलेखक सुजन सब सेवक की समय न चूकिये शरीर ये असार है। लिखिये ललित लेख लेखनी पकरि कर, रचिये रुचिर छन्द रुचि अनुसार है॥ जो कुछ जहाँ से जैसे मिले उपयोगी वस्तु जासों जिय जानो जाति देश उपकार है। सोई करो हिन्दी और राखो यों विचार हिये—
"नागरी-प्रचार देश उन्नति का द्वार है"।

हिन्दी भाषा।

[बाबू विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह लिखित]

आज जो अवसर उपस्थित है उससे बढ़कर समय देखने की आशा करना हम मनुष्यों का स्वभाव है। हमें आशा है कि हिन्दी के भक्तों का जो दूसरा समागम होगा उसमें हिन्दी की जीवनी की एक सुष्ठुतर कथा कही जायगी। उस समय बड़ा आनन्द होगा। इस वक़् से अधिक आनन्द हो तो हो लेकिन ऐसा आनन्द न होगा। उसमें यह नूतनत्व न होगा क्योंकि यह एक मुरझाई लता में आप लोगों के केवल भक्तिसिञ्चन से समुत्पन्न पहिला नहीं दूसरा फल होगा। जो लोग ऐसे दूसरे समागम के दिन देखेंगे वे धन्य होंगे। लेकिन आप लोग उनके भी धन्यवाद के—बधाई के—हार्दिक कृतज्ञता के पात्र हैं क्योंकि आप लोगों ने मातृ-भाषा की अविरत सेवा करके उस दिन का आज आरम्भ कर दिया। इसके लिये आप लोगों का एक अकिञ्चन अनुसरणेच्छु अपना उच्चतम कर्तव्य समझ कर प्रशंसा के मानस से नहीं क्योंकि आप लोग हमारी प्रशंसा या भक्ति के अधिकारी हैं—एक बार नहीं तीन बार शुद्ध अन्तःकरण से बधाई देता है। यही मुझे कहना था सो मैं कह चुका क्योंकि हिन्दी-भाषा के विषय में मैं आप लोगों की कोई अनजानी बात कह सकूँगा यह मुझे विश्वास नहीं है। मैं जिस कर्तव्य पालन के लिये आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ उसके गुरुत्व के स्मरण होने से सहृदय कवि की "उद्बाहुरिव वामनः" यह उक्ति याद आती है। लेकिन उद्बाहुत्व वामन का एक स्वभाव है यह सोचकर आप केवल रीझेंगे, रुष्ट न होंगे। इसकी मुझे पूरी आशा है।

स्काटलैण्ड के पण्डित एक डूगैल्ड स्टिवार्ट का नाम लोगों को याद होगा। जब विद्वद्वर सर विलियम जोंस ने रोपपालों पर यह प्रगट किया कि भारतवर्ष की पुरानी भाषा संस्कृत एक बहु-मर्म और सर्वाङ्गसुन्दर भाषा है, दार्शनिक स्टिवार्ट को विश्वास न हुआ। उन्होंने बड़े परिश्रम से अपने देशवासियों को समझाया कि दरअसल संस्कृत कोई ज़बान नहीं है जो कहीं कभी जारी रही हो बल्कि सर जोंस और भारतवर्षीय चतुर ब्राह्मणों की निरी कल्पना है जिसका पहिले कभी अस्तित्व न था। स्टिवार्ट ने द्वेष से ज़रूर ऐसा नहीं किया था। शायद उन्हें ऐसी धारणा हो हुई थी। जो हो, उनके मतावलम्बियों की आवाज़ अब सुनने में नहीं आती। भारतवर्ष में आजकल कोई ऐसे दार्शनिक नहीं हैं। यहाँ के लोग मानते हैं कि संस्कृत एक ज़माने में यहाँ प्रचलित भाषा थी अर्थात् एक समय इस देश के इतिहास में ऐसा था कि यहाँ के अधिक और प्रधानजाति के लोग रोज़मर्रा के कामों में संस्कृत बोलते थे। और भाषायें भी इस समय किसी कदर जारी थीं लेकिन व्यवहार और बोलनेवालों के मानसिक और नैतिक तथा अन्य दूसरी आवश्यक बातों का ख्याल कीजिये तो प्रधानता उस समय की संस्कृत ही की माननी पड़ेगी। यह समय भारतीय आर्य्यों के विक्रम का मध्याह्न होगा। धीरे धीरे स्वाभाविक कारणों से एक ओर संस्कृत बिगड़ी और दूसरी ओर इतर भाषाओं का व्यवहार बढ़ा, इससे प्राकृत बनी। प्राकृत से मेरा मतलब है संस्कृत नाटकों की स्त्रियों और नीच पात्रों भाषा के पहिले युग का प्रतिरूप। बाद को मत से प्राकृत की पुष्टि हुई और यह प्रादेशिक रूप में "मूलभाषा" कहलाई। में इसके व्याकरण संस्कृत के ढंग पर लिखे संस्कृत की जगह पर इसे बैठने का उद्योग गया। संस्कृत का ज़ोर इस समय कम हो गया लेकिन उसका अस्तित्व लोप नहीं हुआ यह कहीं कहीं बड़ी उन्नति कर रही थी।

जब बौद्धमत का ज़ोर घट चला, प्राकृत के व्याकरणों का बल भी कम होने लगा। चूँकि अपनी ज़िन्दगी में प्राकृत हमेशा लोगों की रोज़ रोज़ की भाषा रही, ज़माने के साथ उसका रूप बदलता गया, दिन दिन उसके श्रृङ्गार की सामग्री कम होती गई और सादगी आती गई। अनन्त परिवर्तनों के बाद उसका नाम हुआ है हिन्दी या उर्दू। वस्तुतः हिन्दी संस्कृत से निकली है। कुछ लोग संस्कृत नहीं प्राकृत से उसका उद्भव बतलाकर अपने कथन का अनुमेयार्थ जताते हैं कि संस्कृत और हिन्दी से वंश-परम्परा का कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरी समझ में ये लोग ग़लती पर हैं। समय नष्ट होने के भय से मैंने इस विकास के प्रतिरूप यथासाध्य नहीं दिखाये हैं। जो कोई यह प्रतिरूप समय समय के पुराने काव्यों में देखेगा इससे अन्यथा न सोचेगा।

जाना जाता है कि मुसलमानों के यहाँ आने के पहिले इस देश में अविद्या का अन्धकार छाया हुआ था। केवल अपनी भाषा और रायरस्म को हर प्रदेश के लोग उपादेय समझते थे। फल इसका यह हुआ था कि सधर्मी प्रदेशों के लोगों में जैसा मेल होना चाहिए वैसा न था। एक देश से दूसरे की भाषा साधारण से अधिक विभिन्न होगई थी। पढ़े लिखे लोग अकसर ब्राह्मण ही रह गये थे जिनका विश्वास था कि संस्कृत के सिवाय और भाषा में धर्म कर्म करने से अनुष्ठान भ्रष्ट हो जायँगे। इससे प्राकृत भाषाओं पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था। जब मुसलमान इस देश में आये, उन लोगों ने यहाँ की प्रजा की भाषा सीखी और उस पर अपना अमेट निशान छोड़कर अपने देश को लौट गए, या सम्भवतः उनमें से कुछ यहाँ रह भी गए। हिन्दुओं में दिन दिन अपनी विद्याओं का प्रचार घटता गया। ... से रसज्ञता कम हो गया यहाँ तक कि जब ... उठी, मधुमर्म और स्पष्ट संस्कृत के ... सादी घरेलू भाषा ज़बान पर आई। ... के बार बार अनिष्ट आगमन से इस ... में विदेशी शब्दों का ख़ासा मेल होगया था और होता जाता था। चन्द कवि के लेख इसी ज़माने के हैं। तब तक जो कुछ हो चुका था उसका अधिकांश चन्द के लेखों में अनुसन्धान करने से शायद मिल जायगा।

क़ुतुबुद्दीन ऐबक़ के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने से लेकर अकबर के पहिले तक का समय भाषा के इतिहास का दूसरा खण्ड है यह एक निराला ज़माना था। पण्डित संस्कृत में मशग़ूल थे, प्रजा फ़ारसी से मिली प्राकृत और विजेता मुसलमान फ़ारसी बोलते थे। फ़ारसी ने अपने ही देश में अरबी से बहुत कुछ लिया था। यह सब अब इस देश में आया। इस ज़माने के पूर्वार्ध में मुसलमान धर्म-प्रचार में लगे थे और हिन्दू धर्म की रक्षा करने में। बड़ी खलबली का ज़माना था। लोगों का मन स्थिर नहीं था, सदा उद्विग्न था इसी से प्रजा की भाषा में कोई नया हृदय देखने में नहीं आया। उत्तरार्ध में हिन्दू मुसलमान स्वाभाविक कारणों से आपस में मिलने लगे थे। धर्म-प्रचारक के अतिरिक्त मुसलमान अब शासक ही हो गए थे। उन्हें इस देशवाले की मदद ज़रूरी थी इसलिये उन्होंने यहाँ की भाषा उद्यम से सीखी होगी। उधर यहाँ वाले फ़ारसी के अन्य लफ़्ज़ अपने काम में लाकर ही सन्तुष्ट न हुए। फ़ारसी भाषा सीखी और शाही दफ़्तरों में नौकर हुए। दोनों ओर से सहानुभूति बढ़ी। मुसलमानों को इस देश की भाषा में स्वाद मिला तो भिन्न भिन्न समय पर अमीर .ख़ुसरू और मलिक मुहम्मद जायसी ने उत्तमोत्तम काव्य लिखे। हिन्दू धर्मरक्षा के लिये बोल चाल की भाषा में लिखने लगे। कबीरदास और गुरु नानक का उत्थान हुआ। इस समय तक हिन्दी का रूप स्पष्ट होगया था। इसे हिन्दू मुसलमान दोनों पसन्द करने लगे थे या कम से कम घृणा की जगह उदासीनता की आँख से देखने लगे थे।

अकबर के ज़माने तक मुसलमानों का मुख्य उद्देश्य धर्मप्रचार के बदले शासन होगया था, ऐसा कहना चाहिए। जब अकबर सम्राट हुआ

पी सही कसर मिट गई ; लोगों ने "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कहना पसन्द किया। अकबर विद्वानों का भक्त था उसने दिल्ली के दरबार में यहाँ वालों का आदर करने की प्रथा चलाई जो बहुत दिनों तक जारी रही। उसके समय में विद्या की उन्नति हुई। उस समय सर्वसाधारण की ज़बान रेख़्ता या उर्दू नहीं कहलाई होगी। मुमकिन है कि लोग इसे भाषा ही कहते हों क्योंकि तुलसीदास हमेशा यही शब्द व्यवहार करते हैं। रेख़्ता इसका नाम बाद को उस वक़्त पड़ा होगा जब यह अधिक मुसलमानों से सुनी जाने लगी होगी और बोलनेवालों के मन में यह सवाल पैदा हुआ होगा कि जिस भाषा में वे बोल रहे हैं उसे क्या कहना चाहिए। उसे फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, प्राकृत, व्रजभाषा अकेले कुछ भी नहीं कहा जा सकता था क्योंकि उसमें ये सब शामिल थीं। असल भाषा की सूरत पहचानना धीरे धीरे ग़ैरमुमकिन हो गया था। उससे [illegible]स नई ज़बान का नाम रेख़्ता रक्खा गया। स्वर्गीय मिर्ज़ा मुहम्मद हुसैन साहब कहते हैं:—"बयाने हाय [illegible]ज़्कूर से यह भी साबित होता है कि जो कुछ [illegible]मा किसी की तहरीक या इरादे से नहीं हुआ। [illegible]ल्कि ज़बान मज़कूर (अर्थात् व्रजभाषा) की तबी[illegible]यत ऐसी मिलन-सार वाक़े हुई है कि हर ज़बान से [illegible]मिल जाती है। संस्कृत आई उससे मिल गई। [illegible]रबी फ़ारसी से खिस्मिल्ला ख़ैर कुछ कम कहा— [illegible]त्यादि। इसी ज़बान को रेख़्ता भी कहते हैं [illegible]क्योंकि मुख़्तलिफ़ ज़बानों ने इसे रेख़्ता किया [illegible]। या रेख़्ता के मानी हैं गिरी पड़ी परीशान [illegible]चीज़। चूँकि इसमें अल्फ़ाज़ परेशान जमा हैं इस [illegible]लिये इसे रेख़्ता कहते हैं।" भाषा का यह नाम [illegible]शायद हिन्दी लफ़्ज़ के साथ भी ज़िन्दा था। जो हो, [illegible]से रेख़्ता कहनेवाले आलिम मुसलमान या हिन्दू [illegible]सको यहाँ की एक अलग ज़बान समझते थे और [illegible]नकी राय में रेख़्ता में फ़ारसी और अर्बी की [illegible]दयाओं का व्यवहार इसके मिज़ाज़ के ख़िलाफ़ था। [illegible]ाह मुबारक अबरू एक कवि थे। उनका एक शेर [illegible]हाँ पढ़ा था।

जो कि लावे रेख़्ते में फ़ारसी के फ़ेल व हर्फ़।
लग्व हैंगे फ़ेल उसकी शायरी पर हर्फ़ है।

रेख़्ता कहलाने के बाद यह भाषा उर्दू नहीं हिन्दी कहलाई। सन् १७७७ ई० की लिखी एक किताब की भूमिका में फ़ज़ली नाम के एक लेखक कहते हैं:–फिर दिल में गुज़रा कि ऐसे काम में अ.क़्ल चाहिए कामिल और मदद किसी तरफ़ की होय शामिल व यों कि बेताईद समदी यह मुश्किल सूरत पजीर न होवे... और अब तक तरजुमा फ़ारसी ब-ईबारत हिन्दी नसर नहीं हुआ मुस्तमूअ...। आश्चर्य यह है कि लिखनेवाला अपनी भाषा को 'हिन्दी नसर' कहता है और उद्धर्त्ता मिर्ज़ा साहब उसे 'नसर उर्दू' की पहिली तसनीफ़ समझते हैं। इस समय के हिन्दू कवियों की गद्य की पोथियाँ नहीं मिलती हैं। ख़ैर जो कुछ कहा गया उससे ज़ाहिर होता है कि मुहम्मदशाही ज़माने के लोगों की हिन्दी से अब की हिन्दी में बहुत अन्तर है। देखिए—

वली:

> बेवफ़ाई न कर ख़ुदा सों डर।
> जग हँसाई न कर ख़ुदा सों डर॥
> याद करना हर घड़ी तुझ यार का।
> है वजीफा मुझ दिले बीमार का॥
> मत जा चमन मों लाल पे
> बुलबुल यह मत सितम कर।
> गर्मी से तुझ निगह की
> गलगल गुलाब होगा।
> निकला है वह सितमगर
> तेग़े अदा को लेकर।
> सीने पै आशिक़ों के
> अब क़तहयाब होगा॥

आबरू:

> क़ामत का सब जगत् मने
> बाला हुआ है नाम।
> क़द इस क़दर बुलन्द
> — — —

उस समय मै की जगह मैं, मो, मैंही लिखते थे। जग में जग मगे दोनो चलते थे। मुझ दिल, तुझ लब, आंसुओं की जगह अंसुआँ या अंसुवान जो ब्रजभाषा का अंसुवान है, अंखें, पलकें की जगह अंखां, पलकां और हमको के बदले हमन को लिखते थे। विशेष्य के वचनानुसार विशेषण का वचन बनाते थे।

मुलायम हो गईं दिलबर
बिरह की सायतें कड़ियाँ।
पहर कटने लगे उन बिन
कटरीं जिन बिना घड़ियाँ॥

मुसलमान लेखक अपनी लफ़्ज़ों की कमी अरबी फ़ारसी से और हिन्दू संस्कृत प्राकृत से पूरी करते थे। साधारणतः दोनों एक ही भाषा लिखते थे। हरूफ़ कभी कभी एक ही और कभी कभी भिन्न होते थे। जब कविता का रवाज़ बढ़ चला। भाव की ज़रूरत हुई, कवि-समय की ज़रूरत हुई, आख्यानों की खोज पड़ी। हिन्दुओं ने पुराणों की मदद ली और पुराणों के अनभिज्ञ मुसलमानों ने अरब और फ़ारिस के कविसमय अवलम्बन किए, वहीं के कवियों की शैली का अनुकरण किया। मुसलमानों की पारसीक शैली और कवि समय का फल बक़ौल पूर्वोक्त मिर्ज़ा साहब के यह हुआ कि इस मुल्क की ज़बान की ' इन्शापरदाज़ी ' और 'ख़ूबने बयान, को सदमा नुक़सान पहुँचा।

जब प्रतापशाली अंगरेज़ इस देश के राजा हुए, उन्हें यहाँ की भाषा सीखनी पड़ी। वारेन हेस्टिंग्स ही ने इसकी नींव डाली थी। उसके बहुत दिनों के बाद, जब इस देश की भाषा का व्याकरण बनाने के लिये सरकार ने जान गिलक्रिस्ट को निगरानी में पण्डितों और मौलवियों को नियत किया, उन्होंने एक ही भाषा के दो व्याकरण बना डाले। एक वह था जिसमें इबारत हिन्दी की और पारिभाषिक तथा दूसरे शब्द फ़ारसी के थे। दूसरी [illegible] बनी जिसमें वर्षा फ़ारसी की जगह [illegible] के लफ़्ज़ थे। मदरसों में इसी तरह की किताबें जारी हुईं। उधर सन् १८३५ [illegible] दफ़्तरों में फ़ारसी जारी थी। यही गोया उन्नति का द्वार था। इसी के प्रसाद से पढ़े लिखे लोग सरकारी नौकरियाँ पाते थे। इसका यह फल हुआ कि नागरी अक्षर सिवाय देहात और कुछ लोगों की चिट्ठियों के सब जगह से निकल दिए गए। क्रिस्तान पादरी अपने काम की अधिक किताबें नागरी अक्षरों ही में छपवाते थे। ज़माने ने पलटा खाया। कुछ पढ़े लोगों को नागरी अक्षरों से अनुराग हुआ। इतिहास का यह अध्याय स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए। स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद का इस ज़माने के पूर्वार्ध और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का इसके उत्तरार्ध से विशेष सम्बन्ध है। भारतेन्दु को छोड़ कर नागरी अक्षरों का प्रचार बढ़ाने के लिये राजा शिवप्रसाद की तरह चेष्टा किसी एक व्यक्ति ने उस ज़माने में न की। राजा साहब की तरह भाषा के मर्मज्ञ हिन्दी जाननेवाले उस समय बिल्कुल कम थे। उस वक़्त की लिखी किताबों से यही प्रतीत होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यहाँ के पढ़े लिखे लोगों में हिन्दी लिखने का शौक़ बढ़ाया। भारतेन्दु ने हिन्दी लिखी ही नहीं बल्कि उसके लेखक भी बनाए। उन्हीं की दिखाई राह पर हम लोग आज कल चल रहे हैं।

हिन्दी भाषा आज कल जैसी मदर्सों में पढ़ाई जा रही है उसे देख कर सुख तो नहीं होता। मैंने एक दिन एक लड़के से पूछा "क्यों, लड़के, क्या पढ़ते हो?" जवाब मिला "इन्डियन प्रेस रीडर"। मैं ने घबरा कर पूछा "क्या अँगरेज़ी पढ़ते हो?" लड़के ने कहा "नहीं साहब, हिन्दी पढ़ता हूँ कि अँगरेज़ी"। जहाँ किताबों का नाम रखने के लिये हिन्दी के शब्द नहीं मिलते वहाँ की भाषा का तो कुछ पूछना ही व्यर्थ है। अकसर हिन्दी किताबों के नाम अँगरेज़ी हैं, जैसे, जेनरेल हिन्दी रीडर, हिन्दी प्राइमर वगैरह। इस पर आप लोगों का विशेष ध्यान होना चाहिए क्योंकि यह आपदा शीघ्रता ही में उपस्थित है। यह उद्गमस्थान का दूषण है इससे समस्त नदी का जल दूषित हो जायगा।

हिन्दी के आधुनिक जिज्ञासुओं की कठिनाइयाँ ज्यों ज्यों कम होती जाँयगी हिन्दी उन्नत होती जायगी। हिन्दी की पुरानी किताबों के अच्छे संस्करणों का बड़ा अभाव इस समय है। अँगरेज़ी चाल के संस्करण हैं ही नहीं। काव्य-ग्रंथों की आलोचना सहित टीका हुई ही नहीं। तुलसीदास की भाँति सर्वप्रिय और उत्तम कवियों के काव्यों के वेरिओरम शेक्सपियर की नक़ल पर कितने संस्करण हिन्दी में हुए हैं? काशी में तुलसीदास के स्थान का दर्शन करने हिन्दीपढ़नेवाले कितने आते हैं?—लोगों में जब साहित्य का इतना चाव बढ़ जायगा, हिन्दी उन्नत कहलायेगी, पुनरुद्धार में क्या काम करना होगा, आप लोग अब इससे समझ सकते हैं।

हिन्दी बोलने वाले एक दम विज्ञान और दर्शन नहीं जानते ऐसा कहना अनभिज्ञता है। हिन्दी में, लेकिन, विज्ञान और दर्शन की किताबें बिलकुल कम हैं। इस क़िस्म की सर्वप्रिय किताब तो हैं ही नहीं।

लिखने में हिन्दी वाले अपनी अपनी अलग गाते हैं। समझाइये, तो जली कटी सुनाते हैं-इस व्यर्थ भय से कि मान लेने पर प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। मेरी प्रार्थना है कि हिन्दी के रथी अपनी यह प्रथा सुधारें। उपदेश मैं नहीं दे रहा हूँ, न देने के योग्य अपने को समझता हूँ। परन्तु विनय मैं फिर करता हूं यह पुरानी प्रथा सुधारी जाय। और बात हमें यह कहनी है—केवल दशकुमारचरित के समासों से हिन्दी की शुद्धि न की जावे, न अर्बी और फ़ारसी की नक़ल से होगी। अब तक जो विदेशी शब्द चल गए हैं वे रहें परन्तु उधार स्वदेश से लिया जाय। पारिभाषिक शब्द नये जो हों वे संस्कृत के और पुराने वही हों जो पहिले से रायज हैं। भाषा ज़रूरत के मुआफ़िक़ अलग अलग हो सकती है पर उसकी आत्मा एक ही होनी चाहिए।

हिन्दी की वर्तमान दशा और उसकी समुन्नति का उपाय।

[बाबू कोड़ीमल्ल मान्नू लिखित ।]

हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये आज कई वर्षों से विविध उद्योग हो रहे हैं परन्तु वास्तव में हिन्दी की जो दशा तीस पैंतीस वर्ष पूर्व थी आज उससे भी निकृष्ट जान पड़ती है। जिन लोगों ने उन दिनों के "सार-सुधानिधि" आदिक पत्र पढ़े होंगे वे इस अंतर को जान सकते हैं। प्राचीन लेखकों का लक्ष्य हिन्दी को "साधुभाषा" बनाने पर था। आधुनिक लेखकों की दृष्टि में कि जो 'मुंशियाना' हिन्दी के पक्षपाती हैं यह साधुभाषा ब्राह्मणी भाषा समझी जाकर हेलास्पदा हो रही है। जिन लोगों ने बंकिम चंद्र आदि बंगाली लेखकों के ग्रंथ पढ़े हैं वे समझ सकते हैं कि हिन्दी की आज कैसी दुर्बल दशा हो रही है।

हिन्दी की उन्नति के उपाय सोचने के पहिले इस बात का निश्चय कर लेना परमावश्यक है कि भविष्यत् में हिन्दी की लेखशैली बँगला साधुभाषा के सदृश होनी चाहिये या पारसियों की गुजराती कीसी। उक्त विचार करने के पूर्व यह समझ लेना भी आवश्यक है कि मराठी आदि भाषाओं की भाँति गुजराती भी एक प्रान्तिक भाषा है और जो भाषा प्रान्तिक है उसका चाहे अपने ही भंडार से थोड़ा बहुत निर्वाह हो भी सकता हो परन्तु हिन्दी किसी एक प्रान्त की भाषा नहीं है। हिन्दी के वृत्त में पश्चिमोत्तर, अवध, मध्यमंडल, मध्यप्रान्त, राजपूताना, मध्यदेश इत्यादि कई प्रान्त आजाते हैं। ऐसी दशा में हिन्दी अपना निज का भंडार कैवसी प्रान्तीय भाषा बोरा के समझ सकती है?। जब हिन्दी का अपना कोई शब्द भंडार नहीं फिर उसकी पूर्ववत् बोरा रचना में समय और द्रव्य हानि कहाँ तक आवश्यक हो सकता है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ भारतीय किसी भी कार्य [illegible]

या दोनों की सहायता आवश्यक होती है। स्वर्गीय राजा शिवप्रसाद और उनके अनुयायियों की रुचि चाहे संस्कृत की अपेक्षा फ़ारसी पर अधिक रही हो परन्तु यदि हिन्दुओं में अपनी मातृभाषा के साथ अणुमात्र भी प्रेम अवशिष्ट हो तो हिन्दी को संस्कृत शब्दों से पूर्णतया अलंकृत कर उसे साधुभाषा बनाना ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। परन्तु यह बात तभी हो सकती है जब समाचार-पत्रों के सम्पादक दूसरी भाषाओं के साथ संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् हों और हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें बँगला की भाँति उच्चश्रेणी की हों। बँगला की प्रारंभिक पुस्तकों में जो संस्कृत शब्द सिखलाये जाते हैं वे हिन्दी के बहुधा पत्र-सम्पादकों की समझ में भी नहीं आसकते। बँगला प्रान्तिक भाषा होने पर भी इसमें संस्कृत शब्दों का अधिकतर प्रयोग होता है और यही कारण बँगला-साहित्य की उन्नति का है।

आज कल कई लोग हिन्दी को "मातृभाषा" कहके पुकारते हैं।

समास भेद से मातृभाषा के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

(१) जो है जननी दूसरी भाषाओं की।

(२) मातृभाषा संस्कृत से है निविड़ सम्बंध जिसका।

(३) मातायें बोलती हैं जिस भाषा को। इत्यादि

परन्तु उक्त ३ अर्थों में से १ भी हिन्दी पर नहीं घट सकता। कारण—

(१ व २) हिन्दी दूसरी भाषाओं की जननी नहीं हो सकती, न हिन्दी का संस्कृत के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना मरहठी तथा गुजराती के साथ पाया जाता है। इसके कई [illegible] [illegible] हैं परन्तु यहाँ मुझे केवल [illegible] [illegible] देना है।

	संस्कृत	गुजराती
एकवचन	दुर्बलो (जनः)	दूबलो (माणस)
बहुवचन	दुर्बला (जनाः)	दूबला (माणस)
	मारवाड़ी	हिन्दी
	दूबलो (मिनख)	दुबला (मनुष्य)
	दूबला (मिनख)	दुबले (मनुष्य)

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुजराती तथा मारवाड़ी के एकवचन और बहुवचन के रूप संस्कृत के समान हैं परन्तु हिन्दी के रूप जो सदैव उर्दू के सदृश होते हैं सर्वथा भिन्न हैं। हिन्दी की संस्कृत के साथ आभ्यंतरिक भिन्नता होने का कारण यही है कि वास्तव में हिन्दी का अस्थि-पंजर "उर्दू minus Persian Arabic (words) plus Sanskrit (words)=हिन्दी" इस योजना से बनता है। फ़ारसी अरबी के कई शब्द हिन्दी के साथ ऐसे परिचित होगये हैं कि आज़ाकी हिन्दी में भी उनका व्यवहार कर्णकटु जान नहीं पड़ता। यथा "मुनीम" (व) "विदा" "मसाला" "तकिया" "सोग" इत्यादि।

(३) हिन्दी वास्तव में जितने मुसल्मानों की ज़नानी भाषा है उतने हिन्दुओं की नहीं—कारण इसका यही है कि हिन्दी के अधिकांश व्याकरण विषयक नियम उर्दू से मिलते हुए हैं कि जो कई प्रान्तों के मुसलमानों की ज़नानी (जननी) भाषा है और हिन्दू समाज में जब तक स्त्रीशिक्षा का पूर्ण प्रचार होकर शताब्दियें न बीत जांयगी तब तक हिन्दी का ज़नानी भाषा समझना भ्रममात्र है। जो हो। हिन्दी के मातृभाषा बनाने के लिये अभी हिन्दुओं के शताब्दियों तक शाश्वत यत्न करना होगा और जब तक संस्कृत के समृद्ध शब्द भंडार और उसकी विचक्षण समास प्रक्रिया का सादर उपयोग न होगा हिन्दी-साहित्य की उन्नति होना असंभव है। सारांश मेरे कथन का यह है कि हिन्दी को मुंशियाना हिन्दी बनाने की अपेक्षा आर्यभाषी हिन्दी बनाने ही में हिन्दुओं का गौरव है।

"मख़ज़न" उर्दू भाषा का एक विशाल मासिक पत्र है जो लाहौर से प्रकाशित होता है। इसके मई सन् १९१० के अंक में "तालीम संस्कृत की ज़रूरत" शीर्षक लेख जो एक मुसलमान सज्जन की सुयोग्य लेखिनी और उदार हृदयता का परिचय देता है पढ़ने योग्य है। उस बड़े लेख में मौलवी महमूद अली साहब प्रोफ़ेसर रणधीरकालेज लिखते हैं—

"संस्कृत भी ऐसी ही वसीअ ज़बान है इसलिये अगर इसके जानने वाले बहुत हो जाँय तो रोज़मर्राह के करोबार में इन लोगों की ज़बान से ज़रूर संस्कृत अल्फ़ाज़ निकला करेंगे और होते होते मुरव्वज ज़बान का जुज़्व बन जाँयगें और इसलिये संस्कृत की इशाअत का एक बड़ा फ़ायदा यह होगा कि हमारी मुल्की ज़बान वसीअ होजायगी और इक़तसार के साथ बहुत से उम्दा मतालिब अदा होसकेंगे"।

एक मुसलमान बन्धु की क़लम से ऐसी सुमति देखकर उन हिन्दुओं के लज्जित होना चाहिए कि जो हिन्दी में संस्कृत का शब्दबाहुल्य देखकर खिन्न होते हैं। जिस संस्कृत का विदेशीय अथवा विधर्मीय विद्वान् कि जिनका संस्कृत के साथ कोई धार्मिक सम्बन्ध नहीं, इतना आदर करे उस देववाणी पर जो हमारी धार्मिक विद्या है हम लोगों का अश्रद्ध रहना हमारा मौर्ख्य एवं दुर्भाग्य नहीं तो क्या है। चाहे जितनी सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्य-सम्बन्धिनी सभायें रची जाँय किन्तु हिन्दू-समाज की वास्तविक उन्नति बिना संस्कृत प्रचार के नितान्त दुःसाध्य है।

संस्कृत शब्द व्यवहार बिना न तो हिन्दीलेखों में लालित्य हो सकता है न संक्षेप। दुःख का स्थान है, कि आधुनिक कई पत्र-सम्पादकों का संस्कृत शब्द ज्ञान इतना दुर्बल है कि यदि कोई समासान्त शब्द आजाता है तो उसे कुछ का कुछ समझ कर छाप देते हैं। यदि कोई दीक्षित हिन्दी लिखता है तो वह पढ़ी तक नहीं जाती और शुद्ध हिन्दी लिखने के लिये लेखक को उपदेश करते हैं। शुद्धाशुद्ध होने से ही हिन्दी शुद्ध नहीं होसकती। अंगरेज़ी में कुछ

से बुरा लेख होगा वह भी याथातथ्य पढ़ लिया जाता है और आज तक किसी सम्पादक ने यह किसी लेखक को नहीं कहा कि तुम्हारी अँगरेज़ी लिपि शुद्ध नहीं है। क्या ही उत्तम हो यदि नागरी—हिन्दी-प्रचार के साथ ही संस्कृत प्रचार के लिये भी शाश्वत उद्योग होते रहें और इसी सम्मेलन के शुभ अवसर पर संस्कृत-प्रचार-सम्बन्धिनी संस्था की स्थापना होकर काशी और सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले सुजनों को सुयश प्राप्त हो।

पंजाब में हिन्दी।

[पंडित सन्तरामशर्मा लिखित।]

(प्रार्थना)

राष्ट्रभाषा भवेद्देव "हिन्दी" सर्वाङ्गसुन्दरी।

आत्मीयभाव।

पूजनीय महानुभाव मातृभाषा–हितैषियो तथा राष्ट्र-भाषा संस्थापक बन्धुओ, जो विचार 'पंजाब में हिन्दी के संबन्ध में' मैं आपकी सेवा में भेंट करना चाहता हूँ वे बड़ेही विचित्र तथा सोचनीय हैं इन्हें यदि कोई विद्वान् अनुभवी साहित्य-सेवी वर्णन करता तो आपको उसके वास्तविक रूप का दर्शन करा सकता जिससे आप आगे को इसका उपाय बिना संकोच के कर सकते, क्योंकि मैं न तो विद्वान् हूँ और न दुर्भाग्यतः मुझे विशेष-साहित्य-सेवी विद्वानों की संगति प्राप्त हुई है जिससे कि मैं अपने शब्दों को रुचिकर तथा रसपूर्ण बना सकूँ। तथापि इस साहित्य-सेवा रूपी मातृ-पूजा को परम श्रेयस्कर मान कर इस मातृपूजनोत्सव में जिस में कि प्रायः भारतमाता के सबही सपूत अपने हाथों सैंकड़ों वर्षों से सुलाई हुई माता को सरस्वतीशयन के दिनों में भी दिन में सोने को सोना समझ तथा विशेष कर माता का सोना पुत्रों के लिये अहित कर जान अपनी उत्तमोत्तम सामग्री (वचन कुसुमादि) से जगाना तथा पूजना चाहते हैं, मैं पूजन-विधि से अज्ञ तथा पूजोपकार से शून्य होने पर भी कृतघ्नता के दोष से बचने के लिये यथा कथंचित् उपस्थित होता हूँ। या यों कहिए कि मातृ-भाषा से जीवनोपयोगी शक्ति प्राप्त कर माता के बल को क्षीण होते देख आपसे सहृदों के समक्ष माता की रोगदशा वर्णन करता हूँ जिससे उत्तम ओषधि प्राप्त कर माता की साहित्य-सम्बन्धिनी दशा को पूर्ववत् प्रतिष्ठा में ला सकूँ।

आशा है आप अपने निदान-शास्त्रों से रोग के आदिकारण, साध्य, सुसाध्य, कष्टसाध्य आदि अवस्थाओं को विचारकर ऐसी ओषधि देंगे जिससे कि सर्व प्रकार की आधि-व्याधि तथा निर्बलता दूर हो जाय, और मैं मातृ भाषा के रक्षाहस्तों से हीन अनाथों की तरह न रहूँ किन्तु मातृवान् कहलाऊँ। वैद्यवर कृपया आप रोग के निदानादि विचार के मेरे अस्पष्ट तथा असंस्कृत शब्दों की अपेक्षा न कर मेरे आशय को समझ वा 'अनुकमप्यूहति पंडितो जनः' के अनुसार अपनी सद्विद्या से उचित चिकित्सा को और मेरे भाव को पूर्ण करें।

२—पूर्वदशा।

आर्यगण्य पंजाब की पवित्र भूमि में प्राचीन काल में जो मान मातृभाषा (संस्कृत-हिन्दी) का था उसे स्मरण कर हमें दुःख होता है। विद्या तथा पवित्रता के सुपुष्पित क्षेत्र जिस काशी धाम में बैठे आज हम अपने पूर्वजों के विद्यानुराग को गारहे हैं और जिसके प्रताप से सारा संयुक्त प्रान्त शोभा प्राप्त कर रहा है यह किसी समय आर्यों की वीर भूमि व देवनिर्मित भारत का उत्तरीय पवित्र खंड (पंजाब) भी काश्मीर आदि पुण्य-क्षेत्रों के प्रभाव से इसी प्रकार महान् तथा शोभनीय था। परम शोक है कि विकराल काल के तीक्ष्ण कुदाल से आज यह खंड, खंडित और अनार्यों के अनाचारों की धूलि से धूसरित हो रहा है। अस्तु,

हिन्दी हितैषी सज्जनो, आपकी सर्व बलपुता 'हिन्दी' को जितने रूप पंजाब में धारण करने पड़े हैं उतने कदापि दूसरे प्रान्तों में न धारने पड़े होंगे। अर्थात् जिस पंजाब में किसी समय स्वच्छ तथा शुद्धरूप हिन्दी को प्राप्त था यवनों के भारत में आने के लिये द्वार होने के कारण यवन राजाओं के आक्रमणों के सबसे पहिले पंजाब में हिन्दी का नाम वा रूप मलिन हुआ और इस मलिनता दूर करने का प्रयत्न सबसे पीछे पंजाब में हुआ और वह भी पर्याप्त नहीं। और वास्तव में तो यवन-राज्य में हिन्दू-राजाओं के साथ

से बुरा लेख होगा वह भी याथातथ्य पढ़ लिया जाता है और आज तक किसी सम्पादक ने यह किसी लेखक के नहीं कहा कि तुम्हारी अँगरेज़ी लिपि शुद्ध नहीं है। क्या ही उत्तम हो यदि नागरी—हिन्दी-प्रचार के साथ ही संस्कृत प्रचार के लिये भी शाश्वत उद्योग होते रहें और इसी सम्मेलन के शुभ अवसर पर संस्कृत-प्रचार-सम्बन्धिनी संस्था की स्थापना होकर काशी और सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले सुजनों को सुयश प्राप्त हो।

——:0:——

पंजाब में हिन्दी ।

[पंडित सन्तरामशर्मा लिखित ।]

(प्रार्थना)

राष्ट्रभाषा भवेदेव "हिन्दी" सर्वाङ्गसुन्दरी ।

आत्मीयभाव ।

पूजनीय महानुभाव मातृभाषा-हितैषियो तथा राष्ट्र-भाषा संस्थापक बन्धुश्रो, जो विचार 'पंजाब में हिन्दी के संबन्ध में' मैं आपकी सेवा में भेंट करना चाहता हूँ वे बड़ेही विचित्र तथा सोचनीय हैं इन्हें यदि कोई विद्वान् अनुभवी साहित्य-सेवी वर्णन करता तो आपको उसके वास्तविक रूप का दर्शन करा सकता जिससे आप आगे को इसका उपाय बिना संकोच के कर सकते, क्योंकि मैं न तो विद्वान् हूँ और न दुर्भाग्यतः मुझे विशेष-साहित्य-सेवी विद्वानों की संगति प्राप्त हुई है जिससे कि मैं अपने शब्दों को रुचिकर तथा रसपूर्ण बना सकूँ । तथापि इस साहित्य-सेवा रूपी मातृ-पूजा को परम श्रेयस्कर मान कर इस मातृपूजनोत्सव में जिस में कि प्रायः भारतमाता के सबही सपूत अपने हाथों सैंकड़ों वर्षों से सुलाई हुई माता को सरस्वतीशयन के दिनों में भी दिन में सोने को सोना समझ तथा विशेष कर माता का सोना पुत्रों के लिये अहित कर जान अपनी उत्तमोत्तम सामग्री (वचन कुसुमादि) से जगाना तथा पूजना चाहते हैं, मैं पूजन-विधि से अज्ञ तथा पूजोपकार से शून्य होने पर भी कृतघ्नता के दोष से बचने के लिये यथा कथंचित् उपस्थित होता हूँ। या यों कहिए कि मातृ-भाषा से जीवनोपयोगी शक्ति प्राप्त कर माता के बल को क्षीण होते देख आपसे सहृदों के समक्ष माता की रोगदशा वर्णन करता हूँ जिससे उत्तम औषधि प्राप्त कर माता की साहित्य-सम्बन्धिनी दशा को पूर्ववत् प्रतिष्ठा में ला सकूँ । आशा है आप अपने निदान-शास्त्रों से रोग के आदिकारण, साध्य, सुसाध्य, कष्टसाध्य आदि अवस्थाओं को विचारकर ऐसी औषधि देंगे जिससे कि सर्व प्रकार की आधि-व्याधि तथा निर्बलता दूर हो जाय, और मैं मातृ भाषा के रक्षाहस्तों से हीन अनाथों की तरह न रहूँ किन्तु मातृवान् कहलाऊँ । वैद्यवर कृपया आप रोग के निदानादि विचार के मेरे अस्पष्ट तथा असंस्कृत शब्दों की अपेक्षा न कर मेरे आशय को समझ वा 'अनुक्तमप्यूहति पंडितो जनः' के अनुसार अपनी सद्विद्या से उचित चिकित्सा को और मेरे भाव को पूर्ण करें ।

२—पूर्वदशा ।

आर्यगण पंजाब की पवित्र भूमि में प्राचीन काल में जो मान मातृभाषा (संस्कृत-हिन्दी) का था उसे स्मरण कर हमें दुःख होता है । विद्या तथा पवित्रता के सुपुष्पित क्षेत्र जिस काशी धाम में बैठे आज हम अपने पूर्वजों के विद्यानुराग को गारहे हैं और जिसके प्रताप से सारा संयुक्त प्रान्त शोभा प्राप्त कर रहा है वह किसी समय आर्यों की वीर भूमि व देवनिर्मित भारत का उत्तरीय पवित्र खंड (पंजाब) भी काश्मीर आदि पुण्य-क्षेत्रों के प्रभाव से इसी प्रकार महान् तथा शोभनीय था। परम शोक है कि विकराल काल के तीक्ष्ण कुदाल से आज वह खंड, खंडित और अनार्यों के अनाचारों की धूलि से धूसरित हो रहा है । अस्तु,

हिन्दी हितैषी सज्जनो, आपकी सर्व बलयुता 'हिन्दी' को जितने रूप पंजाब में धारण करने पड़े हैं उतने कदापि दूसरे प्रान्तों में न धारने पड़े होंगे । अर्थात् जिस पंजाब में किसी समय स्वच्छ तथा शुद्धरूप हिन्दी को प्राप्त था यवनों के भारत में आने के लिये द्वार होने के कारण यवन राजाओं के आक्रमणों के सबसे पहिले पंजाब में हिन्दी का नाम वा रूप मलिन हुआ और इस मलिनता दूर करने का प्रयत्न सबसे पीछे पंजाब में हुआ और वह भी पर्याप्त नहीं । और वास्तव में तो यवन-राज्य में हिन्दू-राजाओं के साथ

ही हिन्दी (भाषा को) भी सिंहासन च्युत कर दिया गया। अर्थात् यवन-शासक यद्यपि पंजाब में हिन्दी का जीवन-नाश नहीं कर सके पर उन्होंने इसकी जीवन-ज्योति अवश्य हर ली जिससे हिन्दी ने पराजित राजाओं की तरह गिरि-गह्वरों का आश्रय लिया। दूसरे शब्दों में पंजाब में एक ऐसा समय आया जिसमें कि न केवल हिन्दीभाषी ढंढाई समझे गए किन्तु हिन्दी-भाषा (नागरी) भी विद्रोहिणी शक्ति समझी गई, यही कारण था कि हिन्दी के सच्चे सेवक गुरु अंगदजी ने हिन्दी के आकार की हिन्दी की रक्षा के लिये गुरुमुखी वर्णमाला बनाई और अपने धार्मिक भावों को म्लेच्छ भाषा (उर्दू-फ़ारसी) में प्रगट करना लज्जास्पद समझ अपने जातीय भावों की रक्षा के लिये हिन्दी की ही प्रतिनिधि पंजाबी भाषा प्रचलित की जिसका प्रमाण पाँचवें सिक्खगुरु श्री अर्जुनदेवजी की संग्रहीत पुस्तक (ग्रंथ साहिब) की रचना से मिलता है।

३—पुनरुत्थान।

इसके पीछे यवन-राज्य में भी विद्या-प्रेमी यवन-शासकों के गुणग्राही भावों से हिन्दी का फिर उत्थान (प्रकाश) हुआ और यह वह समय था जब कि संस्कृत तथा हिन्दी के दिव्य ग्रंथों की छाया साहित्य-रस प्राप्त करने के लिये उर्दू तथा फ़ारसी में ली गई।

४—सिक्खों के राज्य में हिन्दी।

जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है सिक्ख गुरुओं ने आपत्काल में हिन्दी की रक्षा के लिये ही गुरुमुखी रची थी और जब यह विपत् टलगई तथा हिन्दी-सेवक गुरुभक्त सिक्खों को शुभावसर तथा साम्राज्य मिला, उन्होंने झट स्थान स्थान पर संस्कृत तथा हिन्दी की पाठशालायें स्थापित कर दीं तथा देश भर के गुरुद्वारों में हिन्दी-ग्रंथों (विचारसागर, योगवाशिष्ठ, हनुमान्नाटक आदि) का मान बढ़ा दिया और जगह जगह उपनिषद्, गीता आदि की कथायें खुलवा दीं। और थोड़ी देर में ही हिन्दी का यहाँ तक गौरव बढ़ा कि राज-कर्मचारी तथा राजकृत्य (स्टाम्प, मोहर, सिक्के आदि) भी हिन्दी में हो गए। और यह सिलसिला सि[illegible] रियासतों में ही नहीं वरन अङ्गरेज़ी इलाक़े [illegible] १९ वीं सदी के अन्त तक नहीं तो उपान्त्य तक रहा ही, और इस दशा को अङ्गरेज़ी चाल ढाल [illegible] बड़ा धक्का लगा जिसमें कि पुराने रंग-ढंग [illegible] शालाओं के स्थान पर स्कूल खुल गए जिस[illegible] साक्षी सरकारी काग़ज़ों से भी मिलती है जि[illegible] लिखा है कि "अङ्गरेज़ी राज्य से पूर्व देश में अने[illegible] अनियमित शालायें थीं जिनमें हिन्दी में पढ़ाई कर[illegible] जाती थी और ज्यों ज्यों सरकारी रीति भाँति [illegible] स्कूल खुलते गए त्यों त्यों ही घटती गईं। यहाँ त[illegible] कि आज उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी ज[illegible] सकती है। हमारे ख़याल में इस ढंग से भी 'पञ्जाब' की हिन्दी, की गति में रोक पड़ रही है।

५—यूनीवर्सिटी की शिक्षा का परिणाम।

अन्य प्रान्तों में यूनीवर्सिटी की शिक्षा से देशी भाषाओं की चाहे उन्नति हुई हो पर पञ्जाब में तो इसके जारी होने से सर्वसाधारण में रोटी का प्रश्न उठ पड़ने तथा देशी-भाषा का स्थान उर्दू से रोके जाने के कारण (हिन्दु लीडरों के अविचार से) देश-भाषा हिन्दी को बहुत ही नुक़सान हुआ है, क्योंकि धर्म-शिक्षा से लोगों की रुचि सर्वथा हट गई थी।

६—स्वामी दयानन्दजी का काम।

हमारा ख्याल है कि इस समय में अगर स्वामीजी इस ओर दृष्टि न उठाते तो हिन्दी-सेवकों को पञ्जाब में हिन्दी के आसन के लिये नए सिरे से जगह बनानी पड़ती। सन् १८७० के पीछे स्वामीजी ने जहाँ लोगों को वैदिक धर्म में आने के लिये हिन्दी-भाषा द्वारा प्रेरणा वहाँ वैदिक धर्म (आर्य समाज) में प्रविष्ट होनेवाले पुरुषों के लिये आर्य समाज के १५ वें उपनियम तथा प्रवेशपत्र के नियम से हिन्दी

लाने का नियम बनाया जिससे सहस्रों परिवारों में हिन्दी का आदर हो गया।

७—पञ्जाब के साहित्य-सेवी।

स्वामीजी के अतिरिक्त अनेक और सज्जनों ने भी लेख तथा व्याख्यानादि द्वारा हिन्दी-साहित्य की उचित सेवा की है, जिनमें से कुछ नाम ये हैं—१ पण्डित भानुदत्तजी विशारद, २ पण्डित श्रद्धाराम फुल्लौरी, ३ पण्डित सत्यानन्द अग्निहोत्री ४ बाबू नवीनचन्द्रराय (ब्राह्मण) ५ लाला मुंशीलाल एम ए० मालिक अखबार प आम, ७ श्रीमती हरदेवी, धर्मपत्नी बैरिस्टर रोशनलालजी संस्थापिका 'भारत भगिनी, लाहौर, ८ श्रीहेमन्तकुमारी सुपुत्री बाबू नवीनचन्द्रराय, ९ पण्डित ज्वालादत्तजी। इन लोगों के पुरुषार्थ से एक मित्रविलास, दूसरा इन्दु, तीसरा स्वदेश-वस्तुप्रचारक, चौथा स्वदेशबन्धु, पाँचवाँ विद्या-प्रचारक, छठाँ जीवन-पथ, सातवाँ क्षत्रि-पत्रिका, आदि पत्र भी निकले थे पर शोक कि वे सब बन्द हैं।

८—सामाजिक पुरुषार्थ।

इन महात्माओं के पुरुषार्थ के पीछे पञ्जाब के हिन्दी-हितैषियों ने बड़े बड़े नगरों में हिन्दी सभायें भी स्थापित कीं जिनके द्वारा भी कुछ प्रचार हुआ पर यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई जैसी कि अन्य प्रान्तों में होती रही है।

९—आर्यसमाज का प्रयत्न।

आर्यसमाज का पञ्जाब में सामाजिक बल बहुत बढ़ा हुआ है और उसके नियमोपनियमों में भी हिन्दीप्रचार पर ज़ोर दिया है। इसलिये उसने सबसे बढ़ कर इस ओर प्रयत्न किया और उसको इसमें यहाँ तक सफलता भी प्राप्त हुई कि हिन्दी जाननेवालों की संख्या लाखों तक पहुँच गई है और प्रतिदिन बढ़ रही है। समाज के उपदेशक, साप्ताहिक पत्र, धर्मपुस्तक, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज वा स्कूल, ऐंग्लोसंस्कृत स्कूल गुरुकुल, संस्कृतपाठशालायें, कन्यामहाविद्यालय तथा कन्या-शालाएँ देश में हिन्दी का मान बढ़ाने के लिये हर वक्त लगे रहते हैं। इनमें से केवल लाहौर का दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज इस समय २२ सौ से अधिक छात्र संख्या को न केवल हिन्दीज्ञाता वरन हिन्दीप्रचारक बना रहा है। इसमें हर एक विद्यार्थी को हिन्दी आवश्यक और मुफ़ पढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त लाहौर, जालन्धर, अमृत्तसर, लुधियाना, अम्बाला, होशियारपुर, श्याम चौरसी, नूरमहल, फीरोज़पुर, मुक्तसर मुलतान, रावलपिण्डी, पेशावर, गुजराँवाला, इमनाबाद, क्वेटा, डेराइस्माइलखाँ, आदि आदि स्थानों के ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूलों तथा कन्या हाईस्कूलों में हिन्दी अनिवार्य्य रूप से पढ़ाई जाती है। इनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या १५००० के ऊपर है। इसी प्रकार आर्यसमाज के विद्वानों ने आर्यग्रंथों के हिन्दी-अनुवाद द्वारा भी हिन्दी का प्रचार बढ़ाया है। जैसा कि द० ऐं० वै० कालिज के संस्कृत प्रोफ़ैसर पं० आर्य्यमुनिजी ने छः शास्त्रों और ईशादि बृहदारण्यक पर्यन्त दशोपनिषदों तथा भगवद्गीता का हिन्दी में उत्तम भाष्य किया है। और पं० राजारामजी प्रोफ़ेसर द० ऐं० वै० कालिज ने भी आर्य्यग्रंथावली में अनेकों सद्ग्रन्थ भाषा में अनुवाद किए हैं और इसी प्रकार पञ्जाब आर्यप्रतिनिधिसभा के उपदेशक पण्डित शिवशङ्कर काव्यतीर्थजी ने "वेदतत्व-प्रकाश" के सिलसिले में पाँच छः उत्तम ग्रन्थ रचे हैं और लाला देवराजजी मैनेजर कन्या महाविद्यालय जालन्धर ने अनेकों ग्रन्थों का संकलन तथा अनुवाद किया है जिससे पञ्जाब की कन्याशालाओं की पाठ्यविधि को भारी लाभ हुआ है। इन्हीं सज्जनों की भाँति सम्पादक "आर्य्यप्रभा" भी पाँच सात वर्ष से ग्रन्थ लिखने और अनुवाद करने में संलग्न हैं, जिनमें एक युद्ध रामनारायण दूसरा दर्शनप्रायण और हिन्दू-नर नारी विशेष प्रसिद्ध हैं।

१०—दफ़्तरों में हिन्दी।

यद्यपि पञ्जाबी महाशय अभी तक संयुक्त प्रान्त की भाँति सरकारी दफ़्तरों में हिन्दी नहीं करा

सके पर इन्होंने अपने बहुत से दफ़्तरों में हिन्दी करदी है जिनमें श्रीमती आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि-सभा पञ्जाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, नागरी-प्रचारिणी कम्पनी लिमिटेड तथा आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब के दफ़्तर विशेष वर्णनीय हैं।

११—पञ्जाब के हिन्दीपत्र।

पञ्जाब में इस समय १ आर्यग्रन्थावली, २ भारत-भगिनी, ३ पाञ्चालपण्डिता, ४ आनन्द, ५ लक्ष्मीभंडार, ६ तत्त्वदर्शी, ७ जीवनपथ, ८ आर्यप्रभा, निकलते हैं इनमें पहिले ७ मासिक और अन्तिम साप्ताहिक पत्र हैं। इनके निकालने-चलाने में अधिकांश पुरुषार्थ आर्यसामाजिक पुरुषों का ही है।

१२—अन्य समाजों पर प्रभाव।

हिन्दी-हितैषी आर्यों का पुरुषार्थ सिर्फ़ आर्यसमाज में ही नहीं किन्तु अन्य समाजों पर भी पड़ा चुनांचि अमृतसर के बैजनाथ हाईस्कूल, फ़ीरोज़पुर के सिख कन्या-महाविद्यालय और देव-समाज का हाईस्कूलों में हिन्दी का पढ़ाया जाना इस प्रभाव का एक नमूना है।

१३—नागरीप्रचारिणी कम्पनी लि० का काम।

पंजाब के कतिपय हिन्दी-सेवकों ने यह समझ कर कि पंजाब में हिन्दी न फैलने का एक कारण यह भी है कि यहां कोई ऐसी कम्पनी नहीं जो सर्व-साधारण को उनकी रुचि के अनुसार हिन्दी में हर एक विषय की पुस्तक दे सके और पंजाब में अभी हर एक प्रकार का हिन्दी-साहित्य मिलता नहीं इसलिये उचित है कि बाहर से भी उत्तम पुस्तकें मँगाकर देने का प्रबन्ध किया जाय, इस ख्याल से उपर्युक्त नाम से रजिस्टर्ड कम्पनी दो वर्ष से कायम की गई है और अब इसके सुयोग्य प्रबन्धकों ने न केवल बम्बई, कलकत्ता, काशी, प्रयाग से ही हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रंथ मँगाकर दिए हैं किन्तु कम्पनी ने अपनी पुस्तकें प्रकाशित करनी भी आरम्भ कर दी हैं। उनमें से सम्पादक 'आर्यप्रभा' द्वारा सम्पादित "शुद्ध रामायण" एक है।

१४—हिन्दी का अपमान।

इतना होने पर भी पञ्जाबियों में हिन्द[illegible] ऐसा ही मान है जैसा कि बंगाली, मरहठा, [illegible] पञ्जाबी आदि स्वदेशी नाम विदेशी काम ([illegible] रखनेवाले पत्रों में स्वदेशी भाषा व भावों का [illegible] है। अर्थात् पञ्जाब में बहुसंख्य हिंदी के [illegible] पढ़नेवाले आर्यगज़ट, प्रकाश, सनातनधर्मग[illegible] सत्यउपदेश, अर्जुन सेवक, ब्राह्मणगज़ट, आ[illegible] साधु पत्र ही म्लेच्छ वेश में नहीं है किन्तु हि[illegible] की आत्मा सन्ध्या, गायत्री आदि भी म्लेच्छ रू[illegible] हैं और बहुत से स्थानों में तो हिन्दुओं के देवाल[illegible] पर उनके देव (इष्ट) का नाम तक भी यवन-भ[illegible] में होता है। हालाँ कि वहां कभी किसी यवन प्रवेश तक नहीं होता।

१५—जनसंख्या की रिपोर्ट से इसकी पुष्टि

इतने प्रयत्न पर भी पञ्जाब में हिन्दी [illegible] अपमान ही है इसकी पुष्टि जनसंख्या से [illegible] होती है जिससे जाना जाता है कि पञ्जाब में प्रति दिन हिन्दी-भाषियों वा लेखकों की संख्या घट रही है। देखो नीचे की अङ्कमाला।

१६—पञ्जाब में हिन्दी-भाषा।

१८८१ में हिन्दी-भाषी ४२११४९९ थे और १८९१ में ४१५७९६८ होगई और १९०१ में इससे भी कम होगई।

१७—हिन्दी-पुस्तक।

इसी प्रकार हिन्दी-पुस्तकों की घटती हो रही है। सन् १८७१ से १८८० तक जहां उर्दू में २५२९ पुस्तक और गुरुमुखी में ७८४ पुस्तकें लिखी गईं वहां हिन्दी में सिर्फ़ ७५१ पुस्तकें लिखी गईं। इसी प्रकार सन् १८८० से १८९० तक प्रादेशिक उर्दू पुस्तकों में जहां ४१ फ़ी सदी से ४८ फ़ी सदी तक

और गुरुमुखी में १४ फ़ी सदी से २० फ़ी सदी बढ़ी हुई वहाँ हिन्दी में १३ फ़ी सदी से ९ फ़ी सदी तक पहुँच कर क्षति हुई।

१८—इस कमी का कारण।

स्पष्ट है कि महाराष्ट्र, बंगाल, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, आदि की तरह यहाँ एक (प्राकृत) भाषा से ही युद्ध नहीं करना पड़ता किन्तु यहाँ राज-भाषा को छोड़ कर भी दो भाषा उर्दू और गुरुमुखी से युद्ध करना पड़ता है। और युद्ध में भी पञ्जाबी-हिन्दी-हितैषी उर्दू-सिपाहियों से किसी प्रकार का अधिक बल नहीं रखते। और हिन्दी-विरोधी-सिपाहियों की संख्या भी अधिक है। जिनको इसका परिचय न हो उन्हें नीचे के अङ्कों से स्पष्ट हो जायगा।

१९—पञ्जाब की जन-संख्या और हिन्दी।

सन् १९०१ की जन-संख्या में पञ्जाब की संख्या २६६८०२१७ है जिनमें १४५११८२० पुरुष और १२३६८३९७ स्त्रियाँ हैं। इनमें पठित केवल ९९६६३ हैं, जिनमें ९३४३३१ नर और ४२४३२ नारी हैं। इनमें उर्दू जाननेवाले ३६७८७१, गुरुमुखी जाननेवाले १६८११८ और हिन्दी जाननेवाले १४९५५४ हैं। इस संख्या में स्त्रियों की गणना इस प्रकार है।

२०—स्त्रियों में हिन्दी।

उर्दू जाननेवाली स्त्रियाँ जहाँ ८८८४ और गुरुमुखी जाननेवाली १४६३० हैं वहाँ हिन्दी जानने-वाली सिर्फ़ ५७०१ हैं। स्मरण रहे उर्दू के पक्ष-पाती मुसलमान और गुरुमुखी के स्वामी सिक्ख अभी स्त्रीशिक्षा के हक़ में नहीं हैं और जब कभी, काल की हवा ने इन्हें स्त्री-शिक्षा के अनुकूल बना दिया तब न जाने हिन्दी का क्षेत्र कितना संकुचित हो जायगा, यदि कोई विशेष उपाय न किया गया।

२१—गुरुमुखीप्रचार का कारण।

स्त्रियों में हिन्दी से त्रिगुण गुरुमुखी फैलने का कारण जहाँ एक सरकार की रुचि तथा गुरुमुखी भक्तों का अनवरत प्रयत्न है वहाँ हिन्दुओं का हिन्दी को न अपनाना भी है क्योंकि पञ्जाब में अब तक भी करोड़ों पुरुष हिन्दी को "ब्राह्मणी" भाषा समझते हैं न कि हिन्दुओं की सांझी राष्ट्रभाषा।

२२—दूसरा कारण।

यह भी है कि और प्रान्तों में हिन्दी सबसे सुगम तथा सुलभ भाषा मानी जाती है पर यहाँ वह स्थान गुरुमुखी ने लिया हुआ है इसलिये जन-साधारण की रुचि सब से प्रथम गुरुमुखी की ओर जाती है, कई ज़िलों में तो सरकार ने भी बिना प्रजा की रुचि के कन्याओं तथा बालकों के लिये गुरु-मुखी स्कूल क़ायम कर दिये हैं और उन स्थानों में हिन्दी-भक्तों की धारणा बन्द है।

२३—इसका उपाय।

अब इसके बिना और कुछ नहीं कि (१) हिन्दू हिन्दी को अपनायें, (२) हिन्दी-सेवक हिन्दी की सुन्दर वर्णमालाएँ छपवा कर उसे सुगम वा सुलभ तथा सर्वलभ्य करें, (३) सरकार से हिन्दू इलाकों में हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा के लिये प्रार्थना की जाय, (४) पंजाब की हिन्दी-सभाएँ नियमबद्ध हों तथा वे अपना एक सर्वोपयोगी पत्र (साप्ताहिक वा मासिक) निकालें और उसको सरकार से प्रार्थना कर हर एक कन्याशाला वा बालक-शाला में प्रचलित करायें, (५) हिन्दी सभाओं की एक प्रान्तिक सभा हो वह अपने उपदेशक नियत करे और वे उपदेशक स्थान स्थान पर हिन्दी के महत्त्व तथा सर्वहितकारी विषयों पर हिन्दी में उपदेश दें और इस क्रम का काम लगातार जारी रक्खें।

२४—सम्मेलन से प्रार्थना।

पञ्जाब में हिन्दी फैलाने के लिये मैं अन्त में सम्मेलन से भी प्रार्थना करना चाहता हूँ और

यह यह कि सम्मेलन आगामी अधिवेशन जहाँ पर पञ्जाब में हिन्दुसभा का अधिवेशन न हो उन्हीं दिनों यहाँ अपना अधिवेशन करें, और उसके प्रबन्ध के लिये आर्यप्रतिनिधिसभा, नागरी-प्रचारिणी कम्पनी, ब्राह्मण सभा, आर्यन ऐजुकेशनल कान्फ़्रेंस हिन्दी सभाओं को प्रेरणा करे।

२५—ईश्वर की दया और कार्यसिद्धि।

अन्त में आशा रखता हूँ कि इस प्रकार के उपाय तथा पुरुषार्थ करने से ईश्वर परमात्मा की दया से "मनुष्य प्रयत्न ईश सहाय" के नियमानुसार हिन्दी-हितैषियों का कार्य सब प्रकार सिद्ध हो जायगा।

२६—क्षमा-अभ्यर्थना।

समाप्ति में मैं इस साहस के लिये इतने बड़े विद्वन्मंडल के सामने जो मैं ने बे का किया है और पञ्जाबी साहित्यसेवियों में यदि किसी के कार्य का अज्ञानवश मुझसे उ न हुआ हो, तो उन से भी सच्चे हृदय से क्षमा अभ्यर्थना करता हूँ। आशा है आप तथा वे स मुझे क्षन्तव्य समझ क्षमा करेंगे।

—:०:—

बुँदेलखंड में हिन्दी ।

[बाबू गोविन्ददास लिखित ।]

लेख लिखने का हेतु ।

लगभग दो वर्ष के हुए बंगभाषा के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी' में मैंने बंगीय साहित्य सम्मिलन का विवरण पढ़ा था यह पहिला ही अवसर था कि जब 'साहित्य-सम्मिलन' यह प्यारा शब्द मेरे कर्णगोचर हुआ था । ज्योंही कि साहित्य-सम्मिलन शीर्षक लेख पर मेरी दृष्टि पड़ी थी मेरे हृदय में विद्युत् वेग से यह उत्कट इच्छा हुई कि बहुत ही अच्छा हो यदि हिन्दी भाषा की उन्नति हेतु भी साहित्य-सम्मिलन प्रति वर्ष हुआ करे । पर मेरे हृदय की चिर सङ्गिनी निराशा ने भीतर से यह उत्तर दिया कि नहीं हिन्दी का ऐसा साहित्य-सम्मिलन हो ही नहीं सकता । हिन्दी के पूतों में ऐसी उदारता कहां, ऐसी मातृभक्ति कहाँ कि वे निज माता के दुःख-निवारणार्थ अपने व्यक्ति-संबन्धीय झगड़ों को भूल जांय, उसके लिये कुछ शारीरिक श्रम उठायें, मातृ-पूजा के लिये भोग-विलासों को क्षण काल के लिये तिलांजलि दें । हिन्दी-भाषा की सहोदरा भगिनी बंगभाषा उन्नति करते करते भले ही सर्वाङ्ग-पूर्ण-भाषा बन जाय, मराठी भले ही उन्नति-गिरि की शिखर पर पहुँचे, उर्दू के पृष्ठ-पोषक भले ही उसकी उन्नति हेतु आकाश पाताल को एक कर दें पर क्या मजाल कि हिन्दीवाले इस विषय में चूं भी करें, वे ज़रा भी करवट बदलें । प्रिय, ... थी तो ऐसी ही और ... की उन्नति ... दिए हुए ... का ... कराई ...

नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्राण बाबू श्यामसुन्दरदास ने साहित्य-सम्मेलन के हेतु समाचार-पत्रों में विज्ञापन निकाला, बस फिर क्या था, प्रत्येक समाचार-पत्र में सम्मेलन के विषय में लेख पर लेख निकलने लगे । यद्यपि पूर्व दिशा से केवल समय नियुक्ति के विषय में इसका कुछ विरोध किया गया पर लोगों के हृदय में जो जोश भरा हुआ था वह प्रशान्त महासागर की नाईं उमड़ पड़ा और प्रातःस्मरणीय देश-गौरव, माननीय श्रीयुक्त पंडित मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में पुण्य-पुरी, साहित्य-केन्द्र काशी में हिन्दी का प्रथम साहित्य-सम्मेलन हो रहा है । उसमें उपस्थित करने के लिये मैंने यह लेख लिखा है । इसका नाम है 'बुंदेलखंड में हिन्दी' है । बुँदेलखंडी होकर मेरा यह कर्तव्य ही था कि इधर उधर की चर्चा न छेड़कर अपने घर ही की चर्चा सब लोगों को सुनाऊँ । अस्तु ।

सब से पहिले मैं यही दिखाना चाहता हूँ कि बुँदेलखंड के जल-वायु में क्या ऐसा कोई गुण है कि जिससे लोगों की रुचि साहित्य की ओर आकृष्ट हो, उनको कविता देवी के मंदिर में जाने की इच्छा हो, यहाँ के जल वायु के प्रभाव से मनोविनोद व चित्त-शांति की कुछ सामग्री साहित्य-विटप वा कविता-कुंज की सघन छाया में ढूंढें ।

उत्तर में कहना पड़ता है कि हां है, अब चाहे आप इसे जन्मभूमि का पक्षपात ही समझिए, चाहे ... कथा ही समझिए, मुझे तो बरबस यही कह ... है कि बुँदेलखंड एक अति ही विचित्र पवित्र- ... सरलतापुंज व मनोरम दृश्यों से परि- ... । प्रकृति देवी खूब ही आज़ादी के साथ ... झेंप के अपने पूरे पूरे खेल इस प्रान्त ... पहाड़ों में खेलती है । कलकल नादिनी ... छोटे गिरि-गोद में देखो, तीव्र वेग से ... गिरते हुए व उस पर चादर सा

यह यह कि सम्मेलन आगामी अधिवेशन जहाँ पर पञ्जाब में हिन्दूसभा का अधिवेशन न हो उन्हीं दिनों वहाँ अपना अधिवेशन करें, और उसके प्रबन्ध के लिये आर्यप्रतिनिधिसभा, नागरी-प्रचारिणी कम्पनी, ब्राह्मणसभा, आर्यन एजुकेशनल कान्फ्रेंस हिन्दी सभाओं को प्रेरणा करे।

२५—ईश्वर की दया और कार्यसिद्धि।

अन्त में आशा रखता हूँ कि इस प्रकार के उपाय तथा पुरुषार्थ करने से ईश्वर परमात्मा की दया से "मनुष्य प्रयत्न ईश सहाय" के नियमानुसार हिन्दी-हितैषियों का कार्य सब प्रकार सिद्ध हो जायगा।

२६—क्षमा-अभ्यर्थना।

समाप्ति में मैं इस साहस के लिये जो इतने बड़े विद्वन्मंडल के सामने जो मैं ने बोलने का किया है और पञ्जाबी साहित्यसेवियों से जो यदि किसी के कार्य का अज्ञानवश मुझसे उल्लेख न हुआ हो, तो उन से भी सच्चे हृदय से क्षमा की अभ्यर्थना करता हूँ। आशा है आप तथा वे सज्जन मुझे अल्पज्ञ समझ क्षमा करेंगे।

———:०:———

हैं। नाम भी कुछ कुछ हिन्दुओं के से होते हैं। बोली बानी का लहजा वही, कपड़ों की काट छाँट वही, गाने के गीत वही, रहने की रीति वही, सारांश यह कि यहाँ की प्रकृति में, यहाँ के अन्न जल में ऐसे बहुत से गुण प्रस्तुत हैं कि जो हिन्दी की उन्नति या हिन्दी-प्रचार में अधिक सहायक हो सकते हैं।

बुंदेलखंड की आदि-भाषा हिन्दी ही है।

जहाँ तक पता लग सकता है उसके आधार पर कहा जा सकता है बुंदेलखंड की आदि भाषा हिन्दी ही है, हाँ इतना है कि बुंदेलखंड की हिन्दी को हम ग्रामीण हिन्दी या घरू हिंदी कहें तो अच्छा है—क्योंकि स्त्रियों में व बालबच्चों में बोलने के कारण इसका असली रूप न रह कर रूपान्तर सा हो गया है। किसी ग्राम, पहाड़, तालाब, मनुष्य, वगैरः का नाम ले लीजिए उसके टुकड़े करने से या उसका व्याख्यान करने से यह अवश्य विदित होगा कि इसको यह नाम हिन्दी-भाषा-भाषी ने दिया है, टीकमगढ़, अजयगढ़, राजगढ़, राजनगर, हृदयनगर, रायनगर, छतरपुर, रामपुर वगैरः नामों में 'गढ़' 'नगर' 'पुर' शब्द स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि ये उस प्रांत के ग्राम हैं जिनमें हिन्दी बोली जाती है। इसी तरह से 'मनियागिरि' विंध्याचल' ये 'गिरि' या 'अचल' चिल्ला कर कह रहे हैं कि हम हिन्दी के नाम हैं। तालाबों के नाम में 'सागर' भाग तौर से रहा ही करता है। पुरुष या स्त्रियों के नाम में तो हिन्दीपन रहता है ही। 'बुंदेलखंड' शब्द में स्वयं 'खंड' शुद्ध हिंदी शब्द है। यदि बहुत से बुंदेलखंडी शब्दों की व्युत्पत्ति का पता लगाते लगाते हम चलते हैं तो अंत में उनके शुद्ध स्वरूप तक पहुँच जाते हैं। जैसे 'निनो' यह एक ठेठ बुंदेलखंडी शब्द है। इसके विषय में जब हम ढूंढ़ खोज करते हैं तो मालूम करते हैं कि यह 'निर्णय' शब्द का अपभ्रंश है और अपढ़ या अबलासमाज में पड़ कर इस शब्द की यह दुर्गति हुई है। इसी तरह से 'डाड़' 'दंड' शब्द का, 'सविधि रसोई' को कहेंगे 'सबीदी रसोई' इत्यादि इत्यादि. पांड़े के यहाँ भी जो आदि में शिक्षा दी जाती है उससे भी पता लगता है कि हिन्दी ही पढ़ाई जाती थी, 'खरी' 'पाटी' चलायके जो कि सम्भवतः 'अक्षरी' 'पाठ' या 'वाक्य' के अपभ्रंश हैं सब हिन्दीपन का पता देते हैं।

हाँ एक बात इसके विरुद्ध कही जा सकती है। वह यह है कि बुंदेलखंड में कलदार (अँगरेज़ी सिक्के) रुपए के प्रचलित होने के पूर्व के ऐसे बहुत से सिक्के हैं कि जो चलते तो देशी राज्य में थे पर अक्षर उनमें उर्दू के अङ्कित हैं, यह बात तो ठीक है पर इसका कारण ढूँढ़ने में हमको कुछ बहुत देर नहीं लगती। इस प्रकार के जितने सिक्के हैं जैसे राजाशाही, गजाशाही, श्रीनगरी, दतियाशाही, बालाशाही इत्यादिक, ये सब उस समय के हैं जब कि भारत में यवन साम्राज्य था। चूंकि बुंदेलखंड भी किसी न किसी रूप में इन्हीं के अधीन था अतः चाहे चाटुतावश समझिए, चाहे दबाववश, इन सिक्कों पर उर्दू के अक्षर अङ्कित होते थे—और उसी समय से उर्दू ने दफ़्तर या कचहरियों में स्थान पाया था—पर हर्ष का विषय है कि गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है और वह दिन दूर न होगा जब कि हम नवीन सिक्कों पर हिन्दी के अक्षर अङ्कित देखेंगे। कचहरियों व दफ़्तरों में भी हिन्दी धीरे धीरे स्थान पा रही है।

प्राचीन काल में बुंदेलखंड में गद्य हिंदी।

पुराने समय की जितनी किताबें मिली हैं वे सब पद्य ही में मिली हैं यहाँ तक कि जोतिष, वैद्यक, हिसाब-किताब तक की किताबें पद्य ही में मिली हैं, प्राचीन काल के लोगों की यह रीति ही थी कि जितनी किताबें लिखते थे वे सब पद्य ही में लिखते थे। इसका कारण यह था कि पद्य की लिखी हुई किताबें आसानी से कंठस्थ हो जाती थीं और दूसरे यह कि ग्रंथकर्त्ता को पद्य में लिखने के कारण अपने पांडित्य के परिचय देने का विशेष अवसर मिलता था। यद्यपि संवत् ७-

तानते हुए जलप्रपातों को देखो, नाना पशु-पक्षी परिपूर्ण विन्ध्याचल की शृङ्खला की शृङ्खला देखो, धसान व बेतवंती के भयङ्कर पर तिस पर भी मनोहर किनारों को देखो, आम जामुन के सुखद शीतल कुंज देखो, वट विटप की सघन छाया देखो। चित्त कैसा हो चिन्तित हो, हृदय कैसा हो व्याकुल हो उपर्युक्त स्थानों में कहीं भी जाकर सन्नाटे में बैठ जाइए, थोड़े ही काल में चित्त को अजब ठंडक मिलेगी, दिल को अजब राहत होगी, सारी चिन्तायें नष्ट हो जायँगी। प्रकृति का सौन्दर्य्य देखकर परमात्मा प्रेम का एक स्रोत झलझल हृदय-भूमि में बहने लगेगा, विमल विचारों की तरंगमाला से सारा हृत्क्षेत्र हिलोलित हो उठेगा। अधिक क्या कहूं यह भूमि एक तपोभूमि है। गुरु गोरखनाथ, शृङ्गी ऋषि, तथा अगस्त्य ऋषि आदि ने तप करने के लिये इसी भूमि को उचित समझा। जन्म-भूमि अवधपुरी से निर्वासित, राज्य-पाट से वंचित" जगत्पिता श्रीरामचंद्र को स्वयं यदि चित्तविनोद व चिन्तानाशन की कुछ सामग्री मिली तो बुँदेलखंडान्तर्गत चित्रकूट* ही में मिली।

कवित्व-शक्त्योत्पादिनी दृष्टि से देखिए तो प्रायः जितने सुप्रसिद्ध वा प्रतिभाशाली कवि हिन्दी जगत् में हुए हैं वे सब बुँदेलखंड ही में हुए हैं। क्या आप नहीं जानते कि हिन्दी के काव्याचार्य केशवदास ओड़छे के थे? क्या आपको अविदित है कि भिखारीदास व पद्माकर का शरीर बुँदेलखंडी मिट्टी ही का बना था? क्या इसके कहने की आवश्यकता है कि पन्ना ने पजनेश व बिजावर ने ठाकुर को पैदा किया था? आज तक भी हिन्दी कविता का गगनमंडल बुंदेलखंड के जाज्वल्यमान तारों से झिलर मिलर हो रहा है। फिर कहना पड़ता है कि यहाँ के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों में, यहाँ के अन्नजल में, यहाँ के रूप-रंग में, यहाँ के पहनाव उढ़ाव में, यहाँ के रहन-सहन में इतना पवित्र, सरल या कवितोत्पादक गुण है कि पुरुषों की तो बात ही क्या स्त्रियों तक ने कविता की है और इस गए गुज़रे ज़माने में भी करती हैं। रसिक-प्रिया की प्रवीनराय पातुर साहित्य-जगत् में सुप्रख्यात ही है। चरखारी व टीकमगढ़ की कई रानियों के नाम से (खेद कि मुझे इस समय इन श्रीमतियों के नाम याद नहीं आते) ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। बुँदेलाबाला* की मधुर कविता का स्वाद विविध मासिक पत्रिकाओं में मिला ही करता है।

यहाँ के राजे, महाराजे स्वयं कवि वा कवियों के कदरदां व आश्रयदाता रहते आये हैं—ओड़छा के महाराजा इन्द्रजीत, पन्ना के छत्रसाल, चरखारी के महाराज विजयबहादुरसिंह ये सब सुप्रसिद्ध कवि हैं। यहाँ के अन्न जल में एक अद्भुत गुण यह है कि ये विजातियों में भी हिन्दूपन के आचार-विचार आरोपित करके उनको हिन्दू सा बना लेते हैं यहाँ तक कि बुंदेलखंड की यवन-समाज एक भाँति हिन्दू ही है वे बहुत से हिन्दुओं के त्योहारों को मानते हैं हिन्दुओं की तरह पाक साफ़ रहते हैं, शीतला निकलते समय वे देवी की पूजा करवाते हैं। विवाह में यत्र तत्र हिन्दुओं कीसी गालियाँ गाते

---

* महात्मा तुलसीदासजी चित्रकूट-महिमा वर्णन करते हुए कहते हैं

"सब शोच विमोचन चित्रकूट।
कलि हरण सकल कल्याण कूट॥
शुचि अवनि सुहावनि आलवाल।
कानन विचित्र भारी विशाल॥
शाखा सुशृङ्ग भूरुह सुपात।
निरझर मधुवर मृदु मलय वात॥
शुक पिक मधुकर मुनिवर विहार।
साधन प्रसून फल चारु चारु॥

* खेद है कि यह होनहार लेखिका हाल ही हाल में अपनी ऐहिक लीला-संवरण करके हिन्दी-साहित्य-जगत् में अँधेरा कर गई है और एक ऐसा स्थान खाली कर गई है जिसके पूर्ण होने की चिरकाल तक सम्भावना नहीं।

हैं। नाम भी कुछ कुछ हिन्दुओं के से होते हैं। बोली बानी का लहजा वही, कपड़ों की काट छाँट वही, गाने के गीत वही, रहने की रीति वही, सारांश यह कि यहाँ की प्रकृति में, यहाँ के अन्न जल में ऐसे बहुत से गुण प्रस्तुत हैं कि जो हिन्दी की उन्नति वा हिन्दी-प्रचार में अधिक सहायक हो सकते हैं।

बुंदेलखंड की आदि-भाषा हिंदी ही है।

जहाँ तक पता लग सकता है उसके आधार पर कहा जा सकता है बुंदेलखंड की आदि भाषा हिन्दी ही है, हाँ इतना है कि बुंदेलखंड की हिन्दी को हम ग्रामीण हिन्दी वा घरू हिंदी कहें तो अच्छा है—क्योंकि स्त्रियों में व बालबच्चों में बोलने के कारण इसका असली रूप न रह कर रूपान्तर सा हो गया है। किसी ग्राम, पहाड़, तालाब, मनुष्य, वगैरः का नाम ले लीजिए उसके टुकड़े करने से या उसका व्याख्यान करने से यह अवश्य विदित होगा कि इसको यह नाम हिन्दी-भाषा-भाषी ने दिया है, टीकमगढ़, अजयगढ़, राजगढ़, राजनगर, हृदयनगर, रायनगर, छतरपुर, रामपुर वगैरः नामों में 'गढ़' 'नगर' 'पुर' शब्द स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि ये उस प्रांत के ग्राम हैं जिनमें हिन्दी बोली जाती है। इसी तरह से 'मनियागिरि' विंध्याचल' ये 'गिरि' वा 'अचल' चिल्ला कर कह रहे हैं कि हम हिन्दी के नाम हैं। तालाबों के नाम में 'सागर' प्रायः तौर से रहा ही करता है। पुरुष वा स्त्रियों के नाम में तो हिन्दीपन रहता है ही। 'बुंदेलखंड' शब्द में स्वयं 'खंड' शुद्ध हिंदी शब्द है। यदि बहुत से बुंदेलखंडी शब्दों की व्युत्पत्ति का पता लगाते लगाते हम चलते हैं तो अंत में उनके शुद्ध स्वरूप तक पहुँच जाते हैं। जैसे 'निनो' यह एक ठेठ बुंदेलखंडी शब्द है। इसके विषय में जब हम ढूँढ़ खोज करते हैं तो मालूम करते हैं कि यह 'निर्णय' शब्द का अपभ्रंश है और अपढ़ वा अबलासमाज में पड़ कर इस शब्द की यह दुर्गति हुई है। इसी तरह से 'डांड़' 'दंड' शब्द का, 'सधिध रसोई' को कहेंगे 'सधौदी रसोई' इत्यादि इत्यादि, पांड़े के यहाँ भी जो आदि में शिक्षा दी जाती है उससे भी पता लगता है कि हिन्दी ही पढ़ाई जाती थी, 'खरी' 'पाटी' चनायके जो कि सम्भवतः 'अक्षरी' 'पाठ' वा 'चाणक्य' के अपभ्रंश हैं सब हिन्दीपन का पता देते हैं।

हाँ एक बात इसके विरुद्ध कही जा सकती है। वह यह है कि बुंदेलखंड में कलदार (अँगरेज़ी सिक्के) रुपए के प्रचलित होने के पूर्व के ऐसे बहुत से सिक्के हैं कि जो चलते तो देशी राज्य में थे पर अक्षर उनमें उर्दू के अङ्कित हैं, यह बात तो ठीक है पर इसका कारण ढूँढ़ने में हमको कुछ बहुत देर नहीं लगती। इस प्रकार के जितने सिक्के हैं जैसे राजाशाही, गजाशाही, श्रीनगरी, दतियाशाही, बालाशाही इत्यादिक, वे सब उस समय के हैं जब कि भारत में यवन साम्राज्य था। चूँकि बुंदेलखंड भी किसी न किसी रूप में इन्हीं के अधीन था अतः चाहे चाटुतावश समझिए, चाहे दबावबश, इन सिक्कों पर उर्दू के अक्षर अङ्कित होते थे—और उसी समय से उर्दू ने दफ्तर वा कचहरियों में स्थान पाया था—पर हर्ष का विषय है कि गवर्नमेंट का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है और वह दिन दूर न होगा जब कि हम नवीन सिक्कों पर हिन्दी के अक्षर अङ्कित देखेंगे। कचहरियों व दफ्तरों में भी हिन्दी धीरे धीरे स्थान पा रही है।

प्राचीन काल में बुंदेलखंड में गद्य हिंदी।

पुराने समय की जितनी किताबें मिली हैं वे सब पद्य ही में मिली हैं यहाँ तक कि ज्योतिष, वैद्यक, हिसाब-किताब तक की किताबें पद्य ही में मिली हैं, प्राचीन काल के लोगों की यह रीति ही थी कि जितनी किताबें लिखते थे वे सब पद्य ही में लिखते थे। इसका कारण यह था कि पद्य की लिखी हुई किताबें आसानी से कंठस्थ हो जाती थीं और दूसरे यह कि ग्रंथकर्त्ता को पद्य में लिखने के कारण अपने पांडित्य के परिचय देने का विशेष अवसर मिलता था। यद्यपि संवत् ७८,

इत्यादिक की गद्य हिन्दी का मिलना दुष्कर है तब भी हम अपने पाठकों को पदमाकरी गद्य हिन्दी का कुछ नमूना दिखाते हैं। हितोपदेश का गद्यानुवाद कवि पदमाकरजी ने किया है। आप कहते हैं-

"ताते हमारी तुम्हारी प्रीति की रीति अनुचित है तब काग कही कै भो मित्र हिरन्यक मैं तेरो कह्यो उपदेस सब सुन्यौ तो भी मेरे मन ये ही विचार है कै तो सों प्रीति करौं नाहीं तो तेरे बिल के द्वारे उपास करि करि प्रान छोड़ूं गौ यह मैं निहचै करि सुन्यौ काहे तें कै तोसो चतुर तो सो मतिमान और दूजो कौन को कहाँ पायहो जासों प्रीति करों ताते मित्र रहित जो मैं हों ताको मरि जायबो हो सलाह है तब हिरन्यक बिलतें बाहर निकसि आवत भयो........"।

यह अबसे लगभग सौ वर्ष पहिले की बुंदेलखंड की गद्य हिन्दी है अर्थात् सन् १८२० के लगभग की। दतिया के कुमार मणिक कवि की भी कुछ गद्य उन्हीं के ग्रंथ "रसिक रसाल" में देखी जाती है पर उसकी शैली ऊपर लिखी हुई ठीक पदमाकरजी की शैली से मिलती है, इनकी गद्य सन् १७६० के लगभग की गद्य हिन्दी कही जा सकती है।

आज कल भी पत्र व्यवहार में बुंदेलखंड में दो तरह की हिन्दी प्रचलित है जो हिन्दी की प्राचीन प्रथा पर लिखी जाती है। यह और तरह की है और जो मदरसे के नवशिक्षित अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग लिखते हैं वह और तरह की है। पश्चोक्त प्रकार की हिन्दी तो वही है जिस को कि आधुनिक हिन्दी कहते हैं और जो बहुधा आज कल के अख़बारों या उपन्यास वगैरः में प्रयुक्त होती है अतः इसके नमूने के लिखने की कोई आवश्यकता नहीं, पूर्वोक्त का जब तक कुछ नमूना पेश न किया जायगा तब तक आप लोगों को यहाँ के प्राचीन प्रथा के पत्र-व्यवहार की हिन्दी का पूर्ण अनुमान न होगा। देखिए नीचे एक पत्र दिया जाता है जो प्राचीन प्रथानुसार है—

"सिद्धि श्री शुभस्थाने जोग राम राम लिखी जैतपुर से आपर श्री भैया रामप्रसाद को जगन्नाथ की राम राम पहुँचे, आपर यहाँ के समाचार सदा भले चाहिये तो पीछे आप की कृपा से यहाँ के समाचार भले हैं आपर बहुत दिनन सें आप की खुशी, आनंदी की खबर नहीं पाई सो बड़ी दुसनई है सो देखत चिट्ठी के जरूर लिखवी ज़ादां का लि मिती कातिक बदी ७ सं १९६७ मुः जैतपुर"

दरबार से जो परचा ख़ज़ाने के नाम लिखा जायगा इस तरह लिखा जायगा

खज़ाना सदर

आपर दैयी हरदास मुतसद्दी को जून की तनखाह के मद्दें

२०)

अंकन बीस रुपया कलदार = ताः २५ अक्तूबर १९१०

दः पक़मार

बुंदेलखंड में पद्य हिन्दी।

इसकी बुंदेलखंड में भरमार है। इसी के कारण बुंदेलखंड हिन्दी काव्य-जगत् में सर्वोत्कृष्ट स्थान पा सका है। बुंदेलखंड का सारा महत्त्व वा गौरव इसी के कारण है। इसी के सबब से अन्य प्रान्त वासियों को बुंदेलखंड को 'वन्य" व "वर्बर' कहने का साहस नहीं होता। यही हम बुंदेलखंडियों की अक्षय पूंजी है, यही हमारा अमूल्य धन है, यही हमारी प्राचीन सभ्यता, प्राचीन गौरव, वा प्राचीन पांडित्य का हम को स्मरण कराती है। इसी शीतल समीर के झोंके कभी कभी हमारे मनोदेश को विमल आनंद से परिपूर्ण कर देते हैं। यही हमारे देश का सच्चा व पवित्र इतिहास है, यही हमारी सभ्यता का कच्चा चिट्ठा है, इन्हीं छिद्रों में हमारे पूर्वपुरुषों के अमूल्य व उपदेशपूर्ण बंद हैं, इन्हीं में प्राचीन से बैठे बैठे वे अब भी हमको शिक्षायत दे रहे हैं।

यों तो विक्रमीय संवत् से लगा कर आज तक बुंदेलखंड में असंख्य कवि हुए होंगे। हर सिवाय

में पचास-पचास, साठ साठ कवि हुए होंगे पर चूंकि बहुत प्राचीन समय की बात है इसलिये उनकी कविता का मिलना एक भाँति दुर्लभ ही है। काशी की नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी खोज में ऐसी ऐसी किताबों का परिचय दिया है जो संवत् ६, ७, वा ८ तक में लिखी गई थीं पर चूंकि वे किताबें मुझको नहीं मिलीं अतः मैं उनकी कविताशैली का आप लोगों को परिचय कराने में लाचार हूँ। जो जो संवत् कि नाम लेने योग्य हैं वा जिन में बुंदेलखंड के प्रतिभाशाली कवियों ने एक युगान्तर सा पैदा कर दिया है वे वेही संवत् हैं कि जिन में पदमाकर, तुलसीदास, केशव वा ठाकुर इत्यादिक हुए अर्थात् संवत् १६, १७, वा १८। यदि विक्रमीय संवत् में से ये तीनों संवत् निकाल लिये जायँ तो बुंदेलखंडीय काव्य-साहित्य महत्त्व के विचार से अवशिष्ट संवत् बिलकुल साहित्य-शून्य वा असारगर्भित रह जाँय और बुंदेलखंडीय साहित्य बाग़ बिना गुलाब, चम्पा, चमेली के रह जाय, या यों कहो कि यहाँ के काव्य-साहित्य-गगन में सूर्य, चांद, व दीप्तमान् तारे एक न रहें। केवल क्षण काल के लिये जुगजुगानेवाले अनन्त तारागण रह जाँय या यह कि यहाँ की साहित्य देवी का मुकुट-मणि अनन्त दीप्तिमय रत्नों से रहित हो जाय। इन लोगों की कविता आदर्श कविता है। इन लोगों के ग्रंथ अलमारियों में सबसे ऊंचा स्थान पाने के योग्य हैं।

पर अब कुछ दिनों से और प्रान्तों की देखा-देखी बुंदेलखंड में भी कविता-सरित का प्रवाह बदला है और ब्रजभाषा के स्थान में अब खड़ी बोली की कविता होने लगा है। यह परिवर्तन अच्छा ही हुआ है, इसकी आवश्यकता भी थी। नायिका भेद का मैदान बिलकुल तङ्ग हो गया था और समय भी अब इस प्रकार की कविता नहीं माँगता। और पदमाकर, बिहारी, देव, ठाकुर वग़ैरः के आगे हमारे नायिका भेद को पूछता भी कौन है। इसलिये इस चर्वित चर्वन से कोई लाभ न था, अतः खड़ी बोली की कविता का यहाँ भी अनुकरण किया गया है और इस बोली में बहुत सी कवितायें कर डाली गई हैं—'वीर-क्षत्राणी, वीरबालक, वीरप्रताप, कृष्ण-जन्मोत्सव, बुंदेलखण्ड फोटो, चाकरी वा खेती, आर्तपुकार वग़ैरः कवितायें इस प्रकार के उदाहरण हैं। पर ज्ञात रहे कि खड़ी बोली की कविता बुन्देलखण्ड के उन्हीं कवियों में सीमाबद्ध है जिनको समाचारपत्रों से रुचि है या जिनको समय के चिह्न या साहित्य या कविता की गति की अच्छी पहिचान है। प्राचीन प्रथानुगामी जो कवि हैं वे अब भी नायिका, अलङ्कार के चक्र में उछल-कूद करते जाते हैं और नवीन छन्दों में वा नई चाल की कविता करना मानों अपनी मानहानि समझते हैं। कवियों का एक और समूह है जो यद्यपि पढ़े लिखे तो कम हैं पर हाँ बुंदेलखंडी महावरा व भाषा पर अच्छा आधिपत्य (Command) रखते हैं। यह अधिकतर 'फाग, दादरा, सैर वग़ैरः गाने की चीज़ें बनाते हैं। अधिकांश नवयुवकों के मस्तिष्क के ढालने का ठेका इन्हीं के हाथ में रहता है। नये ख्यालात की कविता का प्रचार तो केवल शिक्षित समाज ही तक सीमाबद्ध रहता है। पर इनकी कविता अपढ़ों में (जिनकी संख्या कि हमारे अभाग्य ही हमारे यहाँ कम नहीं है) गुण्डों में, नवयुवकों में, स्त्रियों में, भोली भाली निर्दोष बालक-बालिकाओं में दावानल की नाईं पैठी जाती है और भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक करनेवाली होती है। इन लोगों की कविता फ़साहत वा महावरे के विचार से बहुत ही उपयोगी को होती है पर खेद है कि इनका आशय नवयुवकों पर बुरा प्रभाव डालनेवाला होता है और यह विषमाग्नि को अधिक प्रज्वलित करनेवाली होती है। मानो इन की कविता सुन्दर वस्त्र या मनोहर आभूषणों से आभूषित एक गणिका नायिका है। यदि इनकी कविता का केवल आशय भर अच्छा होने लगे तो सौ शिक्षित कवियों की नवीन ढङ्ग की कविता से इतना उपकार नहीं हो सकता जितना कि इनकी एक सदाशयात्मक फाग, दादरा या सैर से।

चन्दन तें चितयो नहिं जात
चुभी चित मांहि चितौन तिरौछी।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज
बिछौनन बीच बिछो जनु बीछो।

ठाकुर, (बिजावर)

वरुनीन हो नैन झुकै उझकैं,
मनो खंजन मीन पै जाले परे।
दिन औधि के कैसे गिनौं सजनी,
अँगुरीन के पोरन छाले परे॥
कवि ठाकुर काहु सों का कहिये,
हमैं प्रीति किये के कसाले परे।
जिन्हें चाँखन ओट न कीजत ते,
तिन्हें देखवे के अब लाले परे॥

पजनेश (पन्ना)

अलवेली चली पै धरें भुज को,
अंगरानी जँभाई चितै त्रिवली।
सरक्यो सिर चीर गिरयो कटि छ्वै,
पजनेस प्रभा की जगी अवली॥
परसैं जड़ी बाल की बैनी बँधी,
झलकैं मुकताली कपोल थली।
बिधु के रथ चकित चक्र मनौं,
कल कैंचुली नागिन छांड़ चली॥

केशव (ओड़छा)

सीखे रसरीति सीखे प्रीति के प्रकार सबै,
सीखे केशवराय मन मन को मिलायवो।
सीखे सोहैं खान, नट तान,मुसक्यान, सीखे,
सीखे सैन बैनन में हँसवो हँसायवो॥
सीखे चाह, चाह सों जो चाह उपजायवे की,
जैसे कोऊ चाहैं चाह तैसो चाहि चाहिबो।
जहाँ तहाँ सीखे ऐसी बातें घातें तातें तब,
तहाँ क्यों न सीखे नेक नेह को निबाहबो॥

बोधा (पन्ना)

चाँदनी सेज जरी की जरी,
तकिया अरु गेंडुआ देख रिसातीं।
राती हरी पियरी लगी झालरें,
केसर डारी बिरीं नहिं खातीं॥
बोधा इते सुख पै न रमें उत,
कारो औ साधरे रूप सिहातीं॥
यार के साथ पयार बिछाय कैं,
डीलन में नित खेलन जातीं॥

तुलसी (बाँदा)

बिरह आग उर ऊपर जब अधिकाय।
ये अँखिया दोउ वैरिन देय बुझाय॥
डहकुन है उजयरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागत मोहि बिनु राम॥
अब जीवन की है कपि आशा न कोय।
कनगुरिया की मुंदरी कंकन होय॥

प्रभाकर (दतिया)

मोहन ! तिहारे वर बिरह बिधानल के,
हाल कहबे में कथा नल की सिरातीं सों।
कहत कवीन्द्र प्रभाकर बिचारीं ब्रज बाल,
हीं पै ज्वालन के जहर जगातीं सी॥
ये ई कुंज कौल कल कदम कलिंदी कूल,
जानी कल हंसन की कहर किरातीं सों।
जाती फोर जातीं पौन घातीं प्राणघातीं,
तातीं किरनें कलानिधि की लागें कामकातीं सों॥

बुंदेलखंड में हर विषय की वा हर प्रकार की कविता मौजूद है।

साधारणतः विचार करने से पहिली दृष्टि से यही मालूम होता है कि प्रसिद्ध कवियों की तरह यहाँ के कवि केवल शृङ्गार रस ही में अपना पांडित्य सर्वस्व दिखाते रहे हैं, केवल अलङ्कार या नायिका

भेद ही उनकी कविता का उद्देश्य रह पाया है, उन्होंने ईश्वर की सुन्दरता का मज़ा सिवाय मुग्धा मध्या के और किसी प्राकृत पदार्थ में नहीं देखा, पर नहीं अब हम ध्यान की आंख से देखते हैं तब हमको यह बात नहीं मालूम होती। हम मालूम करते हैं कि यहाँ के कवियों ने न केवल अलङ्कार, नायिका ही पर कविता की है वरन् प्राकृतिक पदार्थ जैसे गिरि, नदी, नगर, चन्द्र, वन, उपवन सभी का सौन्दर्य देखने को इनकी आंख खुली रही है, 'गंगाजी' के सौन्दर्य को देखना चाहो तो पदमाकर कृत 'गङ्गालहरी' पढ़ो, केशव ने 'वेतवा' व 'ओछड़े' नगर का वर्णन किस ख़ूबी के साथ किया है। उर्दू के शायर 'रोज़मर्रा' पर मर रहे हैं। हमारे 'ठाकुर' की कविता पढ़ो जो 'रोज़मर्रा' की एक जीता जागता चित्र है। वीररस का स्वाद चखना चाहो तो चरखारी के खुमान कवि की हनुमान-पचासी वा लक्ष्मण शतक पढ़ो, भक्ति मार्ग को वा विनय को लो तो महात्मा तुलसी दास के ग्रन्थ पढ़ो। दफ़्तर कचहरियों के काम से वाक़फ़ियत करना चाहो तो तेजसिंह का दफ़्तरनामा व फ़तहसिंह की दस्तूर मालिका पढ़ो, वैद्यक और ज्योतिष वग़ैरः के ग्रन्थ कवितावद्ध मौजूद हैं। बोधा, पजनेश व हंसराज की कविता प्रेम के रंग में शराबोर डूबी हुई हैं। सारांश यह कि हर प्रकार की कविता यहाँ मौजूद है। यदि हरएक का उदाहरण दिया जायगा तो लेख बहुत बढ़ जायगा इसलिये यहाँ दो ही एक उदाहरण देना अलम् समझता हूँ।

शरद्‌चन्द्रवर्णन (पदमाकर)

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
वृंदावन वीथिन बहार बंशीवट पै।
कहैं पदमाकर अखण्ड रासमंडल पै,
मंडित उमंड महा कालिंदी के तट पै॥
छिति पर छान पर छाजत छतान पर,
ललित लतान पर लाड़िली की लट पै।
छाई भले आई यह शरद जुन्हाई,
जेहि पाई छवि आजही कन्हाई के मुकुट पै॥

रोज़मर्रा (ठ

हम एक कुराह चलीं तो च
हटकौ इन्हें ये न
यह तो बलि आपनी सूझन
मन पालिये सोई
कह ठाकुर प्रीति करी है गुप
टेरैं कहैं सुनो ऊँचा
हमैं नीकी लगी सो करी हमने
तुम्हैं नीकी लगी ना ल

वीररस (खुमान

हनुमंत की लपेट दै लंगूर की भ
दुष्ट को दपेट चरपेट चाब
बजे नख चटाचट्ट दन्त होत खटाख
गिरैं सैन घटाघट्ट फूटि फूटि
कपि कूद किलकार खलजूह भिलक
परी पट पिलकार कटैं राक्षस
तहँ तेज को कुमार करि कोप बेशुमा
वीर लच्छन कुमार झुकि भारी

प्रेम-पांडित्य (बख्शी हंसराज प

"मेरे और बहुत सी गैयाँ तिनकी ओर न हेरै
"मो कहँ आन नंद बाबा की गाय तिहारी घे
"बैठारूँ कदमन की छैयाँ पुचकारौं अरु पोंछौ
"अपने हाथ पूँछ की चौरा ककई लेकर पोंछौं
"अति चंचल अति लंगर गैया अति ऊजर अति
"फूलमाल से ताहि बहोरौं कबहु न घालौं लाठी
"न्यारो होन देउँ नहिं कबहूँ कबहुँ या न बिसारै
"जब गोरज ऊपर छावै तब लै सुवसन सों झारौं
"पाँय पैजना गरै घंटिया सोने सींग मढ़ाऊँ
"कर हौं भाँति भाँति की सेवा चंदन फूल चढ़ाऊँ
"जब देखौं पंछियन भर पाखौं बगरन बीच सुरैया
"मक्खन हाथ दूध सों पूजी जब मैं देउँ गुरैया॥

इन सब के अतिरिक्त दो एक

'रसिकलाल' दूसरे 'कल्यानदास'। रसिकलाल पहले दरजे के प्रेमी श्रौचल दरजे के श्राशिक़ यहाँ तक कि मरने के बाद भी श्राप को यह हसरत थी।

हमरे यही निरूप, रसिकलाल सुत सों कहो।
जहाँ चिता तहँ कूप, मृगनैनी झूलत रहैं॥

चाहे प्रेमविवश हो, चाहे लोगों के हँसाने को हो, श्राप श्रपने विषय में कहते हैं।

रसिकलाल पत्थर भये दये कोट चुनवाय।
गोला लागे प्रेम के चूरचूर हो जायँ॥
रसिकलाल गदहा भये घूरे को खर खायँ।
लादी लादें प्रम की मधुर मधुर मुसकायँ॥

रसिकलाल प्यारे पिया मर जैयो विष खाय।
यह मिलवो जौ विछुरवो हम पै सहो न जाय॥
रसिकलाल की लखि दसा मिलि प्यारी, भरि ग्रंक।
बिसवासिन कस लेत है बारी वैस कलंक॥

कल्यानदास।

ये तो बड़े ही श्रद्भुत कवि हुए हैं इनकी कविता बेमतलब। तुक इनकी कभी मिली ही नहीं। ऐसा कहा जाता है कि यदि इनकी तुक मिल जाती तो इनकी मोक्ष हो जाती। पर हां कहोर, घसीट कर इनकी कविता को हम हास्यरस के ग्रंदर ला सकते हैं। कविता का नमूना यह है—

(१) "कहत कल्यानदास—प्यासो होय तौ भ्रान ताप

(२) डीम डिमारे खेत में बगुला पैरत जाय

(३) श्रटा पै ठाड़ी पद्मिनी बालें उरमें दाँत श्रपनी खसम की लाड़ली हुइहै तौ काहू के घोड़ा को चारौ चर लैय।

(४) भैंस श्रमूरै चढ़ गई लप लप लपसी खाय।
पूंछ उठा के देखो तौ सुपारी टका कढ़ श्राये

(५) हँच मार महुश्रा कोपेड़ो बरसन लगे कुनैते।

वर्त्तमान समय में बुंदेलखंड में श्राधुनिक हिंदी (Modern Hindi) की श्रवस्था।

जिसको श्राधुनिक हिन्दी या श्रख़बारी हिन्दी कहते हैं यदि यह प्रश्न किया जाय कि बुंदेलखंड में ऐसी हिन्दी की क्या श्रवस्था है तो सारे बुंदेलखंड के क्षेत्र फल को विचार में लाते हुए या उस उन्नत हिन्दी से तारतम्य करते हुए जो मध्य प्रदेश (C. P.) श्रथवा संयुक्त प्रदेश में है हमको कहना पड़ता श्रौर खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऐसी हिन्दी की दशा बुंदेलखंड में संतोषजनक नहीं है। यदि श्राधुनिक हिन्दी के साथ प्राचीन हिन्दी जोड़कर यह प्रश्न किया जाय कि बुंदेलखंड में साधारणतः हिन्दी की श्रवस्था कैसी है तो कहा जा सकता है कि संतोषजनक है पर यदि निरी श्राधुनिक हिन्दी ही के बारे में प्रश्न है तो हम सब बुंदेलखंडियों को लज्जित होते हुए यह कहना ही पड़ता है कि इस तुलसी, केशव, या पद्माकर की जन्मभूमि में हिन्दी की श्रवस्था इतनी संतोषजनक नहीं है जितनी कि होना चाहिए। सच बात तो यह है कि यहाँ हिन्दी के प्रेमी हैं ही नहीं। प्रेमी से मेरा मतलब साधारण प्रेम से नहीं है, यह नहीं कि एक श्राध लेख लिख मारा बस प्रेमी बन गए, यह नहीं कि हिन्दी का एक श्राध श्रख़बार मँगाने लगे बस हिन्दी के प्रेमी बन गए, यहाँ श्राप प्रेमी से प्राकृतिक श्रर्थ लीजिए, जिस तरह एक सत्य उत्कट या श्रनन्य प्रेमी श्रपनी प्रेमिका के लिये श्रपने स्वार्थ को तिलांजलि दे देता है, श्रपना तन गारता है, मन मारता है, धन गारता है, उसके हित के लिये श्रपने प्राणों तक की श्राहुति दे देता है इसी तरह से जब हम हिन्दी के हित के लिये श्रपने सकल स्वार्थ को त्यागें, छल छद्ममय उसकी सेवा न करें, श्रपना जीवन, हिन्दी, जननी हिन्दी, मातृभाषा हिन्दी के लिये समर्पण कर दें तब हम

हिन्दी के प्रेमी कहे जा सकते हैं पर यह तो एक बड़ा ऊँचा या कठिन व्रत है, यहाँ तो कोई सखी के लाल ऐसे तक नहीं हैं जो चंदा देने की तो बात ही क्या थोड़ा सा कष्ट उठा कर पास ही की सभा-समितियों में योग दें।

यहाँ के जो धनी मानी सज्जन हैं उनसे कहना ही क्या है वे तो अपने कान में तेल डाले बैठे हैं, उनके आनंद में, उनके भोग विलास में अंतर न पड़ना चाहिए। उनको क्या परवाह हिन्दी चाहे जीवित रहे या रसातल को चली जाय। उन्हें क्या सोच यदि उनकी मातृभाषा हिन्दी, उनकी वह भाषा जिसमें वे अपना हिसाब-किताब लिखते हैं, उनकी वह भाषा जिसमें उनके पाठ करने की पवित्र किताबें रामायण, हनुमानचालीसा, या भजविलास वगैरः लिखी हुई हैं, हीन दशा में हो—वे रोशनी में, आतिशबाज़ी में, विषयवासना में, नाच-तमाशे में भले ही सहस्रों रुपया खर्च कर दें पर क्या मजाल जो मातृभाषा हिन्दी के लिये एक पैसा भी उनकी थैली से बाहर निकले। लेख लिखते लिखते २१ अक्तूबर १९१० के वेंकटेश्वर में यह शुभ-समाचार पढ़कर कि श्रीमान् बड़ौदा नरेश ने अपने स्कूलों में हिन्दी की शिक्षा बाध्य (compulsory) कर दी या श्रीमान् कोटा नरेश ने अपने दफ़्तरों में हिन्दी प्रचलित कर दी, बड़ा ही आनंद हुआ। हृदय से आप ही आप सहस्रकंठ से यह शुभवाद निकल पड़ा कि परमात्मा ऐसे नरेशों को कोटानुकोट वर्षों तक जीवित रक्खे और और नरेशों को भी ऐसी मति दे कि वे शीघ्र ही इनके उदाहरण का अनुकरण करें। देखें हमारे बुंदेलखंड में कौन श्रीमान् अपनी कचहरियों में हिन्दी का प्रचार कर के हिन्दी साहित्य-जगत् के सबसे पहिले धन्यवादभाजन बनते हैं।

पिछले २५ वर्षों में बुंदेलखंड में ग्रंथ रचना।

मुझे स्वयं ग्रंथ की ग्रंथ रचना से तो पूर्ण परिचय नहीं है। सम्भव है कि कहीं कहीं अच्छे अच्छे हिन्दी ग्रंथ लिखे गए हों और हमने उन का प्रकाश न देखा हो पर इस बात को मैं हृदय का निर्भयता-पूर्वक कह सकता हूँ कि पिछले २५ वर्षों में बुंदेलखंड में यदि कुछ उपयोगी ग्रंथ रचे गए होंगे तो उनकी संख्या अँगुलियों पर ही गाने योग्य होगी। यों तो दस दस पंद्रह पंद्रह पन्ने की सैकड़ों भजनावलियाँ, ज्ञान-मंजरियाँ, रागमालायें लिखी गई होंगी पर जो पुस्तकें यथार्थरूप से साहित्य-संसार में आदर पा सकते हैं, जिनसे हिन्दी-भाषा भंडार की कुछ शोभा बढ़ सकती है, जिनको हिन्दी प्रेमी गर्वपूर्वक अपनी संपत्ति कह सकते हैं, जिनसे सर्वसाधारण का विशेष उपकार हो सकता है ऐसी पुस्तकें मुश्किल से दस बीस ही बनी हों। पाठको! सोचिए तो कि जिस बुंदेलखंड में तुलसीकृत रामायण रची गई, जिस बुंदेलखंड में कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका आदि लिखी गईं, जिस बुंदेलखंड में छंदार्णव, काव्य निर्णय, रससारांश वगैरः रचे गए, हों जिस बुंदेलखंड में जगद्विनोद, या पद्माभरण सरीखे ग्रंथ लिखे गए हों उसी बुंदेलखंड में दस दस, बीस बीस पेज की दानलीला या मान-लीला छपे—धिक है हमारे हिन्दी प्रेम पर! धिक है हमारी साहित्य-सेवा पर! व्यर्थ है यदि केशव को हम अपना देश भाई कहें! मिथ्या है यदि पद्माकर को हम अपनी संपत्ति बतावें। होन है यदि हम कहते फिरें कि तुलसीदास बुंदेलखंड के थे! क्या अब हममें अपने पूर्वज कवियों का रंचक गर्व नहीं रहा, क्या अब हमारी रगों में बुंदेलखंडी साहित्य का बिलकुल रक्त नहीं प्रवाहित होता! क्या अब हमको केवल फागें, दादरे, ठुमरी, लावनी, होली की रचना से संतोष हो गया है। यदि ऐसा है तो हमारा मूर्ख, बर्बर या असभ्य कहलाना ही अच्छा था और यदि नहीं तो क्यों नहीं हम हिन्दी की उन्नति को कटिबद्ध होते। क्यों नहीं उसके लिये अपने स्वार्थ को त्यागते, क्यों नहीं उसको उन्नति के शिखर पर पहुँचा देते। हमको हिन्दी के लिये और अधिक चाहिए, हमको हिन्दी के लिये मानापमान का विचार न करना चाहिए। हमको हिन्दी के लिये दर दर भिक्षा माँगनी चाहिए।

हम इस समय कुं० कन्हैयाजू वा बा० भगवानदीन को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते कि जिन्होंने अनेक उपयोगी ग्रंथ रचकर सर्व साधारण को लाभ पहुंचाया और बुंदेलखंड के मुख से कलंक-कालिमा को छुड़ा कर उसको उज्वल किया।

बुंदेलखंड में साहित्य समाजें।

यदि सच पूछा जाय तो बुंदेलखंड में नाम लेने योग्य साहित्य की कोई सभा समिति नहीं है। मैंने चंद रियासतों में अभी हाल ही में पर्यटन किया है और उसी के आधार पर कह सकता हूँ कि चरखारी में कोई ऐसी सभा नहीं, अजयगढ़ में नहीं, पन्ना में नहीं, दतिया टीकमगढ़ का हाल जहां तक मुझे मालूम हुआ है मैं कह सकता हूँ कि यहाँ भी कोई नियम-बद्ध ऐसी समाज नहीं है। बाँदे में शायद कोई सभा हो तो हो। बिजावर में अलबत्ता मुंशी गोपीनाथ भूत-पूर्व दीवान ने कुछ रूह फूंकी थी और वहाँ कुछ दिनों काव्य की छोटी सी नदी बही पर अब उस इन्द्रोपम महापुरुष के वहां से चले जाने से यह सरिता शुष्क-प्राय हो रही है। हमारे यहां छत्रपुर में एक पबलिक लाइब्रेरी—भारती-भवन या दो साहित्य समाजें, एक काव्यलता, या दूसरी बालसमाज हैं—और यह येन केन प्रकारेण अपने उद्देश्यों का पालन करते हुए अपने नाम को जीवित रक्खे हुए हैं—पर यह सब होते हुए भी हृदय को संतोष नहीं होता और अन्य प्रांतों की उन्नति देख कर चित्त व्याकुल हो उठता है पर करें क्या "कहर दरवेश बर जान दरवेश" अपना जोश क्षण काल में अपने ही भीतर समाप्त हो जाता है कोई अपनी सहाय को नहीं, कोई अपना पृष्ठपोषक नहीं—पर तब भी हिम्मत न हारेंगे, भर-सक परिश्रम करेंगेही—देखें। God helps those that help themselves इस लोकोक्ति में कहां तक सत्यता है, चैन तो अभी होगा जब इस बुंदेल-खंड में एक बार फिर से वैसे ही तुलसी, केशव या पद्माकर देख लेंगे। यदि हम न देखेंगे हमारी अमर आत्मा तो देखेगी।

अपने बुंदेलखंडी कविभाई वा लेखकों से दो दो बातें।

मेरा कहना यहाँ पर उन कवियों से विशेष रूप से है जो अब भी नायिका भेद के पचड़े में पड़े हुए हैं, जिनकी कल्पना का घोड़ा स्वकीया, परकीया हो के संकीर्ण चक्र के अंदर दौड़ लगाया करता है—उन लोगों के लिये यह क्षेत्र बिलकुल तंग है। इसमें अब तिल भर जगह की भी गुंजाइश नहीं। चाहे हम कैसे ही उपाय सोचें पद्माकर या द्विजदेव वगैरः की उपमा से वे नहीं बढ़ सकतीं। हम कैसा हो अच्छा वर्णन करें, किसी पुराने कवि के वर्णन को छाया हमारे न जानते हुए भी आ जायगी अतः इस क्षेत्र में कविता करके हम कभी सुयश पात्र नहीं हो सकते। इसलिये अब हमको कोई दूसरा क्षेत्र ही अपनी प्रतिभा या कवित्व-कौशल दिखलाने के लिये निर्वाचित करना चाहिए। यह दूसरा क्षेत्र खुला ही पड़ा है। यह संसार बहुत ही विस्तार्ण है। ईश्वर की सृष्टि अनन्त है। ईश्वर की ईश्वरता अपार है। यदि हमारा हृदय भावुक है यदि प्रत्येक वस्तु के देखने के लिये हम ध्यान का चक्षु रखते हैं तो हमें कविता करने के लिये बहुत मसाला मौजूद है। हम इस सुनील आकाश पर, शस्य श्यामला पृथ्वी पर, बहती हुई नदी पर, चमकते हुए तारों पर, उदय होते हुए सूर्य पर, अस्त होते हुए चन्द्रमा पर, कोकिल का कूजन पर, कुसुमसौरभ पर, दाक्षिण्य पवन पर, दीर्घकाय गजराज से ले कर छोटी सी चींटी पर संक्षेपतः बालू के एक छोटे से छोटे चमचमाते हुए कण पर भी हम सैकड़ों छन्द में कविता कर सकते हैं।

मनुष्य की अनंत चित्तवेदना या उच्च-आकांक्षाओं में जो एक प्रकार का महत्व या सौंदर्य होता है, एक सच्चे कवि की कल्पना उस में से अपने लिये जीवनोपयोगी रस चुन लेती है, इस शोभा-मयी प्रकृति की अनन्त सुषमा में, मानव-हृदय के चिर-सञ्चित प्रेम-प्रवाह में, एक भावुक कवि मन

में भगवान् के आविर्भाव का अनुभव करने लगता है। नव वसन्त के करस्पर्श से समग्र प्रकृति संजीवित हो उठती है, नवोन्मेषित सौंदर्य की हिलोर से जगत् स्पन्दित हो उठता है, विहंगकूजन, सुमन-सौरभ, वा दक्षिण पवन से चारों ओर एक विचित्र वा अलौकिक आनन्द का आन्दोलन हो उठता है। पर इन सब को देख सुन कर सच्चा कवि यही कहता है कि यह सब कुछ नहीं है! भगवान् ही विश्वविमोहन भेष में जगत् के समक्ष आप उपस्थित हुआ है।

"The lark soars up and up, shivering for very joy; after the ocean sleeps; white fishing gulls flit where the strand is purple with its tribe of nested limpets; savage creatures seek their loves in wood and plain—and God renews His ancient rapture!"

एक सच्चा कवि रेत के प्रत्येक कण में वा पेड़ की प्रत्येक पत्ती में ईश्वर के मधुर रूप का ध्यान करता है। पानी की लहरों में, तारों की चमचमाहट में, पुष्पों की सुकोमल शोभा में, उसको अजब चमत्कार दिखाई देगा। अद्भुत भेद खुलेंगे। चिड़ियों के मधुर कलरव में, बालकों की तोतली बोली में वह भगवद् की बोली सुनेगा। सुन्दर वस्तु में वह ईश्वर की सुन्दरता देखेगा, दीपक की ज्योत में वह परमात्मा की ज्योतिरादि देखेगा, मलय पवन के स्पर्श को वह जगन्नियन्ता का स्पर्श समझेगा। वाटिका की सुगन्ध को वह सच्चिदानन्द के शरीर की सुगन्ध समझेगा। इस संसार में मनुष्य मात्र ही असन्तुष्ट है। राजराजेश्वर से लेकर पथ के भिखारी तक सभी अपनी अपनी अवस्था से असन्तुष्ट हैं—इस सीमाबद्ध संसार के क्षुद्र सुख में उनकी अनन्त पिपासा तृप्त नहीं होती, उसके हृदय को अनन्त सौन्दर्यतृष्णा पार्थिव जगत् के सर्व सौन्दर्य को भोग करके भी अपूर्ण रहती है। इस संसार के सुख और सौन्दर्य का प्रेम उसको एक भोग्य वस्तु से दूसरी भोग्य वस्तु तक, फिर तीसरी तक, फिर चौथी तक सारांश कि इसी तरह लिए लिए फिरती है। किन्तु कभी भी उसको तृप्ति प्रदान नहीं करती, इस तरह वह अपने मन में कहने लगता है। इस संसार में तो सुख बिलकुल ही नहीं, इस तरह से संसार की अपूर्णता उसको पूर्ण स्वरूप भगवान् के नित्यानन्द, अनन्त सौन्दर्य व अतुल प्रेम के माहात्म्य की ओर खींच ले जाती है और एक कवि जो कि 'कोकिल' वा 'कमल' से कविता प्रारम्भ करता है, क्रमशः चढ़ते चढ़ते ईश्वर के ईश्वरत्व पहचानने में तथा उसका सफलतापूर्वक वर्णन करने में सिद्धार्थ होता है।

प्रकृति के सौन्दर्य को ध्यानपूर्वक वा कवि की आँख से देखने से भगवद् के प्रेम का हृदय में विकास होता है। प्रकृति हम को बाँध नहीं लेती। वह अंगुली से मानो बताती है कि भगवद् का प्रेम वा ऐश्वर्य कहाँ है। प्रकृति वर्णन करते समय हमारी कविता का उद्देश्य और हमारे मन की सर्वोपरि आकांक्षा "From Nature up to Nature's God" यह होनी चाहिये। जो हतभाग कवि केवल जगत् ही को प्रिय समझता है, केवल इस सौन्दर्यपूर्ण विस्मयकरी, आनंदमयी विशाल प्रकृति को प्यार करता हुआ प्रकृति की प्रेममय अंतरात्मा को नहीं देख सकता वह अभिशप्त जीव है। उसके विषय में कहा जा सकता है।

"Thou art shut
Out of the heaven of spirit, glut
Thy senses upon the world."

एक सुविख्यात फ़ारसी समालोचक का कहना है "कविता के मूलीभूत उपादान छः हैं (१) ईश्वर (२) प्रकृति (३) प्रतिमा (४) ललितकला (५) प्रेम (६) मानव-जीवन।"

यदि न्यायपूर्वक कहा जाय तो निस्सन्देह पहिले उपादान अर्थात् "ईश्वर पर कविता" को छोड़ कर बाक़ी ५ पर हमारे भाषा कविता-भंडार में बहुत ही कम कविता है और जो है वह भी "नहीं" के बराबर है, "गुप्त" पर, "खंडिता" पर तो आप

को सहस्रों सवैये मिल जायँगे पर मानव-जीवन के गूढ़ रहस्यों पर, प्रेम पर, प्रतिमा इत्यादिक पर आप को कुछ भी नहीं मिलेगा, इसलिये आवश्यकता है कि हम हिन्दी-कविता के भंडार को ऐसी कविताओं से भरें; हमारा कर्त्तव्य है कि हम कविता के इस शून्य अंग को बहुत जल्द परिपूर्ण या सुसज्जित करें। हाथ की कोई शोभा न रहै, यदि वह सारा आभूषणों ही से लाद या ढाँक दिया जाय। इसी तरह हिन्दी-काव्य-शरीर की कोई शोभा न रहैगी यदि उसका एक अंग शृङ्गार रस तो कवित्त सवैयों के बोझ से दबकर झुका सा या टूटा सा पड़े और उसके सारे अंग क़रीब क़रीब नंगे या बिछुड़े ही बने रहैं। इस में काव्य-साहित्य का उपहास नहीं है। वरन हम सब लोगों का जो उसके भक्त बनने का दावा करते हैं उसके परिपक्व में बनने का अभिमान रखते हैं। अंगरेज़ी कविता को देखो वहाँ आप को गुप्ता या विदग्धायें न मिलेंगी, वहाँ आपको दादुरों या दूतियों की दौड़ धूप न मिलेगी। वहाँ मिलेगी आप को "गदूल के फूल की सहज शोभा" पर कविता, वहाँ मिलेगी आपको 'सरिता के प्रवाह' या 'पर्वतों के मौनव्रत' पर कविता, वहाँ मिलेगी आपको 'जन्म-भूमि के अनुराग' 'जीवन के रहस्य या संतोष के सुख पर कविता। अतः इस समय हमें पद्माकर या मतिराम को भूलकर 'वर्ड्सवर्थ' 'ब्राउनिंग' 'काउपर' या टेनिसन ही को अपना आदर्श बनाना चाहिए और नए नए फूलों से, नए नए पौधों से और नए नए गुलदस्तों से अपने काव्य-साहित्य कानन को भरना चाहिए। नायिका भेद के गुलदस्ते अब बासी पड़ गये हैं, उनमें सुगन्ध नहीं रही, उनमें शोभा नहीं रही। वे हमारे हृदय को आकर्षित नहीं करते। वे हमारे पवित्र भावनाओं को जागृत नहीं करते। अतः अब हमें चाहिए कि अच्छे अच्छे फूलों को अच्छे अच्छे पौधों को और और देशों से लाकर सुन्दरता से या चाव से उनके अच्छे अच्छे गुलदस्ते बना कर शिक्षित समाज की भेंट करें। क्या आप नहीं जानते कि आजकल नए नए फ़ैशन ईजाद होते हैं। बिना मोतिया आदि का इत्र कम पूछा जाता है। क़दर है लैवेंडर की। क़दर है संत्रे के तेल की। ऐसा ही हाल है साहित्य-संसार का। बस हमको चाहिए कि समय के साथ साथ ही क़दम रक्खें। इसमें गिरने या फिसलने का डर नहीं रहता। यह हम जानते हैं कि यह रुचि बहुत दिनों तक न रहेगी पर रहे या न रहे इसमें क्या विवाद। क्या हानि होगी यदि हमारे काव्य-साहित्य का एक अंग इस प्रकार की कविता से ही सुसज्जित रहै। पुराने क़िस्म की जो समस्त कविता हैं उनको आप यह समझिये कि वे अच्छे अच्छे स्वादिष्ट व्यंजन हैं, मधुर भोज्य पदार्थ हैं। पर आप जानते हैं कि मिठाई के साथ यदि थोड़ी सी खटाई खाते जायँ तो उसका स्वाद और अधिक मिष्ट हो जाता है और खाने से तबीयत उकताती नहीं। बस इसी तरह इस नए ढंग की कविता को आप उन मधुर व्यंजनों के साथ की सुन्दर चरपराती हुई चटनी ही समझें, या मिठाई के साथ का अच्छा चटकेदार दही ही समझें।

बुंदेलखंड में हिन्दी के प्रचार के कुछ उपाय।

(१) शिक्षा का प्रचार।

(२) हिन्दी भाषा के उत्थानार्थ उपदेशक नियत किए जाँय।

(३) हिन्दीहितैषिणी सभा कम से कम एक एक प्रत्येक राज्य में हो।

(४) हिन्दी के उचित साधनार्थ जो काम किए जाँय उनके व्यय-संचालनार्थ एक फंड खोला जाय।

(५) जहाँ तक हो सकै पत्र-व्यवहार हिन्दी लिपि ही में हो।

(६) बोलचाल में भी हिन्दी के शब्दों का अधिक प्रयोग किया जाय।

(७) यहाँ भी जो बहुत सी हस्तलिखित पुस्तकें अप्रकाशित दशा में पड़ी हुई हैं इनके प्रकाशन का उद्योग किया जाय।

(८) राजा, महाराजाओं के पास एक प्रभावशाली डिपु-टेशन भेज कर इनसे ज़ोर दे कर विनय

किया जाय कि वे अपने दफ़्तर या कचहरियों में हिन्दी का प्रचार करें।

(९) जो लोग हिन्दी की उन्नति का उद्योग करें, सभा द्वारा उनका मान किया जाय।

(१०) साल भर में कम से कम एक प्रान्तीय वार्षिकोत्सव हिन्दी भाषा का हुआ करे और यह प्रतिवर्ष अपना स्थान बदला करे।

(११) हिन्दी के समाचार-पत्र अधिक मँगाए जाँय।

(१२) हिन्दीभाषा का एक समाचारपत्र जिसका नाम 'बुंदेलखंडी,' हो झाँसी या बाँदे से निकाला जाय और इसका विषय अधिकतर बुंदेलखंड ही हो।

बुंदेलखंड के प्रसिद्ध लेखक कवि वा उपन्यासक।

(१) श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त, कवि, चिरगाँव, झाँसी।

(२) श्रीयुत लाला भगवानदीन, लेखक वा कवि, छत्रपुर।

(३) श्रीयुत कुँवर कन्हैयाजू, लेखक वा कवि, छत्रपुर।

(४) श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद, लेखक वा कवि बिजावर।

(५) श्रीयुत कुंवर प्रतिपालसिंह, लेखक वा कवि छत्रपुर।

(६) श्रीयुत बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, लेखक, झाँसी

(७) श्रीयुत बाबू चतुरभुज सहाय वर्मा, उपन्यासक लेखक, छत्रपुर।

सम्भव है कि और बहुत से लेखक वा कवि बुंदेलखंड में हों पर मैंने इन्हीं ही के नाम सुने हैं। आशा है कि अन्य कवि वा लेखक यदि उनका नाम छूट गया हो मुझे क्षमा करेंगे।

——:o:——

देवनागरी लिपि ।

[पंडित केशवदेव शास्त्री लिखित।]

सज्जनो ! मैं पहिले भारतवर्ष की प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिपियों पर विचार करना चाहता हूँ। दक्षिणी भाषाओं और उनकी ग्पियों का देवनागरी अक्षरों से बहुत कम सम्बन्ध इसलिये मैं आज के व्याख्यान में उनका वर्णन हीं करूँगा। भारतवर्ष की शेष पाँचही ऐसी ाषायें मिलती हैं जिनकी लिपियों पर विचार करना, नकी उत्पत्ति पर ध्यान देना और उनकी रचना र ख़याल करना अत्यावश्यक है। आज मैं इस ाख्यान द्वारा बतलाऊँगा कि किस प्रकार से वकास सिद्धान्तानुसार देवनागरी अक्षर वर्त्तमान वस्था में आए। इन अक्षरों के सहारे कैसे कैसे ौर कब कब अन्य लिपियों का प्रचार हुआ और उन लिपियों के अक्षरों से कैसे ज्ञात होता है कि उनका मूलाधार भी यही देवनागर अक्षर थे। जिन पांच भाषाओं का ऊपर मैंने संकेत किया है वे बंगाली, मरहठी, गुजराती, हिन्दी और पंजाबी हैं। उर्दू का सम्बन्ध फ़ारसी तथा अर्बी से है, इसलिये मैं उस लिपि पर भी कुछ विचार न करूँगा। मरहठी और हिन्दी-भाषा की लिपियों में कुछ भी अन्तर नहीं इसलिये लिपियों की गणना में मरहठी लिपि पर भी कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं। इस समय हमारे सम्मुख दो प्रश्न उपस्थित हैं पहिला यह कि देवनागर अक्षर कब से प्रचलित हुए और कैसे कैसे उनमें रूपान्तर होता गया। दूसरे यह कि इन चार प्रकार की लिपियों का कैसे परस्पर सम्बन्ध है। ये दोनों प्रश्न अत्यावश्यक हैं। मैं प्रथम दूसरे प्रश्न पर विचार करूँगा और पहिले पाँच चित्रों में इन चारों लिपियों के व्यञ्जनों पर ध्यान दिलाऊँगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इन सब लिपियों की वर्णमाला समान है। गुरुमुखी में ङ और क्ष नहीं मिलते जिसका कारण उच्चारण की असुविधा जानना चाहिये। यदि हम दीर्घदृष्टि से इन अक्षरों की रचना पर ध्यान देंगे तो हमें स्पष्ट रीति से ज्ञात हो जायगा कि किस भाषा की लिपि में कौन अक्षर किस शताब्दि में लिया गया है।

पहिला चित्र (१)

नागरी	गुरु·	बंगाली·	गुज·
क	ਕ	ক	ક
ख	ਖ	খ	ખ
ग	ਗ	গ	ગ
घ	ਘ	ঘ	ઘ
ङ	ਙ	ঙ	ઙ

लिपियों का क्रम (१) देवनागरी (२) गुरुमुखी (३) बंगाली और (४) गुजराती है। इनमें कवर्ग का विधान है। ककार प्रायः चारों लिपियों के मिलते हैं। हाँ, रूप कुछ अवश्य बदल दिए गये हैं और भिन्न लिपि की प्रसिद्धि के लिये किसी अंश तक यह आवश्यक भी था। खकार में देवनागरी, बँगाला और गुजराती अक्षर मिलते हैं परन्तु गुरुमुखी के खकार में अन्तर है। इस अन्तर के दो ही कारण हो सकते हैं या तो देवनागरी अक्षरों का खकार उस समय ऐसा न था जब गुरुमुखी लिपि के प्रवर्तकों ने उसका अनुकरण किया या लिपि के संचालकों ने जान बूझ कर अपनी सुगमता इसकी रचना के परिवर्त्तन में समझी। गकार चारों लिपियों का मिलता है। ङकार में भी कुछ अधिक अन्तर नहीं। एक ङकार के परिज्ञान से दूसरी लिपियों के ङकार का सहसा बोध हो सकता है।

दूसरा चित्र (२)

च	ਚ	চ	ચ
छ	ਛ	ছ	છ
ज	ਜ	জ	જ
झ	ਝ	ঝ	ઝ
ञ	ਞ	ঞ	ઞ
ट	ਟ	ট	ટ
ठ	ਠ	ঠ	ઠ
ड	ਡ	ড	ડ

चकार बंगला का उलटा है किन्तु रूप वही है। गुजराती का जकार भिन्न है। झकार ञकार में बंगला अक्षर देवनागरी लिपि से भिन्न कर दिये गए हैं। गुरुमुखी में झकार और ञकार के भिन्न भिन्न रूप बतलाने के लिये झकार का उलटा ञकार कर दिया है। टकार, ठकार, डकार चारों लिपियों में समान ही हैं।

तीसरा चित्र (३)

ढ	ਢ	ঢ	ઢ
ण	ਣ	ণ	ણ
त	ਤ	ত	ત
थ	ਥ	থ	થ
द	ਦ	দ	દ
ध	ਧ	ধ	ધ
न	ਨ	ন	ન

ढकार चारों लिपियों का मिलता जुलता है। बंगला में णकार भिन्न है, कारण यह है कि बंगला अक्षरों के न ण में कुछ अधिक अन्तर नहीं। सर्वसाधारण तो इसके उच्चारण में कुछ भेद ही नहीं करते, हाँ, लिपि में और बड़े बड़े साम्प्रदायिक ग्रन्थों में नकार और णकार का अन्तर दिखलाया जाता है। गुरुमुखी और बंगला अक्षरों के तकारों में अधिक अन्तर जान पड़ता है मगर रूप का अनुकरण अवश्य ही किया गया है। थकार में गुरुमुखी अक्षरों में कुछ अन्तर है इसके परिवर्तन का कारण गुरुमुखी का यकार प्रतीत होता है, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से यह अन्तर भी मिट जाता है। दकार सब के एक ही से हैं। धकार गुरुमुखी का न्यारा है। इसका कारण नागरी अक्षरों के परिवर्तन ध्यान से जाना जा सकता है। नकार समान ही हैं केवल गुरुमुखी में रूप कुछ बदल दिया है।

चौथा चित्र (४)

प	ਪ	প	પ
फ	ਫ	ফ	ફ
ब	ਬ	ব	બ
भ	ਭ	ভ	ભ
म	ਮ	ম	મ
य	ਯ	য	ય
र	ਰ	র	ર

पकार बंगला लिपि का भिन्न प्रतीत होता है परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से यह अन्तर भी मिट जाता है केवल लिपि की विलक्षणता ही मूल कारण है। फकार में केवल गुरुमुखी लिपि वालों ने अन्तर डाल दिया है। बकार, भकार भी गुरुमुखी वालों ने मिल जाने के भय से भिन्न भिन्न निर्माण किए हैं। गुजराती में बकार का घेरा विलक्षण है इसी से अन्तर बढ़ गया है। मकार, यकार सब के समान हैं। रकार में गुरुमुखी और बंगला अक्षर नहीं मिलते। देवनागरी अक्षरों के वर्तमान अवस्था में आने से पूर्व रेफ बहुत रूपान्तरों को धारण कर चुका है। हाँ किन्तु सोलहवीं शताब्दी में गुरुमुखी और बंगला भाषाओं के आविष्कारों ने यह अक्षर देवनागरी लिपि से

अपनी लिपियों में लिया था उस समय का रेफ इन से अधिक मिलता जुलता था। जहाँ उन लिपियों के रेफ वही रहे—नागरी के रेफ में कुछ और परिवर्तन हो गया। गुजराती लिपि के अक्षरों की अधिक समानता का कारण यह है कि यह लिपि इन लिपियों में से सबसे पीछे प्रचलित हुई।

पाँचवाँ चित्र (५)

ल	ਲ	ল	લ
व	ਵ	ব	વ
श	ਸ਼	শ	શ
ष	ਸ਼	ষ	ષ
स	ਸ	স	સ
क्ष			ક્ષ
ज्ञ			જ્ઞ

लकार सबके समान हैं। षकार गुरुमुखी का भिन्न है। गुरुमुखी में सकार, शकार का अन्तर एक बिन्दु डाल कर दिखलाया है। शकार के रूप को हटा देने का कारण अधिकतर रूपों के परस्पर मिल जाने का भय था। वकार चारों लिपियों में समान है। सकार भी मिलता सा है। क्षकार और ज्ञकार गुरुमुखी में नहीं मिलते। गुजराती में संयुक्त अक्षरों से बना लिये गये हैं। बंगाली के क ष को मिलाकर क्ष का रूप बना लिया है। मेरा विश्वास है कि यदि ध्यानपूर्वक हम विचार करें तो हमें इन चार प्रकार की लिपियों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भली भाँति ज्ञात हो सकता है। इतिहास द्वारा हम बतला सकते हैं कि १३ वीं सदी में बंगला, सोलहवीं सदी में गुरुमुखी और अनुमान सत्रहवीं सदी में गुजराती लिपि का प्रचार हुआ। दशवीं सदी में इन तीनों लिपियों का पता न था, जब कि देवनागरी लिपि का सम्बन्ध आज से अढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व तक के अक्षरों से मिलता है, इसलिये जहाँ हम इन चारों लिपियों को परस्पर मिला जुला पाते हैं वहाँ हम भी निर्भय होकर अनुमान से कह सकते हैं कि इन लिपियों की रचना देवनागरी अक्षरों के आधार पर हुई है। अब मैं स्वरों द्वारा बतलाऊँगा कि उन में कितना सम्मिलान है।

स्वरों और मात्राओं का वर्णन।

छठा चित्र (६)

अ	ਅ	অ	અ
इ	ਇ	ই	ઇ
उ	ਉ	উ	ઉ
ऋ		ঋ	ઋ
ऌ			
ए		এ	એ

इन चारों लिपियों का परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि प्रायः सबके दीर्घ समान हैं। अकार चारों लिपियों का मिलता जुलता है। बँगला लिपि में एक रेखा कम कर दी गई है। गुरमुखी के अकार में रूप को रखते हुए भी किंचित् अन्तर दिखलाया गया है। इकार में भी उसी नियम का अनुकरण किया गया है। गुजराती में उलटा रूप दिखलाया है। गुरुमुखी में नीचे की रेखा ऊपर जोड़ कर भेद बना दिया है। बँगला के इकार को सुगम बनाने के लिए एक भाग हटा दिया है। उकार चारों के समान हैं। ऋकार में भी कुछ अन्तर नहीं। यही हाल ऌ का है। एकार में बँगाली लिपि विपरीत है। गुजराती अक्षरों में अकार पर एकार की मात्रा बढ़ाकर काम ले लिया है। इस चित्र द्वारा भी स्पष्ट है कि चारों लिपियों की वर्णमाला एकसी है और देवनागरी अक्षरों में कहीं कहीं परिवर्तन कर स्वरों को बना लिया है।

सातवाँ चित्र (७)

हिन्दी गुरु० बंगाली गुज०

जैसा कि ऊपर स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाया है ठीक उसी प्रकार से मात्राओं में भी सम्बन्ध ज्ञात होगा। यहाँ मात्राओं को भी उनके ह्रस्व रूपों में लिया गया है। अकार, इकार की मात्राओं में लेश भी अन्तर नहीं, हाँ लेख-प्रणाली में बँगला और गुजराती अक्षरों में सौन्दर्य के लिये रेखा बढ़ा दी गई है। उकार में बँगला लिपि के संचालकों ने अन्तर दिखलाया है और ह्रस्व उकार को दीर्घ उकार का रूप दे दिया है। ऊकार में बंगला अक्षर फिर भिन्न है। गुरुमुखी लिपि में नियम वही है, हाँ, रेखा को कम कर दिया है। ओकार में देवनागरी अक्षर और गुजराती समान हैं। गुरुमुखी में ऊपर की रेखा से ही काम ले लिया है। बँगला में उसका रूप विभक्त करके दिखलाया है। अनुस्वार सबके समान हैं। इस चित्र से भी स्पष्ट है कि यह चारों लिपियाँ एक ही नियम पर चलाई गई हैं।

सज्जनो! यहाँ तक तो मैंने अपने व्याख्यान के पहिले भाग को समाप्त किया है। इन चित्रों से मुझे इतना ही सिद्ध करना अभीष्ट था कि बँगला, गुजराती तथा गुरुमुखी लिपियों का मूलाधार देवनागरी अक्षर हैं। व्यंजनों, स्वरों, मात्राओं और हिन्दसों में इन तीनों लिपियों के संचालकों ने देवनागरी अक्षरों का समय समय पर अनुकरण किया है मैंने इस विषय पर अभी बहुत अधिक विचार नहीं किया और न मेरे पास ऐतिहासिक सामग्री है पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुछ काल के पश्चात् हमें पता लग जायगा कि किस शताब्दी में किस देशवालों ने अपनी लिपि देवनागरी लिपि में से बनाई है। देवनागरी अक्षरों की रचना में परिवर्तन होता रहा है और आगे के पाँच चित्रों द्वारा मैं बतलाऊँगा कि महाराज अशोक के समय से आज तक इस लिपि के अक्षरों में क्या क्या परिवर्तन हुए। भारतवर्ष में जो सबसे पुरानी किताबें मिली हैं अथवा जितने खुतबे मिले हैं उनकी वर्णमाला से यह पाँच चित्र लिए गए हैं। इनके आदि-रूप और विकाससिद्धान्तानुसार उनके रूपान्तरों दिग्दर्शन-मात्र इन चित्रों में कराया गया है।

आठवाँ चित्र (८)

ग

घ

च

छ

इस चित्र में ग घ च और छ ये चार अक्षर दिखलाए गए हैं, आदि रूप ये हैं जो महाराज अशोक के समय में थे, और अन्तिम रूप ये हैं जो आजकल हम लिखते हैं। आपको यदि दूसरे चित्र के बँगला चकार का ध्यान हो तो आप तत्काल ही पहिचान लेंगे कि इस चित्र के चकार का द्वितीय रूप ही बँगला का चकार है अर्थात् बँगला लिपि उस समय निर्माण की गई थी जिस समय देवनागरी अक्षरों का आकार ऐसा था। मैंने यहाँ केवल चार चार, पाँच पाँच रूप दिखलाये हैं वस्तुतः इस से कहीं अधिक हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक

परिज्ञान की उत्कण्ठा हो वे श्रीयुत गौरीशंकरजी ओझा का बनाया नक़्शा देखें। अस्तु। शताब्दियों के परिवर्तन के पश्चात् आज देवनागरी लिपि का रूप सुन्दरता को प्राप्त हुआ है। पुरानी लिपि के अक्षर भद्दे और बेडौल थे।

नवाँ चित्र (९)

ε ꜫ ꜫ ङ ऊ ज ज

Ⱶ ƕ ƕ ƕ ƕ झ

C C Z Z ट

O Ō ठ ठ

नवें चित्र में ज झ ट ठ ये चार अक्षर दिखलाए हैं। चारों लिपियों में आज भी टकार, ठकार प्रायः समान ही हैं और प्राचीन काल की लिपियों से इनका पारस्परिक सम्बन्ध भी अधिक है मगर जकार और झकार में कहीं कहीं अन्तर है। बंगला झकार को समझने के लिये जिसे दूसरे चित्र में दिखलाया था, इस नवें चित्र के ६ झकारों में से चौथे पर ध्यान देना उचित होगा। इसकी एक नीचे की रेखा को ऊपर लेजाकर सुन्दर बनाने के भाव से बदल दिया है। बंगला लिपि का जकार भी सातों जकार के रूपों में से चौथा जकार है। इन्हीं कारणों से मेरा विश्वास यह है कि नवें चित्र में जकार के सात और झकार के जो ६ रूप दिखलाए गए हैं उनमें से जिस शताब्दी में चौथा जकार और चौथा झकार ऐसे थे उसी शताब्दी में बँगला लिपि का निर्माण हुआ।

दसवाँ चित्र (१०)

ᐟ Z Z Z Z ड

⅄ ⅄ त त

⊙ ⊖ θ θ थ थ

Ɂ Ɂ ट द द द

ऊपर चारों लिपियों के अक्षरों में डकार की समानता दिखलाई गई है। तकार में अन्तर अवश्य है। गुरमुखी का तकार इस चित्र के तीसरे तकार से बनाया गया है; हाँ, रेखा कुछ अधिक बढ़ा दी गई है। थकार में अधिक अन्तर था। गुरुमुखी का थकार और इस चित्र के ६ थकारों में से चौथे थकार को देखिये। कैसे परस्पर मिल जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय गुरुमुखी लिपि बनी थी उस समय देवनागरी लिपि का थकार ऐसा न था जैसा कि अब है, वरन गुरुमुखी के थकार के समान था। यह समय अनुमान सत्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल था। इन अढ़ाई शताब्दियों में बहुत अन्तर पड़ गया। दकार चिरकाल से वर्त्तमान रूप को धारण कर चुका था, इसी लिये सभी लिपियों में उसके रूप एक समान हैं। इस चित्र से और भी स्पष्ट होता है कि ये चारों लिपियाँ देवनागरी अक्षरों से निकली थीं।

ग्यारहवाँ चित्र (११)

ब

म

य

ल

इस चित्र में अक्षरों की रचना का बोध भली भाँति हो सकता है। वकार के रूप को सुन्दर बनाने के लिये कितने साधन किए गए। मकार और मकार कैसे आरम्भिक रूपों को लेकर उठे और किस प्रकार से अन्त में जाकर एक दूसरे के सदृश बन गए। यकार और लकारों की उत्पत्ति विकाससिद्धान्त के अनुसार उसी क्रम से बनी है। मकार, यकार, लकार सभी लिपियों के समान हैं जो किंचित् अन्तर भी है वह इस चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। केवल गुरुमुखी के वकार का रूप नहीं मिलता। उसका कारण कदाचित् असुविधा के विचार से परिवर्तन कर देना है।

बारहवाँ चित्र (१२)

व

ष

स

इस चित्र में केवल वकार, षकार और सकार तीन अक्षर दिखलाए गए हैं। गुरुमुखी के वकार में केवल अंतर है शेष सब लिपियों के वकार, षकार सकार मिलते हैं। यदि गुरुमुखी लिपि में रेफ उपस्थित न होता तो वकार को रूपान्तर में ले जाने की आवश्यकता न पड़ती। सुगमता के बिना और इसका विचार भी क्या हो सकता है?

तेरहवाँ चित्र (१३)
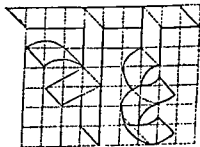
सज्जनो! ऊपर के पाँच चित्रों से मैं ने दूर प्रश्न का भी उत्तर दे दिया है। यदि आप भी दृ दृष्टि से मेरे समान इन चित्रों पर विचार करेंगे आप को ज्ञात हो जायगा कि जहाँ सभी अन्य लिपि की वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से ली गई वहाँ इन लिपियों के बनने का काल भी हमें ज्ञात हो सकता है। चारों लिपियों के जिन अक्षरों में परस्प समानता है उनको छोड़ कर अन्य अक्षरों पर ध्या देने से आपको ज्ञात हो जायगा कि किस समय देवनागरी अक्षरों का क्या रूप था और उनसे कैसे अन्य लिपिवालों ने अपनी अपनी वर्णमाला बनाई। इस प्रकार हम एक एक अक्षर की उत्पत्ति पर विचार कर सकते हैं मगर समय के अभाव तथा ठीक ठीक सामग्री के न मिलने के कारण हम इस विषय को आज यहीं विश्राम देते हैं। इस समय मैं आप के सन्मुख सात चित्र ऐसे और रक्खूँगा जिससे आपको पता लग जायगा कि इन अढ़ाई हज़ार वर्षों में क्यों इतना वर्णमाला में परिवर्तन हुआ। विकास सिद्धान्त का नाम मैं ने कई बार पहिले भी लिया है। संक्षेपतः इसका भाव यह है कि जन्म दिन के पश्चात् प्रत्येक शक्तिसम्पन्न वस्तु अपने आप को बाहर फैलाती है। फैलने में आकार, वर्णादि सभी नहिं

मानुसार सुन्दरता को उपलब्ध करना चाहते हैं। न्त्रालयों द्वारा इस विषय में नित्य नई से नई वर्ण-ाला बनती जाती है। अँगरेज़ी अक्षरों में आज सैकड़ों कार की वर्णमाला हैं जिन्हें सुन्दर अलंकारों से भूषित और सुसज्जित किया जाता है। हिन्दी समा-ारपत्रों तथा यन्त्रालयों के द्वारा देवनागरी अक्षरों में भी सुन्दरता तथा लावण्य आता जाता है। इस चित्र में ऋकार को क्रमबद्ध करने के लिये एक चार-होनी आकृति बनाई गई है। उसमें बिन्दुओं द्वारा रेखाएं डाली गई हैं ताकि उसको सुडौल बनाने में एक शृंखलाबद्ध क्रम बन जाय, इस शैली को (Drawing) कहते हैं।

चौदहवाँ चित्र (१४)
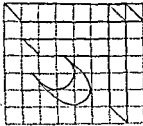
इस चित्र में जकार की आकृति दिखलाई है। जिस प्रकार स्वरों में अकार दिया गया है ऐसे व्यंजनों में जकार है। इस क्रमबद्ध नियम से समानता, रूपादि का सहसा परिचय होता है। रचना क्रम को जानने से लिखने में सुगमता तथा सुन्दरता का भाव उत्पन्न होता है। बस, इसी क्रम से वे वर्ण जो किसी समय बेडौल और भद्दे थे आज सुडौल और सुन्दर दीख पड़ते हैं।

पन्द्रहवाँ चित्र (१५)
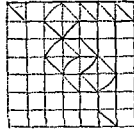
इस चित्र में धकार की रचना का क्रम दिया गया है, इसी क्रम के अनुसार हम इसे (Ornamental) अलंकृत करके आगे दिखलायेंगे जिससे ज्ञात होगा कि शृंखलाबद्ध नियमों में लाने से साधारण से साधारण अक्षर भी मनोरंजक बन सकता है।

सोलहवाँ चित्र (१६)

इस चित्र में भकार को पहिले रचनाक्रम से एक व्यवस्थित रूप में लाया गया है उसके पश्चात् उसमें दो प्रकार के रंगों से एक चित्र बनाया गया है जिससे उस का सौन्दर्य अतिशय बढ़ गया है।

सत्रहवाँ चित्र (१७)

वर्णमाला देवनागरी अक्षरों से प्रवाहित हुई है। अब मैं बतलाऊँगा कि न केवल इन लिपियों के संग संग देवनागरी अङ्क गए हैं परन्तु अर्बी, फ़ारसी और अंगरेज़ी लिपियों में भी देवनागरी अंकों से अंक लिए गए हैं। इंगलैंड आदि देशों में चौदहवीं शताब्दी से पूर्व १, २, ३ अंकों के लिखने का क्रम वही था जो पहिली शताब्दी में भारतवर्ष में था। अर्थात् तीन को बतलाने के लिये तीन रेखा लिखनी पड़ती थीं।

दसवीं शताब्दी के अंकों को पहिले खाने के पहिले अंकों से मिलाकर देखिए। ये वे अङ्क हैं जो १२ वीं शताब्दी में मिश्र देश में थे और वहाँ से यूनान और इटली पहुँचे। अब इन १२ वीं शताब्दी के अंकों को चौदहवीं ताब्दी के अंकों के साथ मिलाकर जाँच कीजिए। इनमें आप बहुतथोड़ा अन्तर पावेंगे। अब आप भारतवर्ष की दसवीं शताब्दी के अंकों और मिश्र देश के बारहवीं शताब्दी के अंकों और इंगलैंड के चौदहवीं शताब्दी के अंकों को मिलाइए। आपको बहुत थोड़ा अन्तर मिलेगा।

इधर दसवीं शताब्दी में जो अंक भारतवर्ष की देवनागरी लिपि में थे उनका दसवीं शताब्दी की अर्बी लिपि के अंकों के साथ जोड़ कर देखिए। कितने मिलते जुलते हैं। अर्बी लिपि से ही वर्त्तमान फ़ारसी लिपि निकली और उसके यहाँ से ही अंक आए। अब मैं आपका ध्यान इस चित्र के तीसरे खाने की ओर दिलाता हूँ। इसमें अँगरेज़ी, देवनागरी और फ़ारसी अंकों का दिखलाया गया है। जितना अधिक ध्यान देंगे, आपको उतना ही अधिक निश्चय होगा कि इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और वे सब देवनागरी अंकों से लिए गए हैं।

इक्कीसवाँ चित्र (२१)

Picture-writing by red Indians on Lake Superior.

सज्जनो! आज के व्याख्यान का यह अन्तिम चित्र है। मैंने इस चित्र को दिखलाने की ज़रूरत इस लिये समझी है कि आज कल के वैज्ञानिक सज्जनों का विश्वास है (और कोई बुद्धिपूर्वक हेतु इसके विपरीत भी नहीं दीखता जिससे हम उनके कथन का विश्वास न करें) कि प्राचीन समय में प्रायः सब देशों में Figure या Picture writing का नियम था। चीन और अमेरिका में तो इसके अनेक चिह्न मिले हैं। भारतवर्ष में अभी तक बहुत प्रमाण नहीं मिले। उनमें से भी एक ऐसा पत्थर मिल गया है जिसमें एक गोपाल की कहानी, गौओं का वर्णन, एक राज-कन्या को दुष्टों के हाथ से बचाने के लिये युद्ध करना आदि लिखे हैं। यह सारी कहानी चित्रों में दी हुई है और मुझे मेरे मित्र श्रीयुत गौरीशंकर ओझा (Curator Rajputana Museum अजमेर) ने समझाया था। यह पत्थर अजमेर में विद्यमान है। जहाँ तक मुझे पता मिला है यह ऐसा पत्थर है जिससे इस विषय का विद्यमान होना भी ज्ञात होता है। सारनाथ में भी ऐसे पत्थर उपस्थित हैं जिनमें जातकों का वर्णन और बुद्ध के उपदेश चित्रों द्वारा मिलते हैं। अब मैं इस चित्र की कहानी बतलाता हूँ। अमेरिका के उत्तर में एक बड़ी झील है जिसे लेक सुपीरियर कहते हैं। इस झील के समीप एक पर्वत की कन्दरा में यह पत्थर मिला था। उस देश के वासियों का राजा जिसका नाम किंग फ़िशर था अपनी सेना को लेकर उस पर्वत की ओर युद्ध करने आया। यह एक ऐसे दूर देश से आया था

जिसके आने में उसे पूरे तीन दिन लगे और एक ऐसे मार्ग से आया था जिसमें नदी पार करनी पड़ी थी। उसके संग इक्यावन मनुष्यों की सेना थी और वह सेनापति बन कर एक घोड़े पर चढ़ कर आया था, इत्यादि। अब यह सारी कहानी इसी चित्र से निकल सकती है। राजा का नाम किंग फिशर था। यह एक पक्षी का नाम भी है, जिसका चित्र ऊपर दिया गया है। वह घोड़े पर सवार था। वह नदी से किश्तियों द्वारा गुज़रा। पाँच किश्तियों में जितने मनुष्य बैठे थे लकीरों से ज्ञात होगा कि उनकी संख्या पूरी ५१ थी। कछुआ नदी का उपलक्षण है। एक दिन तब पूरा होता है जब सूर्य उदय होकर अस्त हो। आकाश को गोल बना कर तीन गोल गोल गेंद सूर्य के आकार को बतलाते हैं। पर्वत में सेना तब ही पहुँची जब शत्रुसेना को परास्त कर दिया। जिस प्रकार से यह कहानी बनाई गई है, इसी प्रकार शिलाओं से आज कल वैज्ञानिक तत्ववेत्ता प्राचीन का इतिहास निकालते हैं और इस प्रकार की [illegible] समय समय पर भारतवर्ष में बहुत मिलेंगी यह जानना अभी कठिन है कि जिस समय [illegible] पर चित्र बनाए गए थे उस समय भारत[illegible] की कोई लिपि न थी, या यह कि अन्य [illegible] समान इन्हीं चित्रों से भारतवासियों ने अपनी वर्णमाला का निर्माण किया।

सज्जनो! इन चित्रों से आप अपने सभ्यता के गौरव, अपनी प्रसिद्ध प्रसिद्ध की लिपियों के संमेलन को भली भाँति [illegible] होंगे। यदि मेरे इस व्याख्यान से देवनागरी की लिपि में आप की श्रद्धा हो गई हो [illegible] को अपने देश के कल्याण के लिये इस [illegible] राष्ट्रीयता का रूप देना अभीष्ट प्रतीत हो तो मैं समझूँगा कि मेरा परिश्रम निष्[illegible] गया।